Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत के विकास की भावी दिशा

प्रो. कुसुमलता केडिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत के विकास की भावी दिशा

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

प्रो. कुसुमलता केडिया
निदेशक, गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, काशी

G. M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 9236
Dated 13.12.2023

धर्मपाल शोधपीठ

साहित्य संगम
इलाहाबाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

BHARAT KE VIKAS KI BHAVI DISHA

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(Development Economics)

by : Prof. Kusumlata Kedia

ISBN : 978-81-8097-215-7

₹ 350.00

प्रकाशक : साहित्य संगम, नया-100, लूकरगंज, इलाहाबाद
संस्करण : सशोधित एवं परिवर्धित, 2015 © लेखक
अक्षर संयोजन : अथर्व ग्राफिक्स, 11-ए, शहरारा बाग, इलाहाबाद
मूल्य : रुपये तीन सौ पचास मात्र
मुद्रक : ग्राफिक आफसेट, इलाहाबाद
ई-मेल : sahitya_sangam@yahoo.in

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए संकल्पित
शक्तिशाली, संयमी, वैभवशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न
राष्ट्रीय जीवन के लिए उद्यम एवं उद्योग के आकांक्षी
युवकों-युवतियों के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

प्राक्कथन	:	5
प्रस्तावना	:	7
पृष्ठभूमि	:	11
अध्याय-1	: विकास और अर्थशास्त्र	19
अध्याय-2	: अठारहवीं शताब्दी के भारत की आर्थिक समृद्धि का स्वरूप ठीक से जानें	37
अध्याय-3	: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यः इंग्लैंड और यूरोप	65
अध्याय-4	: आंतरिक साधनों से कभी भी समृद्ध नहीं हुआ यूरोप	135
अध्याय-5	: एशियाई और यूरोपीय व्यापार की प्रकृति में मूलभूत अंतर	181
अध्याय-6	: भारतीय अर्थव्यवस्था का विखण्डन : इंग्लैंड का आधुनिकीकरण	203
अध्याय-7	: विकास की यूरोपीय अवधारणा के पूर्वग्रहों को जानना जरूरी	253
अध्याय-8	: समृद्धि, सम्पत्ति और सुख : भारतीय दृष्टि	269
अध्याय-9	: हमारी समस्या	297
अध्याय-10	: उदारीकरण और वैश्वीकरण की प्रकिया	317
अध्याय-11	: विकास की भावी दिशा	345

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुरेन्द्र पटवा
राज्य मंत्री
पर्यटन एवं संस्कृति
मध्यप्रदेश शासन

बी-4, (74 बंगला), भोपाल
दूरभाष नि. : 0755-2558775, 2441228
मंत्रालय : 0755-2558826
फैक्स : 0755-2558775
ई - मेल : mctbhopal@gmail.com
क्रमांक 488/रा./म./प.सं./.....दिनांक 15-4-15

:: प्रक्कथन ::

आधुनिक भारतीय इतिहास को तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित सत्य रूप में प्रस्तुत करने वाले श्रेष्ठ भारतीय इतिहासकारों में श्री धर्मपाल अग्रणी रहे हैं। मध्यप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने धर्मपाल समग्र के गुजराती और हिन्दी अनुवादों के लोकार्पण समारोह में धर्मपाल शोधपीठ की स्थापना की घोषणा की। तदनुसार मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग के अन्तर्गत धर्मपाल, शोधपीठ की स्थापना हुई है। प्रदेश एवं देश के शीर्षस्थ इतिहासकारों, दार्शनिकों, न्यायविदों, विधिवेत्ताओं, समाजवैज्ञानिकों, राजनीतिशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों एवं लेखकों ने इसकी राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक संगोष्ठियों में सहभागी होकर भारतीय इतिहास के विविध पक्षों पर गम्भीर शोधपत्र एवं शोधपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किए हैं।

धर्मपाल शोधपीठ विद्वानों के इन अनुसन्धानों, शोध-निष्कर्षों एवं इतिहास के विश्लेषणों को व्यापक समाज तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत हैं। ये प्रकाशन इसी दिशा में प्रयास हैं, जिससे कि अपने इतिहास का तथ्य सामने आए और सभी को देशभक्ति से भरपूर पुरूषार्थ की प्रेरणा मिले।

शोधपीठ प्रतिवर्ष 1 सीनियर एवं 3 जूनियर फेलोशिप भी दे रही है। वे शोधकार्य भी यथासमय प्रकाशित होंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं चाहता हूँ कि धर्मपाल शोधपीठ के इन प्रकाशनों की पहुँच प्रदेश एवं देश के सभी महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अकादमियों एवं शिक्षा केन्द्रों तक हो तथा इन पर व्यापक राष्ट्रीय चिंतन एवं मंथन चले। इसके लिए सभी प्रबुद्धजनों का सम्बल और सहयोग अपेक्षित है। सुधी पाठकों से मेरी यह भी अपेक्षा है कि आप अपना रचनात्मक परामर्श भी दें ताकि अपने इतिहास का सत्य देशभर में सबके ज्ञान में उज्ज्वल रूप में आए और सभी को प्रेरणा, प्रकाश और राष्ट्रगौरव की अनुभूति हो सके। इसी पुनीत कार्य में प्रत्येक देशभक्त नागरिक का सार्थक सहयोग प्राप्त होगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

(सुरेन्द्र पटवा)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रस्तावना

मैं एक विकास-अर्थशास्त्री हूँ। उस नाते भारत का आर्थिक विकास कैसे हो, यही मेरी मूल चिंता रही। मैंने अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन किया। पूंजी, निवेश, उत्पादन, लागत, लाभ, बाजार, विनिमय, ब्याज, बचत, संसाधन, संचय, वितरण, वित्त, समृद्धि, उपयोग, अभाव और व्यापार तथा उद्योगों के विविध नियमों एवं सिद्धान्तों का व्यापक अध्ययन मैंने किया। राजस्व, शुल्क, कराधान या कर-निर्धारण, राजकीय कोष, राजकीय व्यय, राजकीय लेखा, राजकीय नियोजन एवं विनियोजन, राज्य द्वारा लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए दान, अनुदान, वित्तीय सहयोग, वित्त-व्यवस्था, मुद्रा-नीति, राज्य की सुरक्षा व्यवस्था, सेना, प्रशासन, दंड बल, न्याय-व्यवस्था आदि से सम्बन्धित आर्थिक पक्षों का भी विशद अध्ययन किया। भूमि, भवन, पुर, नगर, ग्राम, जल, जंगल, जनपद, दुर्ग, कोष, रत्न, धातु, खनिज, सम्पदा, विपदा, जीविका, व्यवसाय आदि के विशद रूपों की भी जानकारी प्राप्त की। परन्तु भारत इन सभी दृष्टियों से अतिशय सम्पन्न श्रेष्ठ समाज, क्षेत्र और राष्ट्र ही दिखा। संसाधनों की प्रचुरता, व्यवसायों की विपुलता, दक्षताओं की विविधता, शिल्पों, कौशल और हुनर की अनन्तता, उदात्त परम्पराओं का विस्तार- ये सब तो अत्यंत विकसित समाज के लक्षण हैं। तब आज भारत में मुख्य चिंता विकास की क्यों करनी पड़ रही है? भारत अविकसित या अल्पविकसित कब हुआ? जो देश और राज्य विकसित कहे जा रहे हैं, वे वैसे कब से हैं? वे ऐसे विकसित किस प्रकार हुए? हम वैसे क्यों नहीं हो सकते? इन सब प्रश्नों के मंथन और मनन से स्वभावतः इतिहास के सन्दर्भ सम्मुख आ गए। इतिहास से ही इन प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। अतः मैं विस्तार से इतिहास पढ़ने लगी। इतिहास की मेरी मित्र, काशी हिन्दू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विश्वविद्यालय की व्याख्याता डॉ. अरुणा सिन्हा से कहकर मैंने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से इतिहास की पुस्तकें मंगाई। इस संदर्भ में यूरोप, विशेषत: इंग्लैंड के इतिहास का अध्ययन अनिवार्य लगा अत: दिल्ली से भी कुछ पुस्तकें खरीदीं और मंगाईं थी। सबका अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हुआ कि ये देश तो बमुश्किल 100 वर्ष के भीतर ही ऐसे हो सके हैं कि विकसित कहे जा रहे हैं। पहले की इनकी दशा तो दीन-हीन थी। कंगाली, भुखमरी, बदहाली, बेरोजगारी, क्रूरता, बर्बरता, दयनीय जीवन, ये ही इनके सर्वव्यापी लक्षण एवं तत्व थे। साधारण मानवीय जीवन से भी ये समाज वंचित थे।

इस अध्ययन की परिणाम थीं दो पुस्तकें:- 1. रुट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट और 2. जेनेटिक एजम्पशन्स ऑव डेवलपमेंट थिअरीज।

उन दोनों पुस्तकों के लेखन में मेरी सहलेखिका थीं डॉ. अरुणा सिन्हा, जो बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं इतिहास विभाग की विभागाध्यक्ष भी बनीं। 'रूट्स' 1987 में हम लोगों ने स्वयं छापी। इस अध्ययन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली से वित्तीय सहयोग भी मिला था। इसी बीच मैं उस पुस्तक के कारण प्रसिद्ध दार्शनिक श्री रामस्वरूप जी, इतिहासकार श्री सीताराम गोयल, समाजसेवी एवं राष्ट्रीय नेता श्री नानाजी देशमुख एवं डॉ. मुरलीमनोहर जोशी तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह माननीय श्री कुप्पहड़ली सीतारामय्या सुदर्शनजी, सरसंघचालक प्रो. राजेन्द्र सिंह आदि के सम्पर्क में आई, जिन्होंने 'रूट्स' को बहुत सराहा। मा. सुदर्शन जी तभी से 'रूट्स' को हिन्दी में छापने का आग्रह करते रहे हैं। आज वे नहीं हैं। उनकी स्मृति सदा जीवंत रहेगी।

दूसरी पुस्तक 'जेनेटिक एजम्पशन्स ऑव डेवलपमेंट थिअरीज' श्री सीताराम गोयल जी के सुपुत्र श्री प्रदीप गोयल ने आदित्य प्रकाशन, दिल्ली से 1992 में छापी। तब तक 'रूट्स' की समीक्षा और प्रशंसा अनेक दिग्गज विद्वानों तथा सेमीनार सहित राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं द्वारा की जा चुकी थी. उसके बाद भी मैंने कई पुस्तकें इस विषय पर लिखीं, जिनमें 'दृष्टिदोष तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विकल्प कैसे' 'डेट ट्रैप ऑर डेथ ट्रैप' (कर्ज का फंदा/फांसी का फंदा) आदि हैं। 'आर्थिक समृद्धि की अहिंसक अवधारणा' इस क्रम की अंतिम कड़ी थी।

यह नई पुस्तक प्रकाशित करते हुए मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। विश्वास है, प्रबुद्ध पाठकों को इसके तथ्य और इसकी दृष्टि दोनों मनन योग्य लगेंगे। यदि युवा प्रबुद्धजनों को इस पुस्तक ने प्रेरित किया तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। स्वर्गीय श्री सुदर्शनजी सदा चाहते थे कि हिन्दी में भी ये तथ्य विस्तार से आएँ। आज वे नहीं हैं। होते तो बहुत प्रसन्न होते।

धर्मपाल शोधपीठ के निदेशक के आग्रह पर मैंने शोधपीठ में 'भारत के विकास की भावी दिशा' पर जो व्याख्यान शृंखला प्रस्तुत की, उसका ही यह सम्पादित रूप है। पुस्तक के 8वें अध्याय के लेखन में मुख्य भूमिका प्रो. रामेश्वर मिश्र पंकज जी की ही है। यह व्याख्यान शृंखला पुस्तक रूप में आ सकी और अब इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है, इसका सम्पूर्ण श्रेय पाठकों के साथ ही धर्मपाल शोधपीठ के अध्यक्ष एवं मध्यप्रदेश शासन के माननीय संस्कृति मंत्री श्री सुरेन्द्र पटवा जी तथा संस्कृति विभाग के प्रमुख सचिव श्री मनोज श्रीवास्तव जी एवं स्वराज संस्थान संचालनालय की संचालक श्रीमती रेणु तिवारी जी को है। ये सभी महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रबुद्ध पाठकों द्वारा प्रथम संस्करण के स्वागत का परिणाम है। अपने प्रबुद्ध पाठकों के सुझावों की मुझे सदा ही उत्सुकता रहेगी और उनका स्वागत होगा। स्थानाभाव से ग्रंथ सूची अलग से नहीं दी जा रही है। प्रत्येक अध्याय के अंत में पाठक सन्दर्भग्रंथ पढ़ सकते हैं।

अक्षय तृतीया (भगवान श्री परशुराम जयंती)
कलियुगाब्द 5117 (21 अप्रैल 2015 ईस्वी)

प्रो. कुसुमलता केडिया
संकायाध्यक्ष, समाज विज्ञान संकाय
गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी
मो. 09235619406, 09936225524
ई–मेल : Email:- Profkusumlatakedia@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पृष्ठभूमि अर्थात् यह पुस्तक क्यों?

''अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझना उसे निश्चित उद्देश्यों के अनुसार रूपायित करने की मानो भूमिका है''

समाज विज्ञानियों, विशेष रूप से अर्थशास्त्रियों ने इस समय जो सिद्धान्त, अवधाणाएँ और कार्यविधियाँ अपना रखी हैं, अल्पविकसित देशों के संदर्भ में उनकी अप्रासंगिकता के बारे में पिछले दशकों में विपुल मात्रा में साहित्य प्रकाशित हुआ है तथा गंभीर और विविध विचार व्यक्त किये गये हैं। विचारशील अर्थशास्त्री परम्परागत विचारों अर्थात् उन विदेशी सिद्धान्तों और अवधारणाओं की, जो विकासशील देशों में कुछ सोचे समझे बिना व्यवहार में लाई जा रही हैं, उपादेयता के बारे में शंकाएँ प्रकट करने लग गए हैं। उनका कहना है कि ये सिद्धान्त और अवधारणाएँ-

''ऐसे विश्व में जिसका अधिकांश अल्पविकसित है, बड़ी लापरवाही से अपनाई जा रही हैं और ऐसा करते समय परिस्थितियों के उस बुनियादी अन्तर को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है, जिसका कि इन सिद्धान्तों और अवधारणाओं की क्षमता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।'

सारहीन और विवादास्पद सिद्धांत

अगर ऐसा नहीं होता, तब भारत को विकास के उस पश्चिमी ढाँचे से भारी लाभ हुआ होता जो उसने (भारत ने) बिना जाँचे-परखे ही शानदार उन्नति की लालसा से अपना रखा है। तब भारत को विकासशील देशों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के कल्याण के निमित्त कुछ विकसित देशों की बहुप्रचारित चिन्ताओं एवं संवेदनाओं से भी लाभ हुआ होता। आजकल जो पहले कभी उपनिवेश होते थे, उन देशों की समस्याओं के समाधान करने में उन आर्थिक दर्शन और सिद्धान्तों की उपादेयता पर गंभीर रूप से बहस छिड़ी हुई है, जो पश्चिमी यूरोपीय देशों में पिछली दो शताब्दियों में विकसित हुए हैं। गरीबी, बेरोजगारी असमान वितरण और अवरुद्ध विकास की समस्याओं को हल करने में निर्बाध व्यापार के सिद्धांत, असंतुलित संवृद्धि के सिद्धान्त, संसाधनों के आवंटन में बाजार और कीमतों की भूमिका आदि की उपादेयता के बारे में गंभीर रूप से शंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं। श्री व्ही.एम.राव ने वर्तमान आर्थिक मतवादों के प्रति व्यक्त किए जा रहे असंतोष के संदर्भ में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा था-

'अगर ज्ञान-विज्ञान की किसी शाखा के आयाम और उसकी सुसंगति का आधार उसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त होते हैं, तब इस समय अर्थशास्त्र जिन सिद्धान्तों पर आश्रित है, वे सिद्धान्त जितने अधिक सारहीन हैं, उतने ही अधिक विवादास्पद भी।'

मूर्ख विद्वानों की पीढ़ियाँ तैयार की जा रहीं

इन विद्वानों की निराशा मानक अर्थशास्त्र की उस मौजूदा प्रणाली के बारे में मोह भंग होने से और भी अधिक बढ़ जाती है, जो अत्यधिक अमूर्त, गणितात्मक, निगमनात्मक और आत्महत्यापरक रुढ़िवाद से ग्रस्त है। एक अमेरिकी विद्वान का मत है-

आर्थिक विज्ञान का निगमनात्मक रीति से प्रयोग अल्पदृष्टि वाले व्यावसायिक आचारशास्त्र को जन्म देता है... अर्थशास्त्र में निगमन पद्धपति अनुभववाद को पनपने नहीं देती है... जिनमें वास्तविक रूप से अनुभवपरक जिज्ञासा और अन्तर्दृष्टि होती है... उन्हें आर्थिक अनुभववादी कह कर उपेक्षित कर दिया जाता है... उनके स्थान पर मूर्ख विद्वानों की पीढ़ी तैयार की जा रही है जो गूढ़ गणित के पंडित तो होते हैं, किन्तु जिन्हें वास्तविक आर्थिक जीवन का कोई ज्ञान नहीं होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनका गणितीय अभ्यास एक ओर उन्हें समाजविज्ञानियों में अपने को अत्यन्त वैज्ञानिक होने की मनोवैज्ञानिक तुष्टि प्रदान करता है तो दूसरी ओर एक ही विषय में संकीर्ण विशेषज्ञता की ओर प्रेरित करता है जिसके फलस्वरूप अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उसके विभिन्न उपक्षेत्रों में काम करने वालों के बीच परस्पर विचार विनिमय और यहाँ तक कि एक दूसरे को समझने की प्रक्रिया में भी अन्तराल उत्पन्न हो जाता है। इसका वास्तविक परिणाम वही होता है जिसके बारे में श्री डी.पी. मुखर्जी ने दुखी होकर यह टिप्पणी की थी कि- ''तटस्थ अर्थशास्त्रियों का एक ऐसा वर्ग जो तुलनात्मक या स्थैतिक आदर्शों के अनुसार प्रतिरूपों या एक काल्पनिक पद्धति का निर्माण करने के लिए रेशम के कीड़ों की तरह छोटे-छोटे घरौंदे बनाने में व्यस्त रहता है जिनका कहीं अस्तित्व भी नहीं होता।''

आश्चर्य तो यह है कि अर्थशास्त्र की मुख्यधारा अभी भी अपने ही चुने रास्ते पर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है- गर्वोन्नत और गर्वोन्मत्त। अभी तक उसमें परिवर्तन के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते। एक अवास्तविक प्रतिदर्श का स्थान दूसरा प्रतिदर्श ले लेता है जो उतना ही अवास्तविक होता है जितना कि पहले वाला था। बैसिती लियोतीफ (जो कम्प्यूटरों की सहायता से काम करने वालों में प्रथम अर्थशास्त्री और गणितीय निविष्टि और प्राप्ति के आधार पर विश्लेषण पद्धति के आविष्कारक थे) ने 'प्रत्यक्ष वास्तविकता के बजाय काल्पनिक और अनुमानपरक सिद्धान्तों के आधार पर अध्ययन करने की' बढ़ती हुई प्रवृत्ति की घोर भर्त्सना की थी।

हालांकि इस ढाँचे को फिर से प्रस्तुत करने के प्रयत्न हो रहे हैं तो भी देशों की समस्याओं को हल करने की दिशा में अभी भी ऐसे प्रयत्नों के संकेत नहीं मलते हैं जो मौलिक और स्वदेशी हों। यहाँ एक उदाहरण लीजिए। यह स्पष्ट नहीं है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी उच्च स्तरीय संस्थाओं के माध्यम से अर्थशास्त्रियों की समस्त प्रज्ञा क्यों और किसलिए लम्बे अरसे तक यह सुझाव देती रही है कि पूंजीवादी आदर्श के स्थान पर समाजवादी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अर्थशास्त्र के अध्ययन को एक सरल विकल्प के रूप में तुरन्त अपना लिया जाये। 'अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण' के बारे में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिपोर्ट में यह कहा गया था कि निर्बाध उद्यम वाले पूंजीवादी आदर्श पर अधिक निर्भर होने से उत्पन्न असन्तुलन को हम अपने पाठ्यक्रम में 'समाजवाद का अर्थशास्त्र' विषय पर पाठ्यक्रम शुरू कर दूर कर सकते हैं। अब इन दिनों मुक्त व्यापार, उदारीकरण, वैश्वीकरण की गूंज है, परन्तु उनका कोई भी गम्भीर विचार अनुपस्थित है।

सत्तासीन राजनीति के संकेतों को भांपकर किए गए समर्पणशील कथन किसी गम्भीर आर्थिक चिंतन के सूचक नहीं होते। परन्तु वे पतनशील अर्थचिंतन के सूचक अवश्य होते हैं। वे राष्ट्र के हित से निरपेक्ष तथा दलीय या अन्य सामूहिक हितों से संचालित राजनीति के सेवक तो होते हैं, परन्तु वह सेवा भी टिकाऊ नहीं हो पाती। क्योंकि अंततः जिस अर्थनीति से देश का टिकाऊ विकास और समृद्धि सम्भव न हो, वह अर्थनीति जिस राजनीति की सेवा में रहती है, लोकतन्त्र में जनता स्वयं उस राजनीति को कुछ समय बाद ठुकराने लगती है और तब सत्ता परिवर्तन होते ही नए परन्तु उतने ही निरर्थक नारे और भ्रामक आर्थिक विचारों सम्बन्धी कथन प्रस्तुत किए जाने लगते हैं। समाजवाद के पक्ष में अद्भुत उत्साह से बारम्बार पुनरुक्त तमाम अर्थनैतिक कथन किस प्रकार 1980 ईस्वी के बाद की खुली आर्थिक नीतियों की राजनैतिक घोषणा से निरर्थक हो चुके हैं, यह कोई भी देख सकता है। पूर्ववर्ती पूर्वानुमानों से ऐसा लगता था कि पूँजीवादी और अर्थशास्त्री दोनों प्रकार के अर्थशास्त्रों के बीच समानता और अन्तर- दोनों की अनदेखी की जाती रही है। पहली बात तो यह है कि समाजवादी अर्थशास्त्र जैसी कोई चीज नहीं रही है। इसका आशय केवल इतना रहा है (क) निजी पूँजीवाद के स्थान पर राज्य का पूंजीवाद (ख) बाजार की अर्थव्यवस्था के स्थान पर 'नियंत्रित अर्थव्यवस्था' और उसकी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्याएँ।

इस प्रकार के प्रतिभावान लोगों जैसे महबूबुल हक (दि पावर्टी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्टेन, च्वायसेज फार दि थर्ड वर्ल्ड) आदि का दृष्टिकोण उनकी सीमित दृष्टि का परिचायक रहा है- इसी दृष्टिकोण को अपना आदर्श बनाकर वे नए क्षितिज तक पहुँचने के लिए पुराने रास्ते पर चलते हैं। इनके इसी दृष्टिकोण के कारण कोई भी सही सिद्धान्त नहीं बन सका और न आगे बन सकेगा।

संक्षेप में कहा जाय तो यह कि सारी बीमारी की जड़ तक पहुँचने के लिए हमें कल्पना और निर्माण की प्रक्रिया से हो कर गुजरना पड़ेगा और इसके लिए हमें उस तत्व को ध्यान में रखना होगा जिसे श्रीमती जॉन रॉबिनसन ने 'समय-तत्व' कहा है- यह तत्व ही 'आर्थिक विश्लेषण की कमियों और कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि हम आयातित अवधारणाओं, पूर्वानुमानों व रीतियों को (जो उसी अर्थशास्त्र के लिए उपयुक्त हैं जहाँ उनकी उत्पत्ति हुई है) अपनाने में शीघ्रता करने के पूर्व उन तथ्यों को भी ध्यान में रखें जो इतिहास ने प्रदान किए हैं। अर्थात हमें इन सिद्धान्तों और आदर्शों के वंशानुक्रम की जाँच करनी होगी।

ऐतिहासिक संदर्भों का ज्ञान और ध्यान आवश्यक

ऐतिहासिक विश्लेषण ही मौजूदा अप्रासंगिक सिद्धान्तों की उत्पत्ति के कारणों को स्पष्ट कर सकता है जिनसे हम दुर्भाग्यवश बहुत समय से चिपके चले आ रहे हैं। उदाहरणार्थ, ऐतिहासिक खोजबीन से हमें यह पता चल सकेगा कि ये आर्थिक सिद्धान्त अपर्याप्त तथ्यों के आधार पर बने हैं और इन सिद्धान्तों के निर्णय तथ्यों से पुष्ट नहीं हैं। ये वस्तुत: जल्दी में लिए गए सामान्य अनुमान मात्र हैं- सार्वभौम रूप से प्रयोग किए जाने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

इससे संभवत: यह स्पष्ट हो जाएगा कि ये सिद्धान्त भारत के लिए क्यों कर समीचीन नहीं ठहरते। यह निश्चित है कि भारत की आर्थिक समस्याओं या उनके समाधान से इनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

हमने यह जानने की कभी परवाह ही नहीं की कि उदाहरणार्थ, (1) ये सिद्धान्त किस प्रकार अस्तित्व में आए? (2) इनको किसने जन्म दिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
(3) ये किस प्रयोजन के लिए बने? और (4) ये किसका उत्सर्ग करके बने? इसके अलावा यह भी कि जिस इंग्लैंड ने सारे विश्व को निर्बाध व्यापार के गुणों का उपदेश दिया था, उसने क्यों कर भारत में, यूरोपीय नील, चाय या काफी के बागानों में गहरी रुचि ली और अकूत सुविधाएँ दीं, चीन के विरुद्ध अफीम युद्ध क्यों छेड़ा, भारत में सरकार के स्वामित्व के अधीन रेलें शुरू कीं, जिनकी यहाँ किसी ने कल्पना भी नहीं की थी, लेकिन उसके साथ-साथ औद्योगिकीकरण के सभी प्रयासों को क्यों घोंट दिया, सिंचाई परियोजनाओं के खर्च को वहन करने के सुझाव पर क्यों क्रोध प्रकट किया और अकाल पीड़ित लोगों को सहायता देने से क्यों इनकार किया?

फ्रेडरिक क्लेमांते नामक एक फ्रेंच विद्वान का मत है कि हमारे जमाने के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण की उपयोगिता इसलिए है क्योंकि यह दृष्टिकोण नियत सामाजिक ढाँचे में किसी सिद्धान्त के निर्माण और किसी भिन्न प्रकार के विकसित सामाजिक परिवेश में उस सिद्धान्त के कार्यान्वयन के परिणाम के बीच के अन्तर को उद्भासित करता है। वर्तमान पर विचार भूत और भविष्य के संदर्भ में किया जाना चाहिए, जिससे उसका जन्म हुआ है और जो वह आगे होगा। इस प्रक्रिया में निश्चय ही यह निहित है कि इसे ऐतिहासिक विकास के किसी सार्वभौम सिद्धान्त के दृष्टिकोण से देखा और परखा जाए।

इस संदर्भ में कुछ इस प्रकार के प्रश्न प्रासंगिक हो जाते हैं, जैसे पश्चिम की अर्थ व्यवस्था किस प्रकार उसके तथाकथित विगत से रूपायित हुई है? इसी प्रकार इन क्षेत्रों का ऐतिहासिक विगत किस प्रकार पश्चिम के आर्थिक इतिहास से प्रभावित रहा है? ये अन्योन्याश्रित से लगते हैं।

इस बात को और अधिक संक्षेप में और सटीक तौर पर कहा जाय तो स्थिति यह है कि आज जरूरत इस बात की है कि परिस्थिति की उन सारी वास्तविकताओं को उजागर किया जाए, जिन्हें बड़े-बड़े आर्थिक सिद्धांतों और मतवादों के पत्थरों की नाली के पीछे छिपा दिया गया है। जब तक हम पिछले दो सौ वर्षों के आर्थिक विकास को ऐतिहासिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
स्वीकार करते, जिसमें कुछ देशों ने प्रगति इसलिए की कि उन्होंने अकेले-अकेले दूसरे देशों के संसाधनों का शोषण/उपयोग किया (और यह प्रक्रिया अभी भी एक बड़े जटिल, प्रच्छन्न और परिष्कृत रीति से जारी है), तब तक हम अपनी आर्थिक बीमारी का तर्कपूर्ण विश्लेषण नहीं कर सकेंगे।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए क्या भारत के औपनिवेशिक इतिहास को देखे-सुने बिना या उन शृंखलाओं के मूल में गए बिना जिन्होंने इसे राजधानियों का बंदी बना दिया था, उसकी धीमी और छुट-पुट प्रगति को समझा जा सकता है? क्या किसी संरचना को जाने बिना उस संरचना में तर्कपूर्ण रूपान्तरण का लक्ष्य बनाया जा सकता है? क्या हम अब भी वास्तविकता को स्वीकार नहीं करेंगे।

पश्चिम के अर्थशास्त्रियों ने विकासशील देशों की समस्याओं को समझने के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण की हमेशा उपेक्षा क्यों की, इसकी संभावित व्याख्या वह हो सकती है जिसे टॉयनबी ने 'इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन' (औद्योगिक क्रान्ति) नामक पुस्तक में स्वयं दर्ज किया है-

'ऐतिहासिक पद्धति को अक्सर रुढ़िवादी समझा जाता है। यह इसलिए कि यह हमारी वरेण्य संस्थाओं के क्रमिक और भव्य प्रगति की झाँकी प्रस्तुत करती है, लेकिन यह उस घोर अत्याचार को अनावृत्त कर सटीक उल्टा प्रभाव भी छोड़ सकती है जो इस संवृद्धि के दौरान जानबूझकर किया गया था।'

अगर हम पश्चिम के व्यावसायिक अर्थशास्त्रियों द्वारा जानबूझकर की गई विकृतियों को दुहराना नहीं चाहते जिन्होंने नई राजनैतिक-आर्थिक और ऐतिहासिक-सामाजिक श्रेणियों अर्थात् 'औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था' और औपनिवेशिक समाज' (जो भारतीय परिस्थिति में प्रासंगिक थीं) की वैधता तक को अस्वीकृत कर दिया और जो आर्थिक तत्व के विषय में यांत्रिक अवधारणाओं से चिपके रहते हैं और इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों और सैद्धान्तिक अवधारणाओं के बीच परस्पर प्रतिक्रिया के बारे में चर्चा को बड़ी होशियारी से नकारते आए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हैं, तब यह अच्छा होगा कि हम आर्थिक संवृद्धि और विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करने और उसे समझने के लिए 'समय तत्व' को भी ध्यान रखें तथा समेकित विश्व दृष्टि को अपनाएँ।

इतिहास के तथ्यों और सत्य को भुलाकर प्रचलित किए गए चालू अर्थशास्त्र से मुक्त होकर ही वर्तमान आर्थिक समस्याएँ सही रूप में समझी जा सकेंगी। हमारी गवेषणा का आधार तथ्य होने चाहिए, प्रचारित मतवादी अवधारणाएँ और उनका जटिल तकनीकी फैलाव नहीं। अभी की बहुप्रचारित अवधारणाओं को तथ्यों की कसौटी पर परखना जरूरी है। यही इस पुस्तक में किया जा रहा है।

इसके द्वारा भारत के आर्थिक विकास के कतिपय सैद्धांतिक सूत्र तो हमने प्रस्तुत किए हैं, परन्तु विकास का एक सम्पूर्ण मॉडल तो धर्माचार्यें, राजपुरुषों, प्रशासकों, सैनिक अधिकारियों, व्यापारियों, किसानों वनवासियों, ग्रामीण शिल्पियों और श्रमिकों सहित सम्पूर्ण भारतीय समाज के विविध प्रतिनिधियों से गम्भीर विमर्शपूर्वकही सोचा जा सकेगा।

पाठकों को पुस्तक के कई अंश अविश्वसनीय प्रतीत होंगे, क्योंकि यूरोप (विशेषतः इंग्लैंड) के बारे में विगत 65 वर्षों में भयावह झूठा प्रचार किया गया है। अधिकांश शिक्षित भारतीय यूरोपीय इतिहास से सर्वथा अपरिचित हैं। इंग्लैंड के विषय में यह अज्ञान दारुण है। इसीलिए हमने इंग्लैंड और यूरोप के बारे में वहीं के प्रतिष्ठित विद्वानों के द्वारा अभिलिखित तथ्य प्रस्तुत किए हैं। पुस्तक भारत की वर्तमान आर्थिक दशा के ऐतिहासिक आधारों को सामने रखती है। इसके लिए इंग्लैंड का इतिहास सामने रखना भी जरूरी हो गया है। उसी के साथ यूरोप की एक सामान्य ऐतिहासिक झलक भी देना उचित लगा है। अंत में भारत के विकास की भावी दिशा के आधार भूत सैद्धांतिक सूत्रों को संकेतित किया गया है।

● ● ●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-1

विकास और अर्थशास्त्र

विकास को इन दिनों अर्थशास्त्र का लक्ष्य माना जाता है। जिसे आजकल हिन्दी में अर्थशास्त्र कहा जा रहा है, वह अंग्रेजी के 'इकॉनॉमिक्स' का अनुवाद है। प्राचीन भारत में जिसे अर्थशास्त्र कहते थे, उसका अर्थ भिन्न था। चाणक्य ने कहा है- 'मनुष्यों की जो वृत्ति है, वह अर्थ है।' वृत्ति क्या है? जो जिससे जीवित रहे, वही उसकी वृत्ति है। अत: वृत्ति का मुख्य अर्थ हुआ जीविका एवं प्रधान प्रवृत्ति। चाणक्य कहते हैं- मनुष्यों से भरी-पूरी जो भूमि है, क्षेत्र है, जनपद है, राज्य है, वह भी 'अर्थ' कहा गया है। इसे प्राप्त करने का शास्त्र ही अर्थशास्त्र है। अत: राज्य प्राप्त करने, उस प्राप्ति के संसाधनों का संचय करने और उनका रक्षण, पोषण, संवर्धन करने वाले उपायों को बताने वाला जो शास्त्र है, वह अर्थशास्त्र है।[1] चाणक्य ने उसे 32 प्रकार की युक्तियों से सम्पन्न बनाया है, जिसमें अधिकरण, विधान,पदार्थ,उद्देश्य आदि हैं।[2] चाणक्य कहते हैं कि ''यह शास्त्र इस लोक और परलोक की प्राप्ति और रक्षा में सहायक है तथा धर्म अर्थ एवं काम-इन तीन पुरुषार्थों में प्रवृत्त और इनकी रक्षा करता है तथा अधर्म का नाश करता है।-''[3] इस प्रकार भारतीय परिभाषा में अर्थशास्त्र वस्तुत:राजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। वह केवल वित्तशास्त्र नहीं है।

दूसरी ओर 'इकोनॉमिक्स' शब्द प्राचीन यवन (ग्रीक या हेला) भाषा के शब्द 'ओइकोवोयिअॅ ' से निकला है। यह 'ओइकोवोयिअॅ' दो शब्दों को मिलाकर बना है। 'ओइकॉस' अर्थात् घर और 'वोयिअॅ' अर्थात् नियम या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कायदा। इस प्रकार घर के कायदे के लिए ही 'ओइकोवोयिॲ' शब्द चला जो 'घर के प्रशासन के नियम' का पर्याय है। बाद में यह चर्च के प्रबन्धन का पर्याय हो गया। मध्ययुग में इकॉनॉमिक्स का अर्थ था चर्च के प्रबंधन का शास्त्र।

19वीं शती ई. के उत्तरार्द्ध में इसे पहली बार राज्य-व्यवस्था का शास्त्र कहा गया। इंग्लैंड आदि सभी प्रमुख यूरोपीय देश (तब उस क्षेत्र का नाम यूरोप पहली बार गढ़ा गया, पहले हर इलाके के अलग-अलग नाम थे) धनहीनता से पीड़ित थे, गरीबी की मार से तंग थे। अत: धन ही चर्च और राज्य की व्यवस्था का मुख्य आधार उन्हें लगता था। इसीलिए धन की व्यवस्था के नियमों को ही 'इकोनॉमिक्स' कहा गया। पहले यह चर्च के लिए धन की व्यवस्था के नियम थे। 18वीं-19वीं शती ईस्वी में जब राष्ट्र- राज्य पहली बार बने, तब इसे 'पॉलिटिकल इकॉनामी' कहा जाने लगा। कुछ समय बाद, जब भौतिकी और रसायन शास्त्र की खोजें हुईं तो हर विषय को 'साइन्स' की तरह प्रस्तुत करने का फैशन चला। तब इसे 'इकॉनॉमिक साइन्स' कहा गया और इसी का संक्षिप्त रूप 'इकॉनॉमिक्स' कहा गया।

लूट का माल पाकर रची गईं परिभाषाएँ

जब बंगाल के तीन जिलों के राजस्व की बलपूर्ण वसूली ईस्ट इंडिया कम्पनी के मुलजिमों ने भारतीय नवाब के लिए की, तब नवाब के पास तयशुदा रकम जमा करने के बाद, शेष मुनाफा वे कर्मचारी अपने घर लंदन एवं अन्य शहरों में ले गए और राजकोष में कमीशन जमा किया। उससे गरीब इंग्लैंड के घर-बाजार-सरकार सब में सम्पन्नता छा गई। पादरी एडम स्मिथ ने खुशी से भरकर एक किताब 1776 ईस्वी में लिखी- 'राष्ट्र-राज्यों की सम्पदा के स्वरूप तथा कारणों की जांच-पड़ताल'। तब उसने वहाँ अर्थशास्त्र की यह परिभाषा की- 'अर्थशास्त्र साइंस की वह शाखा है, जो विधायकों या राजपुरुषों द्वारा व्यवहार में अपनाई जाती है, जिसमें भरपूर राजस्व की उगाही और राज्य को उस राजस्व का एक हिस्सा राजकीय कार्यों के लिए देने का काम किया जाता है।'[4] इस प्रकार भारत तथा अन्य देशों से बलपूर्वक राजस्व की उगाही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कर इंग्लैंड की रानी के खजाने में उसका एक हिस्सा देने को ही एडम स्मिथ ने 'इकॉनॉमिक साइंस' बताया।

19वीं शती ईस्वी में इसमें थोड़ा परिवर्तन किया गया। तब जे.बी. से ने कहा कि 'सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण और उपभोग की साइंस ही इकॉनॉमिक्स है।' जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1844 ईस्वी में इसकी परिभाषा इस प्रकार से की- 'केवल धन के लिए धन पैदा करने की सामाजिक प्रवृत्ति ही 'इकॉनॉमिक साइंस' है'।

मार्शल ने 'इकॉनॉमिक्स' के सिद्धांतों की विवेचना की और कहा कि 'इकॉनॉमिक्स धन कमाने और उसके उपयोग करने की विधियों की जाँच-पड़ताल करती है। अत: वह धन सम्बन्धी अध्ययन भी है और मनुष्य सम्बन्धी अध्ययन भी है।'

लिओनेल रॉबिन्स ने 20वीं शती ईस्वी (1932) में इसकी नई परिभाषा दी- 'आर्थिक प्रयोजनों और उन प्रयोजनों की तुलना में सदा ही कम पड़ने वाले संसाधनों के परिवर्तनशील सम्बन्धों के रूप में मानवीय व्यवहार का अध्ययन ही इकॉनॉमिक्स है।' इस प्रकार 'इकॉनॉमिक्स' स्वयं यूरोप में कुल डेढ़ सौ वर्ष पुरानी चीज है। आधुनिक विकास- अर्थशास्त्र तो वस्तुत: 1960 ईस्वी के बाद उभरी अध्ययन-पद्धति है और कुल 50 वर्ष का इसका इतिहास है।

डेवलपमेंट के बदलते अर्थ

'डेवलपमेंट' शब्द भी इतना ही नया है। पहली बार यह शब्द 18वीं शती ईस्वी के मध्य में फ्रांस में फोटो डेवलप करने के अर्थ में चला। नई घटनाओं के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त होने लगा कि अमुक मामले में क्या 'डेवलपमेन्ट' है। किसी नाटक का शिखर-क्षण या नया घटनाक्रम, किसी घर या बंगले का विस्तार, किसी सांगीतिक धुन का विकास या शारीरिक विकास की नई घटनाएँ ही पहले डेवलपमेंट कही जाती थीं। विस्तार, वृद्धि, नई शुरुआत,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिपक्वता आदि के लिए भी इसका प्रयोग होता था। वर्तमान में आर्थिक विकास के पर्याय की तरह यह 1960 के बाद ही व्यापक चलन में आया।

दूसरों का धन लूटकर खुद को विकसित कहने लगे

वस्तुत: यूरोपीय देशों (संयुक्त राज्य अमेरिका भी यूरोपीय विस्तार ही है) ने 1960 ईस्वी के बाद अचानक खुद को विकसित और एशियाई-अफ्रीकी-लेटिन अमेरिकी देशों को अविकसित एवं विकासशील प्रचारित करना शुरू किया। विकास का एक पूरा 'पैराडाइम' ही रच डाला गया और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर अपने नियंत्रण के कारण उसे विश्व भर में मान्यता भी दिला दी गई। दूसरों का धन लूटकर खुद को विकसित कहने-कहलाने लगे।

भारत में तो 'पॉवर' का 'ट्रांसफर' किया ही गया था अपने समर्थकों को। भारत तो ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का सदस्य बना ही हुआ है और इंग्लैंड की क्वीन भारत की भी महारानी बनी हुई हैं- भले नाममात्र को। अत: भारतीय शासकों-प्रशासकों ने विकास का यूरोपीय 'पैराडाइम' शिष्य भाव से शिरोधार्य मानकर अंगीकार कर लिया। शिक्षा एवं संचार माध्यमों पर राजकीय नियंत्रण होने के कारण जनता में भी विकास को ही राज्य का लक्ष्य प्रचारित करने में सफलता पा ली गई। जनता में विकास के इसी आर्थिक और भौतिक अर्थ की धूम है।

राज्यकर्ता प्रशासक की बजाय प्रबंधक बन बैठे

सभी लोगों ने मान लिया है कि राज्य का मुख्य काम विकास की व्यवस्था करना है। स्पष्ट है कि राज्य के अधिकारी और कर्मचारी तो विकास करेंगे नहीं। विकास का क्षेत्र तो प्रौद्योगिकी, व्यापार, उद्यम, संस्थाएँ, कारखाने, खेत-खलिहान आदि हैं। अत: विकास तो करेंगे ही किसान, व्यापारी, उद्योगकर्मी, श्रमिक आदि। राज्य के अधिकारी और कर्मचारी उसका प्रबंधन करेंगे और नियंत्रण करेंगे। इस प्रकार राज्य का मुख्य काम हो गया विकास की मैनेजरी करना और कन्ट्रोलर का काम करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी नियंत्रण के लिए 1947 ईस्वी के बाद भारत में यूरोपीय विचारों के निष्ठावान अनुयायी शासकों और प्रशासकों ने शासन को सोवियत पैटर्न पर ढाला। जहाँ विचारों से वे यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रभावित थे, वहीं यूरोपीय लक्ष्यों को भारत में लागू करने के लिए राज्य का ढांचा सोवियत तानाशाही वाला बनाने की कोशिश की गई और कोटा-परमिट-लाइसेंस राज्य लागू किया गया। यह कार्य भारत में योजनापूर्वक किया गया। इसीलिए यहाँ इन दोनों परस्पर विरोधी ढांचों का समन्वय किया गया। जो पहली नजर में विचित्र लगता है। केवल इतिहास के अध्ययन से ही इस विचित्र समन्वय का कारण समझ में आता है। उसी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यों यूरोपीय राज्य, विशेषकर इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका अपने यहाँ कम्युनिज्म का कट्टर विरोध करते हैं और उससे घृणा करते हैं, परन्तु भारत में कम्युनिस्ट ढांचे की नकल के लिए भारतीय राज्य को प्रेरित करते हैं और उनके बौद्धिक शिष्य भारत में यह समन्वय समर्पण भाव से बिना अधिक सोचे विचारे करते रहते हैं। इस ढांचे का अधिकतम लाभ ले लेने के बाद अब उदारीकरण और वैश्वीकरण की बयार बहाई गई है और सोवियत ढांचे की नकल वाले तंत्र में बदलाव लाया जा रहा है।

इतिहास का स्मरण आवश्यक

इन सब विचित्र बातों को ऐतिहासिक संदर्भों के द्वारा ही समझा जा सकता है। इसीलिए विकास पर भारत में कोई भी विचार यूरोपीय इतिहास और भारतीय इतिहास को समझे बिना और उसका स्मरण रखे बिना संभव नहीं है। यही कारण है कि इस पुस्तक में सर्वप्रथम इन दोनों ही प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों का स्मरण किया गया है। इसके बिना विकास के नाम पर भारत में जो कुछ हुआ और भारतीय प्रज्ञा तथा पुरुषार्थ की परम्परा से जिस प्रकार पूर्णत: सम्बन्ध विच्छेद रखा गया, उसके कारणों को कभी समझा नहीं जा सकता। जिस देश में खेती, सिंचाई, जल प्रबंधन, जल निकासी, नगर निर्माण, नगर व्यवस्था, नगर संचालन, वास्तु, भवन, ग्राम व्यवस्था, वन व्यवस्था और वन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रबंधन, व्यापार, शिल्प और उद्योगों की हजारों साल पुरानी परम्पराएँ हैं, वहाँ अचानक केवल 150 वर्षों के भीतर यूरोप में पहली बार विकसित तौर- तरीकों की अन्धी नकल क्यों की गई, यह केवल ऐतिहासिक तथ्यों को स्मरण रखने पर ही समझा जा सकता है।

अर्थशास्त्र की पुस्तक में इतिहास का महत्व

सामान्यत: अर्थशास्त्र की किसी भी पुस्तक में इतिहास का सन्दर्भ प्रारम्भ में ही आना थोड़ा विचित्र लग सकता है। जब बात भारत की गरीबी और अविकास या अल्पविकास को समझने की हो और प्रारम्भ किया जाय- इंग्लैण्ड या यूरोप के इतिहास से तो विचित्र लगना स्वाभाविक है। परन्तु पूरी पुस्तक को पढ़ने के बाद यह न केवल विचित्र नहीं प्रतीत होगा अपितु सहज स्वाभाविक और अनिवार्य प्रतीत होगा। यह सही है कि विकास की सभी प्रचलित अवधारणाएं और परिभाषाएं ऐतिहासिक सन्दर्भों को, विशेषकर विदेश के सन्दर्भों को अपने दायरे में नहीं लातीं। परन्तु तथ्यों का परीक्षण करने पर ऐसा न करना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। विकास की जो भी परिभाषा की जाती है, उसमें विकास के लिए अपेक्षित पूंजी के संचय अथवा संग्रह का युक्तिसंगत समाधान नहीं किया जाता।

विकास के जितने भी आधुनिक 'मॉडल' हैं, उनमें से एक में भी पूंजी का संचय पूंजी-संचय के किसी सामान्य नियम के अंतर्गत नहीं हुआ है। आधुनिक विकास के सार्वभौम आदर्श बताए जा रहे ब्रिटेन ने पूंजी का संचय विश्व के विविध देशों की, जिनमें भारत सर्वोपरि है, खुली लूट से किया था। न तो इस पूंजी का कभी उसे ब्याज देना पड़ा, न ही उधारी लौटानी पड़ी। यहाँ तक कि दूर देश जाकर भारत का ऐसा खुला शोषण और उत्पीड़न करना तथा वहाँ की सम्पत्ति और पूंजी तथा लाभांश को इस तरह लूटकर लाना आधुनिक न्याय व्यवस्था के वैश्विक सिद्धान्तों के नितान्त विपरीत है और विश्व न्यायालय में इसके विरुद्ध यदि भारत के शासकों ने अभियोग दायर किया होता और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध साक्ष्यों और प्रमाणों को विधिवत प्रस्तुत किया होता तो निश्चय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ही ब्रिटेन के शासन को कम से कम 1857 ईस्वी से 1947 ईस्वी तक की गई खुली लूट और शोषण के लिए अरबों पौण्ड का हर्जाना अवश्य ही देना पड़ सकता है। यह बात अलग है कि ऐसा कोई वाद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अभी तक भारत शासन की ओर से दायर नहीं हुआ है और निकट भविष्य में होने की आशा भी नहीं है। सम्भवतः इसका कारण औपनिवेशिक सत्ता का हस्तांतरण जिन समूहों को हुआ, उनकी मानसिक और बौद्धिक संरचना में निहित हो। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि बिना ऋण चुकाए और बिना ब्याज दिए जिस संग्रहीत अथवा लूटी गई पूंजी से ब्रिटेन का औद्योगिक विकास हुआ है, उस प्रकार का औद्योगिक विकास यदि अन्य देश ऋण लेकर और उस पर ब्याज देते हुए पूंजी संग्रह करके करना चाहेंगे तो पूरी तरह विफल रहेंगे और कर्ज में डूबते चले जाएँगे, जैसी कि भारत की इस समय दशा है।

केवल ब्रिटेन ही नहीं, प्रत्येक यूरोपीय देश ने पूंजी संचय इसी तरह की खुली लूट के जरिये करते हुए ही आधुनिक किस्म का विकास किया है। यह विश्वविदित तथ्य है और भारत में महात्मा गांधी तथा डॉक्टर राममनोहर लोहिया ने अपने अर्थशास्त्रीय प्रतिपादनों के अंतर्गत इस तथ्य को बारम्बार रेखांकित किया था।[5]

संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी न केवल पूंजी संचय अपितु सम्पूर्ण प्राकृतिक संसाधनों- भूमि, वन, खनिज पदार्थ, वृक्ष वनस्पतियों, जल संसाधनों आदि सहित- को वहाँ के मूल निवासियों के नियोजित वंशनाश और स्वत्वहरण के द्वारा ही प्राप्त किया है। विविध अफ्रीकी देशों में यूरोप के उपनिवेश भी इसी प्रक्रिया से पनपे थे। अतः आधुनिक विकास की किसी भी चर्चा में पूँजी हथियाने या लूटने की अभूतपूर्व प्रक्रिया के इतिहास के तथ्यों का उल्लेख अनिवार्य और अपरिहार्य है।

शायद नकल का कारण दलाली है

यूरो-अमेरिकी आधुनिक सिद्धान्तों और अवधारणाओं को अल्पविकसित देशों में बिना किसी विचार के जिस प्रकार व्यवहार में लाया जा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रहा है, उसकी ओर विश्व के सभी विचारशील अर्थशास्त्रियों ने ध्यान दिया है और उसकी उपादेयता पर शंका व्यक्त की है। भारत को इस यूरो-क्रिश्चियन विकास के ढांचे के अनुसरण से लाभ होने के स्थान पर बड़े पैमाने पर और विविध स्तरों पर जो भारी क्षति पहुँची है, उसका कारण भी यही है कि यहां विकास के इन यूरो-अमेरिकी ढांचों को बिना जांचे-परखे ही तीव्र उन्नति की प्रचण्ड लालसा से अपना लिया गया है। निश्चय ही भारत को, उसके विशाल जनसांख्यिकीय आधार और वृहद मध्यवर्ग के कारण इस दोषपूर्ण ढाँचे को अपनाने पर भी कुछ उपलब्धियाँ तो सम्भव हुई हैं, परन्तु ये उपलब्धियाँ सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए राष्ट्र द्वारा संकल्पित समतामूलक न्याय की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इसके अतिरिक्त ये उपलब्धियां भंगुर हैं और अनेक गम्भीर तनावों को लगातार जन्म देते जाने वाली हैं। इससे यह समृद्धि भी बहुत भंगुर सिद्ध होने वाली है और सामाजिक ढाँचा तथा सामाजिक शान्ति, दोनों को ही इससे गम्भीर खतरा सम्भावित है।

टिकाऊ विकास के आधार खोजने होंगे

प्रख्यात अमेरिकी अर्थशास्त्री हेजेल हेन्डरसन का कथन स्मरणीय है - 'उद्योगवाद एवं अर्थशास्त्र के मार्क्सीय और एडम स्मिथीय आधार मानवीय और टिकाऊ तथा पारिस्थितिकी के अनुरूप विकास की दृष्टि से निस्सार और खोखले सिद्ध हुए हैं तथा हमें विकास की एक बहुसांस्कृतिक दृष्टि को विकसित करना होगा और प्राथमिकताओं को नए क्रम में व्यवस्थित करना होगा।'[6]

ये प्राथमिकताएँ क्या होंगी, यह तभी निश्चय किया जा सकता है जब वर्तमान प्राथमिकताओं को और उनके हानिकर परिणामों को भलीभांति देख लिया जाए। पूँजी संचय की प्राथमिकता का तर्क इस आधार पर टिका है कि पूंजी ही पूंजी के इंजन की चालक शक्ति है और उसकी प्रक्रिया आर्थिक है। इस अर्थनीति और अर्थशास्त्र के रूपक भौतिक शास्त्र से लिए गए हैं और साथ ही इसमें संसार के समस्त संसाधनों के सीमित होने के तथ्य को अनदेखा किया गया है। उसके स्थान पर काल की एकरैखिक अवधारणा के अंतर्गत सतत विकास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
को अनंतकाल के लिए सम्भव मानकर संसाधनों की उपलब्धता को भी प्रकारान्तर से अनंत मानकर विकास की आधुनिक धारणा उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ से 1970 तक चलती रही है। 1970 में क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट – 'द लिमिट्स टू ग्रोथ' जब सार्वजनिक हुई और यह स्पष्ट हुआ कि आधुनिक प्रौद्योगिकी की नवीनतम उपलब्धियों के प्रति अत्यधिक आशापूर्ण दृष्टि रखने पर भी अगले दशकों में जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक वृद्धि की वर्तमान दर को एक साथ जारी रखना असम्भव है, तब से संसाधनों की अनंतता का मिथक टूटा।

जी.एन.पी. प्रगति का सही सूचक नहीं है

अब तो यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है कि सकल राष्टीय उत्पादन (जी.एन.पी.) में वृद्धि वास्तविक प्रगति का पर्याय नहीं है। यह तथ्य भी आज सर्वविदित है कि औपवेशिक और साम्राज्यवादी लूट और किसानों की खेती तथा सम्पत्ति छीनकर संसाधनों का इकतरफा हस्तांतरण करने की बर्बरता ही इस आधुनिक विकास का आधार है, न कि प्रगति की कोई नीति विशेष।

लूट से ही संचित होती है आधुनिक पूँजी

सोवियत संघ और चीन में जहाँ बाहरी उपनिवेशों के बर्बर शेषण और लूट से पूंजी का संचय नहीं किया गया, वहाँ किसानों की नृशंसतम सामूहिक हत्याएं और सर्वस्वहरण के द्वारा तथा खेती के विरुद्ध और उद्योगों के पक्ष में राजकीय नीतियाँ खुलकर चलाते हुए ही 'अतिरिक्त मूल्य' और 'अतिरिक्त पूंजी' जुटाई गई। वस्तुतः यह आन्तरिक औपनिवेशिक लूट ही थी।

जापान में यद्यपि ऐसी खुली लूट अपेक्षाकृत कम हुई, तब भी आधुनिक विकास के लिए खेती और कृषि क्षेत्र के साथ अन्याय और शोषण करते हुए ही उद्योगों के पक्ष में पूँजी संचय सम्भव हुआ। इस प्रकार आधुनिक विकास के सभी मॉडल मूलभूत अन्याय और उत्पीड़न पर आधारित हैं तथा इनके पक्ष में गुणगान करना तथ्यों की सम्पूर्ण अनदेखी के द्वारा ही सम्भव है। दूसरी ओर, विकास और समृद्धि का एक सन्तोषजनक स्तर भारत सहित अनेक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशों, समाजों और सभ्यताओं में उपलब्ध था, यह ऐतिहासिक तथ्य भी आज सर्वविदित है। ऐसी स्थिति में आधुनिक विकास के वास्तविक अर्थशास्त्रीय स्वरूप को जानने के लिए भारत में ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय शक्तियों के प्रवेश तथा विस्तार के इतिहास को तो जानना ही होगा। इसीलिए प्रस्तुत अर्थशास्त्रीय अध्ययन में ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश किया गया है।

गांधी, लोहिया, दीनदयाल को शासकों ने स्वीकारा नहीं

इन ऐतिहासिक तथ्यों को महात्मा गांधी और डॉ. राममनोहर लोहिया ने भारतीय राजनैतिक परिदृश्य में बारम्बार प्रस्तुत किया था। गांधीजी ने कहा था कि यदि हम विकास के नाम पर इंग्लैंड की नकल करना चाहेंगे तो उसके लिए आवश्यक होगा कि भारत पूरी दुनिया को कम से कम दो बार लूटे। डॉ. राममनोहर लोहिया ने भी यह बारम्बार कहा था कि साम्राज्यवादी प्रगति का आधार औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी शोषण है। डॉ. लोहिया और पंडित दीनदयाल उपाध्याय- दोनों का स्पष्ट विचार था कि साम्राज्यवाद से भिन्न रास्ते के लिए हमें समुचित प्रौद्योगिकी अपनानी होगी। जिसमें मझली और छोटी सिंचाई योजनाएँ तथा अपेक्षाकृत कम भयावह आकार वाले औद्योगिक संस्थानों तथा तकनीकी को अपनाना अत्यधिक आवश्यक है। उसके साथ ही ग्रामीण और लघु तथा कुटीर उद्योगों को राष्ट्रीय अर्थनीति में प्राथमिकता देनी होगी। खेतिहर माल और करखनिया माल के दामों में आनुपातिक संतुलन बनाकर रखना होगा। राष्ट्रीयकरण के स्थान पर समाजीकरण अर्थात् महत्वपूर्ण संसाधनों पर पंचायतों और स्थानीय समाज का नियंत्रण रखना होगा। दामों पर नियंत्रण रखना होगा। साथ ही कराधान की नीति को सरल बनाना होगा और आमदनी के स्थान पर खर्च पर नियंत्रण लगाना होगा। ऐसा करते हुए विशाल राष्ट्रीय पूँजी का संचय हो सकेगा और उसका नियोजन सामाजिक सहमति के साथ विकेन्द्रीकृत संस्थाओं के द्वारा किया जाएगा। इसके लिए डॉ. लोहिया ने चौखम्भा राज की परिकल्पना प्रस्तुत की थी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्ममानववाद का दर्शन प्रस्तुत किया।[7] श्री जयप्रकाश नारायण ने यही बात पंचायती राज की अपनी अवधारणा और विकेन्द्रीकृत विकास के लक्ष्य पर बल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देते हुए कही थी।[8]

परन्तु श्री जवाहरलाल नेहरू ने कभी भी गांधीजी को ही विचार योग्य नहीं माना। डॉ. लोहिया और जे.पी. तो उनसे आयु में छोटे थे और उन्हें वे लाड़ से कभी समझा देते थे, कभी डांट देते थे और कभी टाल देते थे। उनकी बातों को विचार योग्य कभी नहीं माना। दीनदयाल उपाध्याय की अर्थनीति उनके समक्ष कभी विचार के लिए आई ही नहीं। श्री नेहरू विकास के लिए मुख्यत: सोवियत रास्ते पर चलते रहे, जबकि लोकतांत्रिक राजनीति में उनका आदर्श इंग्लैंड और पश्चिमी यूरोप बना रहा। भारत जैसे विराट देश ने इस गलत मार्ग पर चलते हुए भी खासी समृद्धि कमाई है। परन्तु साथ ही कर्ज का विशाल बोझ भी भारत के सर पर है।[9] चीन जैसे देश अंतर्राष्ट्रीय ऋण को कभी भी धता बता सकते हैं, परन्तु भारतीय राज्य की वैसी कोई तैयारी भी नहीं है। उसके लिए जो स्वतंत्र अर्थशास्त्रीय चिंतन चाहिए, वह भारत के विश्वविद्यालयों या अन्य अकादमिक संस्थानों द्वारा आज तक नहीं किया गया है। परिणाम यह है कि आज पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के अर्थशास्त्री अन्य देशों के समक्ष केवल ये विकल्प रखते हैं कि 50 वर्ष पूर्व जिस प्रकार अनेक देश सम्पन्न हुए हैं (उनका आशय यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका से ही है), उसी प्रकार आज अन्य देश सम्पन्न क्यों नहीं हो पा रहे हैं? इसके साथ ही उन्होंने गरीबी उन्मूलन के लक्ष्य को वैश्विक लक्ष्य घोषित कर दिया है। ऐसा करते हुए राष्ट्रों के बीच किए गए अन्याय के परिमार्जन और क्षतिपूर्ति की बात पूरी तरह दबा दी गई है। केवल स्वयं की समृद्धि की बात वे करते हैं, उस समृद्धि के पीछे कोई अर्थशास्त्रीय नियम नहीं हैं, इसकी चर्चा नहीं होती।

सच को छिपाते हुए तरक्की की बातें

बात को कुछ इस तरह रखा जाता है कि मानो पश्चिमी यूरोप और अमेरिका ने जो समृद्धि पाई है, वह किन्हीं अर्थशास्त्रीय नियमों पर चलने के कारण पाई है, लूट और छीना-झपटी से नहीं पाई है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों को पूरी तरह विलुप्त करने का प्रयास चल रहा है। परन्तु इससे संकट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केवल गहरा ही होगा। इतने महत्वपूर्ण तथ्यों को भुला देने के बाद भारत तथा अन्य देश कैसी गहरी खाई में गिरते चले जाएँगे? इसका अनुमान भी भारत तथा अन्य देशों के बौद्धिक तथा राजनैतिक वर्ग के मस्तिष्क में उभर नहीं पाए, ऐसा प्रयास हो रहा है।

कहीं भी विकास लोकतन्त्र के साथ नहीं हुआ है

न तो संयुक्त राज्य अमेरिका ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाकर विकास किया है और न ही इंग्लैंड या अन्य किसी यूरोपीय देश ने। जबकि आज भारत सहित सभी तथाकथित विकासशील देशों को लोकतंत्र और विकास दोनों को परस्पर एक मानने का उपदेश दिया जा रहा है। निश्चय ही लोकतंत्र और विकास साथ-साथ संभव हैं, परन्तु उस विकास की दिशा इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास की दिशा हो ही नहीं सकती।

फ्री ट्रेड के नाम पर

वस्तुतः 'फ्री ट्रेड' के नाम से जो आर्थिक नीतियाँ एशियाई एवं अफ्रीकी देशों को सुझाई जा रही हैं, वे इन देशों के लिए घातक होने वाली हैं। तथ्य तो यह है कि आर्थिक स्तर की भिन्नता वाले देशों के मध्य 'फ्री ट्रेड' होने पर कम दक्षता वाले देशों के अधिकांश प्रमुख उद्योग नष्ट ही हो जाते हैं। इस प्रकार ये देश तथाकथित विकसित देशों के नए आर्थिक उपनिवेश बनने को विवश हो जाते हैं और उन्हें वैसी ही चीजों का उत्पादन करना होता है, जिसकी माँग विकसित देश करते हैं। ऐसी स्थिति में व्यापार की शर्तें भी विकसित देश ही तय करते हैं और विकासशील देश एक अर्थ में उनके दास बनकर रह जाते हैं। इन सब तथ्यों पर विचार के लिए भी पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के विगत डेढ़ शताब्दी में हुए विकास के तथ्यों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ समझना होगा और साथ ही भारत की समृद्धि किस प्रकार नष्ट हुई, इसे भी इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ही स्मरण करना होगा। भारत की समृद्धि का नष्ट होना भारत की किसी आर्थिक नीति की गड़बड़ी का परिणाम नहीं था। वह किसी मानवीय राजनीति का परिणाम भी नहीं था। वह तो क्रूर, नृशंस और पैशाचिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लूट तथा विनाश का परिणाम था। इसके लिए आवश्यक है कि हम इंग्लैंड के 18वीं शताब्दी ईस्वी के इतिहास को जानें और साथ ही उसी समय के भारतीय इतिहास को भी जानें।

राष्ट्रीय जीवन से कटी हुई अर्थशास्त्र की पढ़ाई

वस्तुत: इन दिनों समकालीन भारतीय अर्थशास्त्र की मुख्य चिंताएँ क्या हैं, यह भलीभांति समझ पाना कठिन है। प्रायोगिक अर्थशास्त्र के रूप में आधुनिक अर्थशास्त्र की अनेकानेक शाखाएँ पूरे विस्तार के साथ पढ़ी और पढ़ाई जा रही हैं। परन्तु समकालीन भारतीय राष्ट्रीय जीवन से उनका संबंध सचमुच क्या और कितना है, इसका कोई परीक्षण होता नहीं दिखता। यह तो है कि भारतीय शासन अर्थशास्त्रियों के परामर्श को पर्याप्त महत्व देता है और इन दिनों भारत में एक अर्थशास्त्री ही प्रधानमंत्री हैं। वृद्धि, विकास, वृद्धि दर, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि, राष्ट्रीय बचत में वृद्धि, विदेशी मुद्रा विनिमय के लिए अपेक्षित मुद्रा भण्डार की चिंता और व्यवस्था शासन को है। परन्तु ये चिंताएं सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण और समृद्धि की चिंता से कहाँ तक जुड़ी हैं, इस पर कोई खुली चर्चा और विचार प्रतिष्ठित आर्थिक संस्थानों, केंद्रों और विश्वविद्यालयों में होता दिखता नहीं। एक ओर जहाँ पिछले साठ सालों में विभिन्न क्षेत्रों में हुए शोधों से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो चुका हैं कि प्रचलित तकनीकी न तो लागत कुशल (कास्ट एफिशिएण्ट) है , न ही श्रम कुशल (लेबर एफिशिएण्ट) और न ही पूँजी कुशल (कैपिटल एफिशिएण्ट)।

क्लब ऑव रोम की रिपोर्ट 'द लिमिट टू ग्रोथ' 1971 में ही आ गई थी। अप्रैल 1968 में 10 देशों के 30 व्यक्तियों ने मानव जाति के भविष्य पर चिंतन की जो प्रक्रिया इतालवी उद्योग प्रबंधक ऑरेलियो पेक्केइ की प्रेरणा से प्रारंभ की थी, उसमें से क्लब ऑव रोम की परिकल्पना उभरी। जो कि वस्तुत: 25 देशों के 70 व्यक्तियों की एक अनौपचारिक समिति मात्र है। उनमें से कोई भी किसी शासकीय पद पर नहीं था और वे सब लोग अलग-अलग राष्ट्रीय चिंताओं और अलग-अलग राजनैतिक मतों वाले लोग थे। उनकी चिंता के केंद्र में पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों का विनाश ही था। पेक्केइ स्वयं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार निर्माता तथा अभियांत्रिकी से संबंधित उद्योग के प्रबंधक थे। ह्यूगो थिएमन जिनेवा की युद्ध संस्था के मुखिया थे। अलेक्जेंडर किंग एक व्यापारिक संस्था के विज्ञान संबंधी मामलों के निदेशक थे तो साबुरोओकिता एक जापानी आर्थिक अनुसंधान केंद्र के संचालक थे। एडुअर्ड पेस्टेल जर्मनी के एक तकनीकी संस्थान के अधिकारी थे और कैरोल विलसन अमेरिका की मैसेचुसेट प्रौद्योगिक संस्था के अधिकारी थे। जाहिर है कि इनकी रिपोर्ट पर सरकारों को कोई भी कार्रवाई नहीं करनी थी, केवल गैर यूरोपीय देशों में इसका हल्ला मचवाना था और रिपोर्ट के जो अंश यूरोपीय तथा अमेरिकी शासकों को अपनी किसी इच्छित घोषणा के लिए उपादेय लगे, उसका नितान्त भिन्न संदर्भों में उपयोग करना था। क्लब ऑव रोम की परियोजनाओं के अलग-अलग चरणों का अध्ययन यूरोप और अमेरिका के विभिन्न व्यापारिक प्रतिष्ठानों के निदेशकों के नेतृत्व में संपन्न हुआ।

यूरोपीय रणनीतियों के बारे में भारतीय राजनीति बेखबर

यूरोप के अलग-अलग देशों ने विगत 200 वर्षों में किस प्रकार पहले अपने व्यापारियों और औद्योगिक प्रतिनिधियों के द्वारा वातावरण की सृष्टि की है और फिर उसके द्वारा दूसरे समाजों और देशों की नब्ज पहचानकर किस प्रकार उपयुक्त समय देखकर अचानक राजनैतिक हस्तक्षेप किए हैं, यह अब एक प्रकार से सर्वविदित है, परन्तु दूसरे प्रकार से भारत में इस रूप में अविदित है कि यूरोप के देशों की इस रणनीति पर भारत में न तो किसी भी राजनैतिक दल में गहराई और विस्तार से चर्चा होती, न ही शासन और प्रशासन के स्तर पर और न ही एकेडमिक्स में। ऐसी स्थिति में आर्थिक मामलों में अधिकांश एकेडमिक चर्चाएँ उन्हीं मुद्दों पर और उसी ढंग से, एक प्रकार से आश्चर्यजनक अनुकरणशीलता के साथ की जाती रहती हैं, जो मुद्दे और जो तरीके भारत जैसे देशों के लिए यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका के कतिपय प्रतिनिधियों द्वारा सुझा दिए जाते हैं। फलस्वरूप न तो वैश्विक स्थिति का भारतीय दृष्टि से कोई अद्यतन आकलन किया जाता, न ही भारत की वास्तविक समृद्धि का कोई आकलन किया जाता और न ही भारत के स्पष्ट राजनैतिक तथा सांस्कृतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्ष्यों के अनुरूप आर्थिक लक्ष्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जाता है। अधिकांशतः तो अर्थशास्त्र सहित मानविकी विद्याओं के क्षेत्र में सम्पूर्ण पढ़ाई-लिखाई विभिन्न व्यक्तियों की निजी इच्छाओं और योजनाओं से परिचालित अनुकरणशीलता के ही भिन्न-भिन्न रूप बनकर रह जाती है।

यह तो अच्छा हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मार्क्सवाद और समाजवाद के दौर में भी भारतीय व्यापार का सम्पूर्ण विनाश नहीं किया गया अर्थात उसे पूरी तरह सरकारी नहीं बना डाला गया। क्योंकि ऐसा कर पाना सरकारी अफसरों के बूते का नहीं था। ऐसा करने पर जो भयंकर घाटा भारतीय राजकोष को उठाना पड़ता, उससे सरकारी खजाना चरमरा जाता और सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को वेतन के भी लाले पड़ जाते, विकल्प में उन्हें कराधान के स्तर को अभी के स्तर से भी कई गुना अधिक बढ़ाना पड़ता, जो भयंकर तानाशाही के बिना असंभव था और ऐसी तानाशाही के लिए भारत की सेनाएँ राजपुरुषों और नागरिक अफसरों का साथ देने को तैयार नहीं होतीं। इसीलिए वह रास्ता नहीं अपनाया गया। तथापि मार्क्सवादी अनुसरण खूब चला। परन्तु 1980 ईस्वी के बाद से 'क्लब ऑव रोम' की रिपोर्ट की चर्चा विश्व में व्यापक हो गई तथा पर्यावरण के प्रश्न भी गम्भीर होकर सामने आए, जिसके कारण एकरैखिक विकास पर अंध आस्था सम्भव नहीं रही। उदारीकरण और वैश्वीकरण की चर्चाएँ हवा में फैल गईं। अर्थशास्त्री तो इनसे जुड़ी समस्याओं से परिचित ही थे। परन्तु राज्य का शिक्षा और संचार माध्यमों में व्यापक नियंत्रण होने के कारण तथा भारतीय शिक्षा परम्परा और विचार परम्परा को अतीत की वस्तु प्रचारित कर दिए जाने के कारण शिक्षित समाज में उदारीकरण और वैश्वीकरण से जुड़ी समस्याओं पर कोई सजगता नहीं आई पाई तथा उत्साह से स्वागत किया जाता रहा। परन्तु जिसे मुक्त व्यापार कहा जाता है, वह तो किसी भी अर्थ में मुक्त व्यापार होता नहीं। 'फ्री ट्रेड' शब्द वस्तुतः विगत 150 वर्षों से खूब चलन में है। स्वयं एडम स्मिथ ने 'फ्री ट्रेड' की बात कही थी। परन्तु उस 'फ्री ट्रेड' में साम्राज्यवादी शोषण, लूट, छीना-झपटी और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
डकैती का भरपूर समर्थन था। इसी से स्पष्ट है कि 'फ्री ट्रेड' की अवधारणा कितनी छलपूर्ण है। हेर-फेर से यह अवधारणा किसी न किसी छल के साथ ही प्रस्तुत होती रही है।

श्रम के दामों की विषमता

डॉ. राममनोहर लोहिया ने भिन्न-भिन्न देशों के बीच श्रम के दामों की असमानता के मुद्दे को पूरे विस्तार से उठाया था। परन्तु समकालीन अर्थशास्त्रियों ने वह मुद्दा उपेक्षित कर दिया है। एक औसत अमेरिकी श्रमिक के एक घंटे के परिश्रम का जो मूल्य है, वह औसत चीनी श्रमिक के 10 घंटे या 14 घंटे के परिश्रम के मूल्य के बराबर है। यही बात भारत के श्रमिक के विषय में भी सही है। ऐसे में यदि भारत, अमेरिका और चीन परस्पर यह तय कर भी लें कि प्रत्येक देश को वह वस्तु बनानी है, जो वहाँ अपेक्षाकृत सर्वाधिक सस्ती पड़े और फिर परस्पर मुक्त व्यापार करना है, तब भी तीनों देशों के बीच आर्थिक विषमता बनी रहेगी। उत्पादित वस्तुओं के बाजार में संतुलन लाने मात्र से उत्पादकों के मध्य संतुलन नहीं पैदा हो जाता। उसके लिए वैश्विक संसाधनों पर विश्व के सभी नागरिकों के समान अधिकार की बात माननी होगी। जिसे डॉ. लोहिया ने विश्व नागरिक की अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया था। परन्तु विश्व का कोई भी राष्ट्र राज्य इसे मानने को तैयार नहीं होगा, क्योंकि तब राज्य वस्तुतः विश्व व्यवस्था की इकाई मात्र रह जाएँगे। अभी का कोई भी शासन तंत्र इस स्थिति की कल्पना तक को स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी स्थिति में 'फ्री ट्रेड' पूरी निष्पक्षता से होने लगे, तब भी वह देशों के बीच भारी विषमता और असंतोष को जन्म देगा। परन्तु तथ्य तो यह है कि ऐसा कोई 'फ्री ट्रेड' कहीं है ही नहीं। संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के प्रत्येक देश अपने यहाँ के व्यापार को कई चीजों में भारी सब्सिडी देते हैं तथा बाहरी वस्तुओं के आयात पर कराधान बढ़ी हुई मात्रा में करते हैं। इसके अतिरिक्त शासन का उपयोग दूसरे देशों पर दबाव डालने और शर्तें तय करने के लिए किया जाता है। स्वयं अमेरिकी शासन अपने यहाँ के उत्पादन और व्यापार के पक्ष में पूरी दुनिया के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभी देशों पर अनेक शर्तें लादता है और भांति-भांति के दबाव बनाता है। ऐसी स्थिति में 'फ्री ट्रेड' वस्तुत: होता नहीं। विविध अमेरिकी उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से बाहर रखने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका ने अनेक प्रकार के संरक्षण दे रखे हैं।

मूल मुद्दे उपेक्षित

अत: 'फ्री ट्रेड'जैसा वस्तुत: कुछ है नहीं। तो भी जिस सीमा तक राज्य तंत्र का नियंत्रण व्यापार से हटे, वह अच्छा ही होता है। तर्क तो यही दिया जाता है कि मुक्त व्यापार समझौते (फ्री ट्रेड एग्रीमेंट)एक वैश्विक मुक्त बाजार व्यवस्था की ओर कदम हैं, तथापि व्यवहार में अभी तक ये कतिपय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए विश्व बाजार खोलने की तकनीक ही साबित हुए हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण की बहसों में उलझकर विकास की दिशा के मूल प्रश्न को त्याग ही दिया गया है, जबकि विकास की दिशा का प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

वृद्धि की सीमा के तथ्य सामने आने के बाद सारी बहसें विकास की दिशा को लेकर उठी थीं, टिकाऊ विकास की चिंता प्रमुख हो गई थी। परन्तु अचानक सारी बहस को यह नया मोड़ मिल गया है। परन्तु मूल प्रश्न की उपेक्षा उचित नहीं है।

अगले पृष्ठों में सर्वप्रथम हम इस मूल प्रश्न से जुड़े तथ्यों को ही प्रस्तुत करेंगे। यूरोप के विकास के तथ्य जानने और याद रखने जरूरी हैं। उसके साथ ही 18वीं शताब्दी ईस्वी के भारत की आर्थिक समृद्धि की दशा का स्मरण आवश्यक है। ब्रिटेन द्वारा भारत और अन्य देशों की जो लूट की गई, जैसा भयंकर शोषण किया गया और अमानवीय तथा पैशाचिक आचरण किया गया (वैसा ही आचरण अन्य यूरोपीय देशों द्वारा विश्व में अन्यत्र किया गया), उसके तथ्यों को भुलाकर भारत के सामने विकास की चुनौती को उपस्थित प्रचारित करना सत्य को ढँकना है। शिक्षा और संचार माध्यमों पर राजकीय नियंत्रण के कारण यह ढँकना समाजवादी दौर में सरल था, परन्तु अब तो इसमें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो गई हैं। अतः सम्पूर्ण स्थिति पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता पहले से भी अधिक हो गई है। यह बात अलग है कि अब भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी, डॉ. राममनोहर लोहिया, श्री दीनदयाल उपाध्याय और श्री जयप्रकाश नारायण की तरह इन मुद्दों को उठाने वाला कोई व्यक्तित्व और कोई नेतृत्व है ही नहीं, तो भी प्रबुद्ध भारतीय समाज के समक्ष इन मुद्दों को उठाना एक भारतीय अर्थशास्त्री का नैतिक कर्त्तव्य है। अगले पृष्ठों में हम सर्वप्रथम बात वहाँ से शुरू करेंगे, जहाँ से भारत के गरीब होने या भारत को गरीब बनाए जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और उसी के साथ इंग्लैंड के धनी तथा विकसित होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

•••

संदर्भ

1. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्,15वां अधिकरण, अध्याय-1/1, 'मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः। मनुष्यवती भूमि : इति अर्थः। तस्याः पृथिव्या : लाभ पालन उपाय : शास्त्रम् अर्थशास्त्रम् इति। 2. वही 15/1/2, 3. वही 15/1/4
4. एडम स्मिथ : एन इन्क्वायरी इन टु दि नेचर एंड काज़ेज़ ऑव दि वेल्थ ऑव नेशन्स, लंदन, 1776 ईस्वी, पाँचवां संस्करण, 1904ईस्वी, लंदन.
5. देखें, (क) महात्मा गांधी : 'ग्राम स्वराज्य' एवं 'मेरे सपनों का भारत', नवजीवन, अहमदाबाद, 1950 ई. (ख)डॉ. राममनोहर लोहिया- 'इकानॉमिक्स आफ्टर मार्क्स', मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म, हैदराबाद,1967 ई.
6. हेजेल हेन्डरसन : पैराडाइम्स इन प्रोग्रेस, इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ-6, नॉलेज सिस्टम, इंडियनपोलिस (1991 ईस्वी)।
7. दीनदयाल उपाध्याय: एकात्म मानव दर्शन, 1965 ई., 8. जयप्रकाश नारायण : पंचायतीराज, नई दिल्ली, 1966 ई. 9. देखें, के.एल. केडिया एवं ए. सिन्हा : डैट ट्रैप ऑर डेथ ट्रैप, वाराणसी, 1997 ईस्वी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय- 2

अठारहवीं शताब्दी के भारत की आर्थिक समृद्धि का स्वरूप ठीक से जानें

विगत 150 वर्षों में भारत क्यों इतना कम विकसित हो सका अथवा पहले से अधिक विपन्न क्यों हो गया, इंग्लैंड की तरह आगे क्यों नहीं बढ़ा, इसके उत्तर की जिन्हें तलाश है, उन्हें ब्रिटिश-पूर्व अखण्ड भारत की परिस्थिति की वास्तविकता को ठीक तरह से जानना होगा। के.एन. चौधुरी, रादरमुंड, धर्मपाल, तपन राय चौधुरी, एम.एन. पियर्सन, एस. चौधुरी, ए.दासगुप्ता, एच. फर्बर, जे.सी. वान ल्यूर, पी. नाइटिंगेल, ओमप्रकाश और एस.आर्षरत्नम आदि विद्वानों ने अपनी विशिष्ट शोध गवेषणाओं के द्वारा तत्कालीन भारत के विषय में जो तथ्य उजागर किए हैं, उनके सन्दर्भ में ऐसा करना आवश्यक हो गया है। इन विद्वानों द्वारा उद्घाटित तथ्य विकास के प्रश्न पर ताजी समझ की अपेक्षा करते रहे हैं और वे ब्रिटिश-पूर्व भारत के समय और दशा को नये परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत सामने लाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वे सभी 'ग्रोथ थिअरीज' (वृद्धि की सैद्धांतिक धारणाएँ) चिन्तनीय रूप में अपनी सीमाओं में कैद नजर आती हैं, जिन पर कि स्वतन्त्र भारत में अंधभक्ति से अमल होता रहा है।

काल की एकरैखिक अवधारणा

विकास के वर्तमान आर्थिक सिद्धान्तों एवं धारणाओं की जाँच की जाय तथा साथ ही उन पूर्वानुमानों एवं मान्यताओं की, जिन पर वे आधारित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

हैं, तो यह स्पष्ट होगा कि उनमें से अधिकांशत: तो मानव-समाज और सामाजिक
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
व्यवस्थाओं (सोशल सिस्टम्स) के मार्क्सवादी सैद्धांतिक प्रतिपादनों का प्रतिफलन है। मार्क्सवादी धारणा है कि प्रत्येक समाज को सभ्यता के उदय एवं विकास के क्रम में 'वर्गहीन समाज' की आदर्श दशा तक पहुँचने के लिए विविध अवस्थाओं या चरणों (स्टेजेस) से गुजरना पड़ता है। यानी कि प्रत्येक समाज को सामन्तवाद (फ्यूडलिज्म), पूँजीवाद, समाजवाद आदि चरणों से अनिवार्यत: गुजरना है, तभी तो मार्क्स की भविष्यवाणी सही सिद्ध होगी। मार्क्स से पूर्व परिकल्पित समानता पर आधारित समाजवाद को तो मार्क्स ने 'प्रिमिटिव सोशलिज्म' कहकर खारिज कर दिया था। मार्क्स के अनुसार संसार के सभी समाज उपर्युक्त क्रम में एकरैखिक दिशा में विकसित हो रहे हैं, भले ही उनमें परस्पर विविधता, विभिन्नता एवं विशिष्टताएँ हैं।

काल्पनिक बातों का प्रचार

इस तर्क से यह निर्णय कर लिया गया कि मध्य युग, सामंती युग था (जो यूरोप के लिए सत्य था, वही भारत के लिए भी सत्य मान लिया गया)। अत: वह स्वत: पिछड़ा, ठहरा हुआ, 'प्रिमिटिव' और इसीलिए हेय, तुच्छ, तिरस्कार-योग्य था। उसके बाद की शताब्दियों ने यूरोप के व्यापार-वाणिज्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी इत्यादि का आरम्भ और शानदार 'विस्तार' देखा, जिस सबका परिणाम उस चीज के 'उभार' के रूप में सामने आया, जिसे मार्क्स ने 'पूँजीवाद' कहकर निरूपित किया। संयोगवश जैसा कि बताया जाता है, यह सब इंग्लैंड से शुरू हुआ और बाद में फ्रांस, हॉलैण्ड, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि ने उसका अनुसरण किया। इस प्रकार, 'पश्चिमी' समाजों के उत्कर्ष का रहस्य उनकी गत्यात्मकता, (डाइनॉमिज्म) और 'डाउन टु अ:थ' (जिसे हिन्दी में लोगों ने 'जमीन से जुड़ी' के हास्यास्पद रूप में अनूदित कर रखा है) 'एप्रोच' में है, ऐसा बताया जाता है। यह 'डाउन-टु-अ:थ' एप्रोच अर्थात् 'व्यावहारिक दृष्टि' ही यूरोपीय विचारकों के अनुसार विविध क्रान्तियों के रूप में सामने आई है। इसी 'एप्रोच' के कारण उन्होंने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी सामंती बेड़ियाँ उतार फेंकें और अकल्पित समृद्धि तथा विकास के एक नये संसार में वे दाखिल हो सके, ऐसा प्रचारित किया जाता रहा है।

पूर्वमान्यताओं से प्रेरित प्रश्न

इन्हीं पूर्वमान्यताओं के प्रचण्ड प्रभाव के कारण मार्क्सवादियों ने इस तरह के तमाम सवाल तेजी से खड़े किए कि भारत इस दौड़ में क्यों पिछड़ गया? वह वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, व्यापारिक तथा बैंकिंग एवं परिवहन की क्रान्तियों से क्यों नहीं गुजरा? दूसरे शब्दों में (क) भारत पिछड़ा क्यों बना रहा, जबकि वह विगत 150 वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विश्व-अर्थव्यवस्था के 'नेटवर्क' के दायरे में लाया जा चुका था? (ख) उसके बारे में मार्क्स की भविष्यवाणी सच क्यों नहीं सिद्ध हुई? (मार्क्स का विचार था कि इंग्लैंड का भारत में दुहरा 'मिशन' है- एक है विध्वंसक, दूसरा नवोन्मेषकारी। इंग्लैंड भारत में प्राचीन एशियाई सामाजिक ढाँचे का समूलोच्छेदन करके विध्वंसक मिशन पूरा करेगा तथा 'पश्चिमी' समाज के 'मेटीरियल फाउंडेशन्स' की नींव भारत में भी रखकर एशिया में पश्चिमी समाज की 'मेटीरियल फाउंडेशन्स' का विस्तार करेगा- 'यह होगा इंग्लैंड का नवोन्मेषकारी मिशन। (देखें-कार्ल मार्क्स, 'द फ्यूचर रिजल्टस ऑव ब्रिटिश रूल इन इंडिया', 'आन कालोनियलिज्म' में)। (ग) स्वाधीनता के बाद भी भारत विकास के पथ पर यूरोप की रफ्तार से क्यों नहीं बढ़ा?

ज्ञान की भयावह अल्पता

हमारे विद्वान विकास सम्बन्धी सैद्धान्तिक प्रतिपादनों में अंतर्निहित पूर्वानुमानों की शिक्षा-दीक्षा में इतने दीक्षित-प्रशिक्षित थे कि वे इन उठाये गये प्रश्नों का एक ही उत्तर ढूँढ़ व पा सके- (भारत पिछड़ा रहा, वहाँ इंग्लैंड अपना विध्वंसक एवं नवोन्मेषकारी, दोनों ही तरह का मिशन पूरी तरह सम्पन्न न कर सका तथा भारत पूर्णतः पश्चिम जैसा विकसित नहीं हो सका, क्योंकि)- भारत 'सामंती' था, अतः उसकी अर्थव्यवस्था कठोर, अनम्य, परम्परागत, गैर-प्रगतिशील रही। वह अपनी पुरानी संस्थाओं को समाप्त करने में विफल रहा,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

इसीलिए वह 'पश्चिमी' देशों जैसा 'विकास' नहीं कर सका। वे संस्थाएँ भारत के आर्थिक विकास का अवरोधक बनती रहीं। वे एक ही उत्तर देते रहे– 'अतीत का बोझ'– भारत के ठहराव का कारण है। इस प्रकार 18वीं शताब्दी का भारत वैसा कुछ चित्रित किया जाता रहा, जैसा कि वस्तुत: वह कभी था ही नहीं।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ईसाई मिशनरियों को 'अथॉरिटी' मान लिया

एक और भी, अत्यधिक महत्वपूर्ण, बात यह है कि उक्त अवधि के भारत की स्थिति की हमारी जानकारी बहुत थोड़े से तथ्यों तक सिमटी रही। ये वे तथ्य थे जो मुख्यत : ईसाई मिशनरियों के और नृतत्वविदों नामक नये उभरे विशेषज्ञों के लेखन द्वारा हम तक सम्प्रेषित हुए थे। भारत के बारे में और साथ ही अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों के बारे में जो आरम्भिक लेखन अंग्रेजी में सामने आया, वह सारा ही विविध–यूरोपीय देशों के यात्रियों, ईसाई मिशनरियों और पादरियों तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेवकों द्वारा रचित है। फर्बर के शब्दों में– 'उनका उद्देश्य भारतीय सभ्यता का गम्भीर अध्ययन नहीं था, अपितु पाठकों को मनोरंजक एवं कुतूहलवर्धक जानकारियाँ देना तथा भारतीय रीति–रिवाजों के बेतुकेपन और अनोखेपन को दिलचस्प ढंग से और उत्साह तथा विस्तार के साथ प्रस्तुत करना था।'[1] होल्डेन फर्बर ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास पर सघन कार्य किया था और ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहे इलाकों की काफी यात्रा कर फिर ब्रिटेन, नीदरलैंड, फ्रांस और डेनमार्क में पुरातात्विक महत्व की सामग्री का अध्ययन किया था। वे 'जान कम्पनी एट वर्क' सहित अनेक पुस्तकों के लेखक हैं तथा भारत में विशेषकर 18वीं शती ई. में ब्रिटिश शक्ति की वृद्धि पर उनके अनेक लेख हैं। वे आगे लिखते हैं– 'यूरोपीय 'प्राच्यविद' 1770 ई. के पहले तक सामने नहीं आये थे। अत: मिशनरियों एवं पर्यटकों द्वारा लिखित उक्त साहित्य ही बाद में 'प्राच्य विद्या के विद्वत्तापूर्ण अध्ययन' का आधार बना। यूरोप के ईसाई मिशनरियों और ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेवकों द्वारा प्रस्तुत साहित्यिक और विद्वत्तापूर्ण कार्य का परिपोषण यूरोपीय प्राच्यविदों द्वारा किया जाने लगा। क्योंकि वे इसी विशेष प्रयोजन से यूरोप से बाहर रुचि ले रहे थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
एशिया में दो प्रसिद्ध यूरोपीय विद्यामंडल स्थापित किये गये- बाटविया में 1774 ई में 'बटावियाश्च जेनूत्श्चात' तथा कोलकाता में 1786 ई. में 'एशियाटिक सोसाइटी अफ बेंगाल' वे यूरोपीय प्रबोधन(एनलाइटेनमेंट)के ही परिणाम थे'।

हिन्दुओं को विधर्मी कहा

एक ईसाई मिशनरी ने एक किताब लिखी- 'द ओपन डोर टू द सीक्रेट ऑफ हीदेनडम' यानी 'विधर्म (गैरईसाइयत) के रहस्य का खुला द्वार'। यहाँ विधर्म से निश्चित अभिप्राय था हिन्दू धर्म से जो ईसाइयों के अनुसार धर्महीनता और धर्मविकृति है। इस पुस्तक का नाम ही लेखक की मनोयोजना का पर्याप्त प्रमाण है। परन्तु यूरोपीय विद्वानों ने इसे हिन्दुत्व के इतिहास के बारे में असाधारण महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित-प्रशंसित-प्रचारित किया।

बिना भारत आए लिखी गई भारत पर पुस्तकें

होल्डेन फर्बर कहते है कि सन् 1914 ईस्वी तक इस विषय (हिन्दुत्व एवं प्राच्यविद्या) पर पश्चिम का ज्ञान मुख्यत: यूरोपीय पर्यटकों के वृत्तान्तों, यूरोपीय मिशनरियों द्वारा रचित सामग्री तथा यूरोपीय सौदागरों एवं सेवक अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत विवरणों पर निर्भर था। साथ ही कुछ ऐसी बड़ी पुस्तकों या लम्बे निबन्धों पर जो ऐसे यूरोपीयों द्वारा लिखे गए थे, जो कभी यूरोप से बाहर निकले ही नहीं थे, जैसे कि एबे रेनाल और जेम्स मिल। यह लगभग समस्त सामग्री सम्बन्धित विषय में गैर-जानकार लोगों द्वारा रचित अत: अधकचरी थी। पहले कुछ तय कर लिया, फिर उसी के अनुरूप किस्से और गप्पें तथा अर्धसत्य लिखते गए। गैर-यूरोपीय विद्वानों ने भी उसी परम्परा का अनुसरण किया और अपनी रचनाओं में वे सदा 'यूरोपीय श्रेष्ठता' को 'एकनॉलेज' करते (स्वीकार करते) दिखते हैं।[2]

भारतीय शास्त्रों से विमुख 'भारतवेत्ता' भारतीय

वस्तुत: स्वाधीन भारत में एक परकीय एवं आत्मविमुख अभिजन वर्ग (एलिअॅन एलीट) ही शिक्षातंत्र एवं आधुनिक 'ऐकॅडेमिक्स' पर हावी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा। फलस्वरूप उसने अपनी पसन्द का इतिहास रचने पर विशेष ध्यान दिया और इसीलिए यूरोपीय ईसाई मिशनरियों, घुमक्कड़ों और यूरोप के 'ऑरिएन्टॅलिस्ट्स' द्वारा रची गई सामग्री को ही उसने भारत की इतिहास रचना का आधार बनाया। स्वयं भारत में रहकर भी, भारत और हिन्दू समाज के विषय में ये अधिकारी विद्वान बनने या दिखने के इच्छुक 'इतिहासकार' तथा 'अन्य विशेषज्ञ एक भी आधारभूत हिन्दू शास्त्र या भारतीय शास्त्रीय स्रोतों को पढ़ने से सर्वथा विमुख रहे।

विकृत, विद्वेषपूर्ण, भ्रष्ट इतिहास

सार यह कि हम भारतीयों को ब्रिटिशपूर्व भारत का जो इतिहास सुलभ कराया गया, वह बहुत संयमित ढंग से कहें तो विकृत, विद्वेषपूर्ण, भ्रष्ट एवं दुष्टताप्रेरित था। उस इतिहास में प्रमाणों और साक्ष्यों की कोई भी चिन्ता किए बिना ढेरों चीजें मान ली गई थीं और उनका अनुमान लगा लिया गया था। बाद में यही तथाकथित 'ऐतिहासिक दस्तावेज' भारत के अल्पविकसित रह जाने के कारणों की व्याख्या का आधार बनाये जाते रहे। जहाँ कहीं भी बहस और विचार विमर्श या वाद-विवाद होते, वहीं इन ऐतिहासिक दस्तावेजों को भारत के अतीत की समझ के सूत्र-संकेतों की तरह प्रस्तुत किया जाता रहा। उसी आधार पर समस्या के विशद विश्लेषण की उपेक्षा की जाती रही। इस तरह एक विकृति दूसरी विकृति का आधार बनती चली गई और यह सिलसिला आगे बढ़ता रहा। सच्चाई अधिकाधिक उपेक्षित होती चली गई।

इतिहासकार तपनराय चौधरी लिखते हैं- "यहाँ तक कि यह तक स्वत: सिद्ध तथ्य मान लिया गया कि मुगल बादशाहत के टूटने का अर्थ था भारत की अर्थव्यवस्था में व्यापक गिरावट। जबकि इस मान्यता की सच्चाई विशद अध्ययन द्वारा ही जाँची जा सकती है। यह सही नहीं है कि केंद्रीय सत्ता के ढहने से सचमुच अराजकता फैल गई। अवध प्रांत तथा पूरब के दूसरे सूबे असल में स्वतंत्र राज्य थे और उनकी हालत कोई बदतर नहीं हुई।"[3]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ यह तथ्य तो प्राय: किसी भी तथाकथित इतिहासकार एवं आर्थिक इतिहासकार ने संज्ञान में ही नहीं लिया कि वस्तुत: तथाकथित 'मुगल बादशाहत ' कभी भी भारत की केन्द्रीय सत्ता थी ही नहीं। दिल्ली भारत की एक छोटी जागीर थी। वह भारत की राजधानी कभी नहीं थी तथा दिल्ली की तथाकथित बादशाहत से कई गुना विशाल राज्य सदा उस पूरी अवधि में भारत में बने रहे- चोल, चेर, पांड्य, सातवाहन, विजयनगर साम्राज्य आदि।

पूर्वधारणाओं एवं पूर्वानुमानों का परिप्रेक्ष्य

इसीलिए यहाँ भारत और विश्व के इतिहास के बारे में प्रचलित उन पूर्वधारणाओं एवं पूर्वानुमानों का परिप्रेक्ष्य समझना आवश्यक है। तभी उनकी यथार्थता एवं अयथार्थता का, प्रामाणिकता एवं अप्रामाणिकता का सम्यक निश्चय संभव होगा तथा उन पर आधारित विचार-प्रत्ययों का भी परीक्षण किया जा सकेगा।

इनमें से कतिपय बहुप्रचारित पूर्वानुमान तथा पूर्व-धारणाएँ ये हैं-

(1) 200 वर्षों पूर्व तक, विश्व पिछड़ा, सामंती, ठहरा हुआ था।

(2) तब खेती ही जीविका का प्रधान जरिया थी।

(3) तब व्यापार एवं उद्योग नाम मात्र को ही थे।

(4) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तो मानो था ही नहीं।

(5) श्रम-विभाजन तो तब प्राय: अकल्पनीय ही था।

(6) तब की राजसत्ता की रूचि किसी तरह स्वयं को बनाये रखने तक ही सीमित थी। समाज के अन्य मामलों में उसे कोई रुचि थी ही नहीं। अधिक से अधिक तब राजपुरुष लोग आराम और सुख भोग में लिप्त रहते थे। देश या राज्य के क्षेत्र के विकास की उन्हें कोई चिंता ही नहीं थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(7) तब सर्वसाधारण जन अतिशय दरिद्र थे।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(8) अकाल, भुखमरी, दरिद्रता और महामारियाँ व्यापक थी।

(9) सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था भारी शोषणमूलक और परजीवी थी।

यहाँ यह फिर से याद कर लेना आवश्यक है कि ये सभी बातें उन दिनों के यूरोप के बारे में तो सत्य थीं। परंतु वे शेष समस्त विश्व के लिए भी यथावत सत्य मान ली गईं। 'पॉजिटिविस्ट' निगमन विधि की परम्परा का यह स्वाभाविक परिणाम है। जाहिर है कि भारत के बारे में भी यही सब सत्य मान लिया गया। भला वह अपवाद क्यों रहे? समय बीतने के साथ, ये पूर्वानुमान मानों खून में समा गए, 'जेनेटिक एजम्प्शन्स' बन गए। पश्चिम में विकसित अनेकानेक विचार प्रत्ययों, सैद्धान्तिकी तथा विश्लेषण मॉडलों द्वारा इन्हीं 'एजम्प्शन्स' को निश्चित एवं औपचारिक रूप दे डाला गया और इन्हें सुनिश्चित साकार वस्तु-सत्य मान लिया गया। पूरी की पूरी पीढ़ी इसी मान्यता में रंगती चली गई।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अवधि में तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों के विकास का प्रश्न सामने लाया गया, तब तक इन बुनियादी विश्वासों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाने की सोचना तक किसी के वश में नहीं बचा था। विद्वानों और राजनोताओं की इस दृष्टि का प्रमाण है-तीसरी दुनिया के देशों की विकास योजनाएँ। अधिक विस्मयप्रद एवं पीड़ाप्रद तथ्य यह है कि आज भी हमारे समाजवैज्ञानिकों के बीच ऐसी कोई जिज्ञासा एवं गवेषणा की वृत्ति सामान्यत: पाई नहीं जाती जो इन 'स्वीकृत विश्वासों' की प्रामाणिकता को जाँचने की दिशा में तत्पर हो। कुछेक अपवाद विद्वान हैं, जिनके विशिष्ट अध्ययनों द्वारा उपनिवेशीकरण से पहले की भारतीय व्यवस्थाओं के ऐसे तथ्य सामने आये हैं जो इन सर्वस्वीकृत हो चले विश्वासों पर प्रश्न खड़ा करते हैं। परन्तु अधिकांश समाजवैज्ञानिक तो उन धारणाओं की वैज्ञानिक दृष्टि से प्रामाणिकता जांचने की कभी इच्छा तक नहीं करते देखे जाते, जिन धारणाओं में वे दीक्षित हो चुके हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तत्कालीन भारत का समुद्रमार्गीय व्यापार

उदाहरणार्थ, यहाँ 18वीं शती ईस्वी के भारत के केवल एक पहलू की चर्चा करें- उसके समुद्रमार्गीय व्यापार की। तत्कालीन तथ्य ये हैं कि-

(1) इस बात के प्रचुर साक्ष्य हैं कि 18वीं शताब्दी के एशियाई समुद्रमार्गीय व्यापार में यूरोप का हिस्सा नगण्य रहा है- यदि उसे समस्त व्यापार के अनुपात में तथा सही परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जाए।

(2) 17वीं-18वीं शती ई. में यूरोपीय जल मार्गीय व्यापारकर्ता (सरकारी और प्राइविट दोनों ही प्रकार के) प्राय: एशियाई सौदागारों के मोहरे मात्र होते थे।

(3) वान ल्योर की टिप्पणी है कि एशिया में 18वीं शती पूरी तरह 'एशियाई शताब्दी' थी, यूरोप की उसमें बहुत मामूली भूमिका थी।[4]

(4) रादरमुंड बताते है कि भारत के समुद्र तटवर्ती इलाकों में उन दिनों पूरी तरह स्थानीय भारतीय शासकों का नियंत्रण रहता था। जलमार्गीय व्यापार पूरी तरह भारतीय व्यापारियों के नियंत्रण में ही था। यह व्यापार लगभग नि:शुल्क था और शांतिपूर्ण था। समुद्री डकैत यदा-कदा गड़बड़ी मचाते।

यूरोपीय लोग भी इन्हीं डकैतों के जैसे कार्य करते थे तथा उनकी हैसियत इन डकैतों जैसी ही थी। इसीलिए उस शताब्दी में जो यूरोपीय सक्रिय दिखते भी हैं, वे कुतूहल का ही विषय माने जाते हैं और उनके प्रति मैत्रीपूर्ण भाव और संदेह तथा अविश्वास का भाव सम्मिलित रूप में मौजूद दिखता है।[5]

परंतु उस काल के बारे में लिखी गई इतिहास पुस्तकें तो ल्योर के शब्दों में 'इन सभी ऐतिहासिक संदर्भों एवं तारतम्य को पूरी तरह अनदेखा करके लिखी गई हैं।' होल्डेन फर्बर भी यही कहते हैं कि 'एशिया में यूरोप की दखलन्दाजी को यूरोप के आर्थिक इतिहास का अंग मानकर देखने की यूरोप में प्रथा है। परंतु एशिया के समुद्रमार्गीय व्यापार के इतिहास को भलीभाँति जाने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बिना यूरोपीय दखलंदाजी का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। एशिया के समुद्रमार्गीय व्यापार का विषय इतना विराट है कि कई पीढ़ियों के सतत अध्यवसाय के बाद ही एशिया के व्यापार-वाणिज्य का इतिहास पूरी तरह समझा जा सकता है।'[6] 'उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से गहरी संलग्नता के ही क्रम में यूरोप और पश्चिम को अति विकसित मानकर उसके समकक्ष एशिया को अल्पविकिसित या अविकसित मानने की धारणा सामने आई है।

वस्तुत: भारत के समुद्रमार्गीय व्यापार का यह दृष्टांत हमने सप्रयोजन चुना है इसके अनेक कारण हैं। मुख्य कारण तो यह है कि 18वीं शताब्दी के भारत पर काम करने वाले विद्वानों का इस विषय पर अत्यधिक ध्यान जाता रहा है, तथापि इसे सम्यक परिप्रेक्ष्य में रखकर नहीं देखा गया। आनुषंगिक कारण यह है कि अगर इस एक मुद्दे को ही हम देख लें कि कैसे-कैसे विस्मयकारी विवरण उद्घाटित हो रहे हैं तो सम्बनधित विषय-क्षेत्रों के समुद्र में गहरे गोता लगाने के परिणाम सहज ही सोचे जा सकते हैं।

यहाँ एक सजगता का आग्रह आवश्यक है। अधिकांश अनुसंधान जो इस विषय पर सामने आये हैं, वे विविध ईस्ट इंडिया कम्पनियों के अभिलेखों एवं पंजिकाओं में संग्रहीत सूचनाओं पर ही आधारित है। इन अभिलेखों एवं पंजिकाओं में वस्तुत: उन कम्पनियों के रोजाना के विचार-विमर्श, मुख्यालयों को भेजे गए 'डिस्पैच,' खतो-किताबत, संस्मरण वगैरह ही है। अत: उन पर आधारित अध्ययनों की सीमाएँ स्पष्ट है।

उदाहरणार्थ, के.एन. चौधरी की 'ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑव एशिया' तथा अन्य पुस्तकें अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी के अभिलेखों पर आधारित है। इसी प्रकार ए. दासगुप्ता की पुस्तकें 'मलाबार इन एशियन ट्रेड 1740-1800 तथा 'इंडियन मर्चेन्ट्स एंड द डिक्लाइन ऑव सूरत 1700-1750' भी (जो भारतीय सौदागरों की क्रियाशीलताओं को लेकर है) अंग्रेजों और डचों के स्रोतों पर आधारित हैं। इसी तरह, जे.सी. वान ल्योर की इंडोनेशियाई व्यापार एवं समाज संबंधी पुस्तक भी डच स्रोतों पर आधारित है। रादरमुंड ने अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कृति 'एशियन ट्रेड एण्ड यूरोपियन एक्सपेंशन इन द एज ऑफ मर्केंटाइलिज्म' में उनकी विस्तृत सूची प्रस्तुत की है।[7] फर्बर के पूर्वोद्धृत शब्दों को यहां पुन: स्मरण कर लें: 'यूरोपीय दृष्टिकोण एवं यूरोपीय प्रेक्षण अवस्थिति से विश्लेषित करने की प्रक्रिया प्रारंभ से ही रही। उसके कारण एशिया में यूरोप के अनधिकृत प्रवेश का सम्यक मूल्यांकन सम्भव नहीं। एशिया के व्यापार का इतिहास तो विराट है। वह पूरी तरह तो कई पीढ़ियों के अध्यवसाय के बाद ही समझा जा सकेगा।'

अपना धंधा फैलाना उनका लक्ष्य

स्पष्ट है कि ईस्ट इंडिया कम्पनियों के जिन अभिलेखों और रजिस्टरों, संस्मरणों आदि पर ये अध्ययन आधारित हैं उन सब दस्तावेजों का संदर्भ उन विदेशी सौदागरों, पर्यटकों, प्रशासकों आदि की एशिया में अपना व्यापार बढ़ाने की सम्भावनाएँ एवं समस्याएँ ही है। स्वयं एशिया के जलमर्गीय व्यापार या आर्थिक स्थिति के विवरण प्रस्तुत करना उन दस्तावेजों का विषय ही नहीं। फिर, भारत जैसे विराट देश के जलमार्गीय व्यापार का इतिहास, रादरमुंड के शब्दों में, इन 'फेरीवालों'(पेडलर) के ब्यौरों से नहीं जाना जा सकता। यूरोपीय सौदागारों को इस विषय की जानकारी के एकमात्र स्त्रोत की तरह मानकर उन्हीं पर निर्भर हो जाने पर पर्याप्त प्राथमिक जानकारी तक सम्भव नहीं है। उनसे यथार्थ की एक झलक तो मिल सकती है, पर स्वयं यथार्थ की सम्यक जानकारी उनसे नहीं मिल सकती। वे उस विराट जानकारी को उस समय जान-समझ सकने की हैसियत में ही नहीं थे।

भारतीय व्यापार का गौरवशाली तथ्य

इस पर भी, उन विदेशी सौदागरों, पर्यटकों और प्रशासकों के आत्मकेन्द्रित एवं यूरोपीय नजरिए वाले ब्यौरों से भी, एशिया के जलमार्गीय व्यापार का, जिसमें भारत की निश्चय ही केन्द्रीय स्थिति थी जो चित्र उभर कर आता है वह एक जीवंत प्राणवान सुविकसित अर्थव्यवस्था का चित्र है, जिसमें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विविध बंदरगाहों और भौगोलिक क्षेत्रों के बीच जलमार्ग से होने वाले माल और मनुष्यों के व्यापक तथा नियमित यातायात के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार इन विदेशी फुटकर और सीमित संदर्भों के द्वारा भी 18वीं शताब्दी ईस्वी की भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में कतिपय बहुप्रचारित भ्रांत धारणाएँ ध्वस्त हो जाती हैं। आरंभ में जो यूरोपीय यात्री एशिया आए, उनमें से लगभग हर एक ने हिंद महासागर के आसपास व्याप्त अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यापारिक वाणिज्यिक केन्द्रों की चर्चा की है और उनसे जुड़े व्यापार मार्गों, सौदागरों तथा सौदे के लिए लाई-ले जा रही वस्तुओं के पर्याप्त विवरण दिए हैं। उन पर्यटकों ने एशियाई बन्दरगाहों को जो वजन और महत्व दिया, वैसा ही वजन और महत्व डच और अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसरों-कर्मचारियों ने इन बातों के अपने विवरण में दिया।

यहाँ तक कि फ्रेंच कम्पनी- 'द सेकंड कम्पेनी डेस इन्डेस' ने भी देशी जलमार्गीय व्यापार के विवरण में खूब रुचि ली, यद्यपि यह कंपनी एशियाई व्यापार में उल्लेखनीय रूप में प्रवेश काफी देर से ही पा सकी थी। उस कंपनी के एक पदाधिकारी विन्सेन्स ने 1733 ई.में इस बारे में एक ज्ञापन तैयार किया। वह ज्ञापन 1730 के दशक में हिंद महासागर में चल रहे समुद्रमार्गीय व्यापार के सर्वाधिक विशद एवं व्यवस्थित विवरणों में से एक है।

भारतीय स्रोतों का उचित उपयोग हो

इस विषय पर शोधकर्ताओं में से किसी ने भी मुगल रियासतों के दस्तावेजों का समुचित उपयोग नहीं किया है। जबकि कम्पनियों के 'डिस्पैच' में स्पष्ट एवं निश्चित संदर्भ हैं कि सूरत, हुगली, बलसोर आदि बंदगाह से जुड़े शहरों के मुगल शाही अधिकारी बड़ी ही सावधानी से आयात-निर्यात के विशद अभिलेख सुरक्षित रखते थे। इन कम्पनियों के मुख्यालयों के स्थायी निर्देश थे कि कम्पनियाँ भारतीय बन्दरगाहों के मुगल शाही अधिकारियों द्वारा फारसी में नियमित लिखे जा रहे, जहाजों के यातायात रजिस्टरों के अनुवाद करके अपने-अपने (यूरोपीय) केंद्रीय मुख्यालयों को समय-समय पर लगातार भेजती रहें।[8]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन रजिस्टरों द्वारा 'स्थानीय व्यापार' यानी भारत के विभिन्न क्षेत्रीय व्यापार की मात्रा और झुकाव यानी व्यापार की दिशा का ज्ञान होने की आशा थी। बंदरगाहों के मुगल अधिकारियों द्वारा फारसी में लिखित कस्टम रजिस्टर की डच प्रतियों में सूरत और हुगली बंदरगाहों के माल-जहाजों का विवरण है और हर जहाज के मूल बंदरगाह का नाम, जहाज का नाम, जहाज के मालिक का नाम आदि स्पष्ट ब्यौरेवार दर्ज है।

डच कम्पनियों के द्वारा जिनकी प्रतिलिपियाँ (नकलें) तैयार की गईं, ऐसा तत्कालीन राजकीय अभिलेखों में से कई आज भी हेग स्थिति अभिलेखगारों में सम्भतः अब भी सुलभ हैं। इन अभिलेखों को ध्यान से पढ़ने पर 18वीं शताब्दी के भारत की समझ अधिक स्पष्ट हो सकती है। वे अभी भी सुरक्षित हैं या नष्ट कर डाली गईं?, पता नहीं। यदि नष्ट कर डाली गईं तब तो उन दिनों की सच्चाई का बड़ा उल्लेखनीय अंश हमारे लिए अज्ञात ही रह जायेगा।

बहरहाल, जो तथ्य उपलब्ध हैं वे भी तत्कालीन भारतीय एवं एशियाई जलमार्गीय व्यापार की विराटता, सुव्यवस्था एवं सामर्थ्य का प्रमाण हैं। उन अभिलेखों और विवरणों से 'यूरोपीय जलमार्गीय उद्यमों' के उस तथाकथित गतिशील विकास की सच्चाई प्रकट होती है जो एशियाई दृष्टि से वस्तुतः एक हाशिये की चीज भर थे परंतु आधुनिक यूरोपीय तो अपने जलमार्गीय व्यापार की गतिशीलता की चर्चा करते समय कभी-भी अरब, चीनी एवं अन्य एशियाई सौदागारों का कोई उल्लेख ही नहीं करते।

सार यह कि 18वीं शताब्दी ई. के भारत का ज्ञान, अब तक बहुत थोड़े से, चयनित दस्तावेजों पर आधारित और सीमित है। ये दस्तावेज जो तथ्य हमें सुलभ कराते है, उनके बारे में प्रसिद्ध इतिहास चिंतक ई.एच. कार द्वारा अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'वॉट इज़ हिस्टॅरि' में कहे गए ये शब्द पूरी तरह लागू होते हैं-

'तथ्य कोई मछुआरों की पटिया पर पड़ी हुई मछलियों जैसे नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
होते। वे तो विराट और दुर्गम सागर में तैर रहीं मछलियों जैसे होते हैं। इतिहासकार उनमें से क्या कितना पकड़ पाता है, यह इस पर निर्भर है कि वह सागर के किस हिस्से में जाल डाल रहा है और किन कील-कांटों का इस्तेमाल कर रहा है। ये दोनों ही बातें, वस्तुतः इस पर निर्भर होती हैं कि वह सचमुच किस प्रकार की मछलियाँ पकड़ना चाहता है। मोटे तौर पर इतिहासकार वे ही तथ्य प्राप्त करता है जो वह पाना चाहता है।"[9]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भारत

जलमार्गीय व्यापार के इसी क्रम में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत की तत्कालीन स्थिति का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अर्थव्यवस्था का विशेष परिष्कृत पहलू माना जाता है। वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मूल्य-विभेदक क्रियाकलाप है, जिसे दामों के चलन-कलन के रूप में देखा जा सकता है।

इंग्लैंड की कंगाली से चिंतित व्यापारी

यदि हम 17वीं एवं 18वीं शताब्दी ईस्वी में भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के ब्यौरों का अध्ययन करें तो पाते है कि उस व्यापार की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि भारत में सारे संसार से बहुमूल्य धातुओं का एक अंतहीन प्रवाह बहता चला आ रहा है। ये धातुएँ भारतीय व्यापारियों एवं बिचौलियों को भारत की श्रेष्ठ वस्तुएँ विश्व भर में बिक रही होने के कारण उनके दामों के भुगतान के रूप में मिल रही हैं। जहाँ तक यूरोप की बात है, यूरोप से प्रायः कोई वस्तु-विनिमय उस व्यापार में नहीं हो रहा था, बल्कि वे देश भारतीय माल का दाम-भुगतान नगद धन से ही कर रहे थे। वस्तुतः 17वीं-18वीं शती ईस्वी में एशिया के अधिकांश देश यूरोप का कोई माल नहीं खरीद रहे थे। अगर कोई एशियाई देश यूरोपियनों से उनके यहाँ अपनी चीजों के विनिमय में कुछ माल यानी वस्तुएँ खरीदता भी था तो वे एशिया के ही अन्य देशों में बनी वस्तुएं होती थीं। इग्लैंड के पुराने सर्राफा व्यापारी, जो सोना-चांदी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
आदि बहुमूल्य धातुओं को ही किसी देश की सच्ची सम्पदा मानते थे, इस बात से बेहद चिंतित थे कि एशिया समृद्धतर होता जा रहा है, जबकि इंग्लैंड और यूरोप इस तरह के (बहुमूल्य धातुओं के) हस्तांतरण के कारण कंगाल होते जा रहे हैं। 19वीं शताब्दी ईस्वी में भारत सहित एशियाई देशों के व्यापार के दो स्पष्ट विभाग थे, (1) निर्यात क्षेत्र (2) आंतरिक उत्पादक-क्षेत्र। 17वीं एवं 18वीं शती ईस्वी में भारत आदि एशियाई देश यूरोप की बनी किसी भी वस्तु को आयात के योग्य नहीं मानते थे अतः इंग्लैंड आदि से किसी भी वस्तु का आयात यहाँ किया ही नहीं जा सकता था।[10]

उन्नत समृद्ध भारत

स्पष्टतः इससे एक जीवंत समृद्ध भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप उभरकर सामने आता है, जिसमें उत्पादन की प्रक्रियाएँ, तकनीकी दक्षता एवं कौशल तथा कम लागत के श्रेष्ठ संतुलन के कारण उत्कृष्ट गतिशीलता है। दूर-दूर के व्यापार की दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप की पूरे इतिहास में सदा ही प्रमुख भूमिका रही है। स्वयं उपमहाद्वीप के अपने भौगोलिक एवं राजनैतिक इलाकों के बीच एक सक्रिय अंतः क्षेत्रीय व्यापार-वाणिज्य विद्यमान था, जो आर्थिक विशेषता की उन्नत स्थिति बनाये रखने में सहायक होता था। इसी के कारण राजाओं , सम्राटों और बादशाहों के सार्वजनिक व्यय भी उच्चस्तरीय होते थे। जिसके कारण आसपास या दूरदराज के भी उन योद्धा शासकों को, जो अपेक्षाकृत कम अच्छी स्थितियों में रह रहे थे, ईर्ष्या होती थी, आकर्षण होता था और आक्रमण का लोभ भी होता था।

वस्तुतः यूरोप के माल की बिक्री में कितनी मुश्किलें होती थीं, इसके ब्यौरे ईस्ट इंडिया कम्पनी के अभिलेखों में भरे पड़े हैं जो अपने ऊनी कपड़ों और धातुओं की कम बिक्री का बारम्बार रोना रोती हैं-

'अनेक यूरोपीय फैक्टरियों के मालगोदाम की देख-रेख या प्रबंध का काम ऐसा था, जिससे सभी बचना चाहते थे। जब कभी कम्पनियों का माल फैक्टरी के गेट पर खुली बोली लगाकर बेचा जाता, तब प्रायः आखिर में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फैक्टरी के चपरासी-चौकीदार आदि, भारी बोझ ढोकर 'गोदाम' में वापस ले जाने को विवश होते थे। यह काम इतना उबाऊ था कि प्राय: लागत-दाम पर या लागत से भी कम दाम पर स्थानीय प्रमुख सौदागरों को माल बेचने में फैक्टरी वालों को कोई झिझक नहीं होती थी, बशर्ते उसके एवज में इन प्रमुख व्यापारियों का 'सद्भाव' मिलने की आशा हो। घड़ी से लेकर शिकारी कुत्तों तक अनेक यूरोपीय माल प्राय: मुनाफे के लिए नहीं, बल्कि अनुग्रहदृष्टि पाने के लिए दिए जाते थे। स्थानीय सौदागर भी बदले में, यूरापीयों से ऐसी कई वस्तुएँ खरीद लेते थे, जो बिकती नहीं थीं, पर वे इस आशा से खरीद लेते कि मधुर सम्बन्ध रहने पर इन यूरोपीयों से भविष्य में कभी कुछ लाभ हो सकता है। यूरोपीय व्यापारियों के जो माल उन दिनों भारत में कुछ ठीक से बिक रहे थे, वे कम्पनियों के उत्पाद बिल्कुल नहीं थे, बल्कि एशियाई सामान ही थे। वे थे- चाकू, छुरे, सुइयाँ, कैंचियाँ, भोजन पकाने के बर्तन आदि घरेलू सामान तथा सर्वाधिक बिक्री होती थीं सामरिक एवं समुद्री व्यापार के काम की चीजें। तीन शताब्दियों तक तो यूरोपीय व्यापारी एशिया में थोड़ी-सी ऐसी ही चीजें तथा धातुएँ और बड़ी मात्रा में अमेरिकी चाँदी लेकर पहुँचते तथा कई तरह के भारतीय माल लेकर वापस जाते।' [11]

कनिंघम ने लिखा है - 'जैसा कि भूमध्य सागरीय देश अज्ञात काल से करते रहे हैं, अंग्रेज भी विवश हुए कि व्यापार करना है तो सोना-चाँदी का निर्यात भारत को करो और वहाँ से चीजें तथा रुपया लाओ।' [12]

पुर्तगीजों के समुद्रमार्गीय भारतीय व्यापार के जो ब्यौरे हैं, उनसे ज्ञात होता है कि एशियाई, अफ्रीकी और अमेरिकी देशों के साथ भारत का व्यापार व्यापक, सघन तथा नियमित था और विविध प्रकार की वस्तुओं का व्यापार होता था। 'पुर्तगीजों ने आश्चर्य के साथ यह देखा कि भारत का समुद्रमार्गीय व्यापार बहुत ही जीवन्त एवं सक्रिय था तथा वह व्यापार काली मिर्च-पीपरामूल जैसी चीजों तक सीमित नहीं था वरन बहुत सारी अन्य चीजों का भी व्यापार होता था।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्व-व्यापार में अग्रणी भारत

'भारतीय तीर्थयात्रियों और फेरीवालों को लेकर अनेक जहाज समुद्र पार कर दूर-दूर जाते। बड़े सौदागरों द्वारा भेजे गये माल बड़ी तादाद में होते। यहाँ तक कि दूरस्थ देशों तक अनाज ढोकर ले जाते जहाज भी उस समय के मुक्त भारतीय समुद्रमार्गीय व्यापार की एक सामान्य बात थे। पुर्तगीज अभिलेखों में यह दर्शाने वाले प्रचुर साक्ष्य हैं कि अफ्रीकी बंदरगाहों और फारस की खाड़ी के तटवर्ती बंदरगाहों तक गुजरात वगैरह से चावल भेजा जाता था। इसी प्रकार 'भारत से निर्यातित वस्त्रों द्वारा दक्षिण पूर्व एशिया तथा मध्य पूर्व के अनेक क्षेत्रों की वस्त्र सम्बन्धी बुनियादी जरूरतें पूरी होती थीं। ये भारतीय वस्त्र सस्ते और सुंदर होते थे। भारत के इस वस्त्र-व्यापार में अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा कर सकने की शक्ति कितनी अधिक थी, यह इसी से प्रमाणित है कि ब्रिटिश वस्त्र उद्योग को अंग्रेजी साम्राज्य को भारी संरक्षण देना पड़ा और उसी हिसाब से ब्रिटिश वस्त्रों के पक्ष में शुल्क-दरें निर्धारित करनी पड़ी, यद्यपि अन्तर्महाद्वीपीय वस्त्र-व्यापार की लागत बहुत अधिक पड़ रही थी। सार-संक्षेप यह कि भारत उन दिनों 'निर्यात व्यापार की मात्रा और वस्तु-वैविध्य' दोनों में ही, विश्व के अन्य देशों से बहुत आगे था।[13]

भारत के महान व्यापारी

भारत के सौदागरों (व्यापारियों) के बारे में उनकी सम्पदा और उनके प्रतिष्ठित व्यापार के बारे में यूरोपीय कम्पनियों ने जो विवरण दिए हैं, उनमें भी इस विषय में भरपूर प्रकाश पड़ता है। 'ये व्यापारी विशाल तादाद में व्यापार करने में सक्षम थे। यूरोपीय कम्पनियों का इनसे ही मुकाबला था।' ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के अभिलेखों में भारत के महान व्यापारियों के अनेक उल्लेख एवं संदर्भ हैं। उदाहरणार्थ- दक्षिण भारतीय व्यापारी कसा वीरोना और सूरत के वीरजी वोरा का, 'जिनकी प्रतिष्ठा दंतकथाओं का विषय बन चुकी हैं, '1936 में वीर जी वोरा की आर्थिक शक्ति ऐसी प्रबल थी कि इंग्लिश काउंसिल यह मानने को विवश हो गई कि यदि वीरजी वोरा किसी खास श्रेणी का व्यापार स्वयं करना तय करते हैं, तो सूरत का कोई भी अन्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यापारी उनके मुकाबले में खड़े होने का साहस नहीं करेगा। यहाँ तक कि कम्पनी के भारत स्थित दलाल ने भी कम्पनी के माल भारत आयातित करने के लिए वोरा के सिवाय कोई अन्य ग्राहक इंग्लैंड की फैक्टरी में लेकर आने से इनकार कर दिया यद्यपि वह दलाल वीर जी वोरा की सद्‌भावना का मोहताज नहीं था। दो साल पहले, बढ़िया किस्म के मूँगा (प्रवाल) को कम्पनी वालों ने वीरजी वोरा को न बेचकर एक अन्य सौदागर को बेचा क्योंकि फैक्टरी चाहती थी कि इस तरह से महान व्यापारी वीर जी वोरा का बाजार से एकाधिपत्य तोड़ने में मदद मिलेगी। परन्तु वह सौदागर उन मूँगों को ले ही नहीं गया। माल कम्पनी के गोदाम में पड़ा रहा।' ऐसे दिग्गज व्यापारी देश में भरे पड़े थे।

एक अंग्रेज एलेग्जेंडर हेमिल्टन जो सूरत के व्यापारियों के बारे में जानकारी रखते थे, वहाँ के एक बड़े सौदागर का उल्लेख करते हैं, 'जिनका मुख्यालय किसी बड़े निर्यात-केन्द्र में या देश के किसी बड़े वाणिज्य-केन्द्र में था और जिसके एजेन्टों और डीलरों का 'नेटवर्क' विराट था जिससे कि वह दूर-दूर तक के उत्पादकों तक पहुँच सकता था। वह अर्थपति 'एक बिल्कुल अलग ही वर्ग का था।' हेमिल्टन का संकेत अब्दुल गफूर की तरफ है', 'जो इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुल व्यापार के बराबर का व्यापार करता था। मैं उसे साल भर से अच्छी तरह जान रहा हूँ। उसके अपने 20 से ज्यादा समुद्रीय जहाज हैं, जो 300 से 800 टन तक का। माल वहन करने की सामर्थ्य वाले हैं। उनमें से हर एक में 10,000 पौंड से अधिक का स्टाक रहता है। वह सारा स्टाक विदेश भेजने के बाद, वह देश के भीतर भी आगामी वर्ष के बाजार-व्यापार के लिए अपने पास इससे भी कहीं ज्यादा स्टाक जमा रखना जरूरी मानता था।' अब्दुल गफूर का खानदान 18वीं शती ईस्वी के मध्य तक फलता-फूलता रहा।

जिन अन्य बड़े व्यापारियों के नाम के उल्लेख कम्पनी अभिलेखों में मिलते हैं, वे हैं- सूरत के अहमद चेलानी, बंगाल में आर्मेनियाई मूल के खोजा सरहद और खोजा वाजिद, कोरोमंडल समुद्रतट के संघाराम चेट्टी और 'विश्वविख्यात सौदागर' जगत सेठ, जो एक ही हुंडी से बंगाल का समस्त राजस्व दिल्ली हस्तांतरित कर सकते थे।[14]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यूरोपीय सौदागरों की बहियों और टिप्पणियों में उल्लिखित ये छिटपुट सन्दर्भ भी सम्मोहक हैं, क्योंकि इनसे अनुमान होता है कि देशभर में विविध व्यापार-वाणिज्य केन्द्रों में और भी बड़े- बड़े व्यापारिक घराने रहे होंगे तथा एशिया में अन्य देशों में भी ऐसे ही सम्पन्न घराने होंगे। जॉन हेनरी ग्रोज 18वीं शती ई. के मध्य में सूरत गया था। वहाँ 'उसने धीर प्रशांत हिन्दू सौदागर देखे, जिनमें से एक-एक अकेले ही किसी यूरोपीय जहाज का सारा माल आधे घंटे के भीतर मोल-तोल के बाद, खड़े-खड़े खरीद लेते थे और तुरन्द नगद भुगतान कर देते थे। व्यापार की दुनिया में, इतनी बड़ी धनराशि के नगद भुगतान की क्षमता रखने या माल के बड़े भंडार की खरीदी कर तत्काल भुगतान की क्षमता रखने का मतलब बहुत कुछ होता है। मोचा स्थित इंग्लिश फैक्टरी के अभिलेख बताते हैं कि 1735 ई. में कुल 42 व्यापारी कम्पनी को कॉफी की आपूर्ति कर रहे थे, जिनमें से 5 व्यापारी ही कुल आपूर्ति का 66 प्रतिशत 'सप्लाई' कर रहे थे। यमन के कॉफी -व्यापार पर वस्तुतः 'कुलीनतंत्रीय व्यापारियों' का एक समूह छाया हुआ था। वीर जी वोरा और चिन्नन चेट्टी जैसे कतिपय हिन्दू-व्यापारी बड़े-बड़े वाणिज्य-पोत रखते थे तथा एशिया भर में विविध देशों में उनका कारोबार चलता था।[15] होल्डेन फर्बर बताते हैं कि भारतीय सौदागर और व्यापारी रूस जैसे दूरस्थ देशों तक के बाजार में कारोबार करते थे। 'भारतीय व्यापारी वोल्गा नदी घाटी क्षेत्र में 1625 में भी अपना कारोबार करते दिखते हैं। सुतूर नामक एक भारतीय सौदागर 1647 ई. में अस्त्रखान से मास्को पहुँचा था। अस्त्रखान में कई भारतीय सौदागरों ने पहले ही अपना कारोबार जमा रखा था। 1650 में रूसी बाजार में 23 किस्म की भारतीय वस्तुएँ उपलब्ध थीं।[16]

ऐसे थे उस समय के भारतीय व्यापारी एवं अर्थपति- जो प्रचुर साधन-सम्पन्न थे तथा आवश्यकतानुसार शक्तिशाली राज्यसत्ता को भी प्रभावित कर सकते थे। प्रभावशाली व्यापारी अब्दुल गफूर के बारे में एक उल्लेख यह मिलता है कि 'उसने सूरत के सौदागरों को इकट्ठा कर स्थानीय मुगल हुकूमत पर संयुक्त दबाव बनाया कि वह डचों से सख्ती से पेश आए, ताकि डच लोग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरत के जहाज मालिक व्यापारियों को यूरोपीय लुटेरों द्वारा पहुँचाई गई हानि का हर्जाना देने की शर्त पर ईमानदारी से अमल करें।' कई भारतीय व्यापारी अपने ही जहाजों से समुद्रपारीय व्यापार करते थे और अभिजनों तथा प्रशासनतंत्र को ऋण देने का साहूकारी का कार्य भी करते थे। उनसे निचली श्रेणी में वे व्यापारी थे जो अपने जहाज प्रायः नहीं रखते थे, परन्तु देश में और विदेशों में अनेक स्थलों पर अपने एजेन्ट रखते थे तथा व्यापार के एक विस्तृत 'नेटवर्क' का वित्तपोषण करते थे जो दूर-दूर तक फैले केन्द्रों से जुड़ा होता था। जैसे आगरा से यमन बन्दरगाह या फारस की खाड़ी तक। सूरत के बड़े ब्रोकर्स के एजेंट इन सभी जगहों में होते थे और हुंडियाँ जारी करते तथा उनका भुगतान करते थे एवं व्यापारिक गुप्तचरी भी सुलभ कराते थे।[17]

मुद्दे की बात यह है कि ऐसे भारतीय दिग्गज व्यापरियों- सौदागरों के होने से यूरोपीय कम्पनियों के सौदागरों पर लगाम रहती थी। फर्बर उन दो कारणों का स्पष्ट उल्लेख करते हैं, जिनके कारण बंगाल में ब्रिटिश विस्तार असीमित नहीं हो पाया। पहला यह कि बंगाल प्रांत लगातार असाधारण योग्य वायसरायों द्वारा शासित रहा, दूसरा कारण था बंगाल के सेठों का धनाढ्य खानदान, जिसके मुखिया उन दिनों थे जगत सेठ। वायसरायों ने 'दस्तकों' के अंग्रेजों द्वारा उपयोग को दृढ़ता से नियमित रखा। सेठों ने बंगाल की मुद्रा पर नियंत्रण बनाये रखा जिससे कलकत्ता में टकसाल स्थापित करने का इंग्लिश कम्पनी का मनोरथ विफल रहा, हालांकि लंदन से जहाँ 1713 ई. के आसपास 75,000 पौंड मूल्य की चाँदी प्रति वर्ष आ रही थी, वहीं 1743 ई. के आसपास 1,00,000 पौंड मूल्य तक की चाँदी प्रतिवर्ष आने लगी।[18]

एशियाई व्यापार में यूरोप का हिस्सा

इन यूरोपीय कम्पनियों द्वारा नियमित लिखी गई पंजिकाओं से प्रकट है कि आरम्भिक तीन सौ वर्षों (16वीं, 17वीं, 18वीं शताब्दी ई.) तक एशियाई व्यापार में यूरोपीय हिस्सा नगण्य यानी नाममात्र का रहा। हम पाते हैं कि कम्पनी के कर्मचारी-अधिकारी अपनी-अपनी सरकारों को बार-बार लिख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

रहे हैं कि भारत में उनकी हैसियत वह नहीं रही है, स्थितियाँ प्रतिकूल हैं।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वीर जी वोरा जैसे अनेकानेक दिग्गज भारतीय व्यापारी सक्रिय थे, जिनसे पार पाना कम्पनी के लिए कठिन था। यद्यपि अपनी आरम्भिक हालत से तुलना करने पर कम्पनी के व्यापारी पाते थे कि उनका मुनाफा बहुत अधिक हो रहा है, क्योंकि लागत-पूँजी तो उन्होंने बेहद कम ही लगाई थी। तथापि, कुल भारतीय व्यापार में ईस्ट इंडिया कम्पनी का हिस्सा नगण्य था। जो भारतीय व्यापारी सागर पार दूर-दूर देशों तक जा कर व्यापार कर रहे थे, उनके व्यापार पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव डाल पाने में कम्पनी अक्षम थी। यह अलग बात है कि बंगाल में कम्पनी ने जहाँ से शुरुआत की थी, उस तुलना में उसका हिस्सा काफी बढ़ गया था। 'यूरोपीय प्रतिभागियों द्वारा भारतीय व्यापार में लाया गया यह परिवर्तन, भारत के विदेशी व्यापार की दिशा, संरचना और नियंत्रण से सम्बन्धित परिवर्तन था। परन्तु शेष भारतीय अर्थव्यवस्था पर उसका प्रभाव अत्यंत सीमित ही रहा।[19] इन यूरोपीय कम्पनियों के अभिलेख 'इसका प्रचुर साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि भारत के साथ उनके व्यापार की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई थी,.... तथापि इस व्यापार का भारतीय क्षेत्र की कुल वाणिज्यिक-व्यापारिक गतिशीलता पर जो प्रभाव था, वह आनुपातिक दृष्टि से थोड़ा ही था। इंग्लिश कम्पनी की राजनैतिक सत्ता स्थापित होने से पूर्व तक यह अनुपात कभी भी ज्यादा हुआ हो, इसमें शंका ही है। 1753 ईस्वी तक स्थिति यह थी कि ढाका से वस्त्रों का जो निर्यात प्रतिवर्ष हो रहा था, उसका एक तिहाई हिस्सा ही यूरोपीय व्यापारी खरीद रहे थे, शेष दो तिहाई हिस्सा वस्त्र-व्यापार भारत तथा विश्व के अन्य हिस्सों के व्यापारी विदेशों में कर रहे थे।[20] दूसरी ओर, डचों के मसाला-व्यापार के फलस्वरूप भारत के अपने वस्त्र-व्यापार में भी उछाल आई और दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय निर्यात व्यापार लगातार बढ़ता ही गया।[21]

राज्य की भूमिका

राज्य की भूमिका का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। सौभाग्य से उससे सम्बन्धित कुछ साहित्य प्रकाश में आ चुका है। विकास के सन्दर्भ में, बारम्बार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह दुहराया जाता है कि यूरोपीय राष्ट्र राज्य शक्तिशाली आर्थिक हस्ती बनकर उभरे तो इसका श्रेय जाता है यूरोपीय राजाओं और रानियों के योगदान को और व्यापार के प्रति उनकी आवेगमूलक सक्रियता को। इसके विपरीत, भारतीय या एशियाई शासकों को उदासीन बताया जाता है। कहा जाता है कि एशियाई राज्यकर्ता लोग स्थानीय सैनिक अभियानों में ही मुख्य ध्यान लगाये रहते थे या फिर विकृत ऐय्याशियों में डूबे रहते थे। 'गौरव की तलाश, 'बड़े पैमाने पर अहं की संतुष्टि और जोखिम भरे कामों का शौक', 'अर्थव्यवस्था के प्रति लापरवाही' आदि-इत्यादि शब्दों का उन राजाओं-रानियों के लिए प्रयोग ध्यान देने योग्य है।[22] परन्तु यदि हम इन बहुप्रचारित धारणाओं के जाल में न फँसकर उन दिनों के भारतीय एवं एशियाई आर्थिक जीवन तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप से जुड़े तथ्यों पर ध्यान दें तथा उसके सन्दर्भ में राज्य की तत्कालीन भूमिका को समझें और विवेकपूर्ण विश्लेषण करें तो इसमें बौद्धिक स्तर पर लाभ होगा।

राज्य बल ने संभव बनाया भारत का शान्तिपूर्ण व्यापार

पहली बात यह स्मरणीय है कि भारत का समुद्रमार्गीय व्यापार सघन एवं व्यापक था, साथ ही शान्तिपूर्वक गतिशील था। समद्री लुटेरे उसे बाधित नहीं कर पाते थे। उनके नियमित यातयात एवं व्यापार में भी बाधा-व्यवधान कदाचित ही कभी पड़ते हों।[23] ये बाधाएँ यूरोपीयों के परिदृश्य पर उभरने के बाद ही पड़ने लगीं। उससे पहले, समुद्री डकैती की जो घटना यदा-कदा घटती, उसे एशियाई राज्य-सत्ताएँ निर्ममतापूर्वक कुचल डालती थीं। समुद्री मार्गों की सुरक्षा भलीभाँति सुनिश्चित की जाती थी। इसके पर्याप्त एवं विपुल सन्दर्भ मिलते हैं कि राज्यकर्ताओं की नौसेना अपने समुद्री इलाकों का नियमित गश्त करती थीं, क्योंकि समुद्री-व्यापार में व्यवधान से क्षति राजकीय राजस्व को भी उठानी पड़ती थी।[24] यहाँ तक कि यूरोपीय समुद्री डकैतों को भी एशियाई सागरतटीय राजाओं की नौसेनाओं का पूरा ध्यान रखना होता था, यद्यपि वे इस डकैती के जरिएं ही मालामाल हो रहे थे। इसीलिए वे दुर्गम समुद्री इलाकों के बीच में अवस्थित छुट-पुट द्वीपों में अपना अड्डा बनाते थे। 18वीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

शती ई. तक यूरोपीय जलदस्युओं ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी, तब भी उन्हें 'शाही कोप' का भय बना रहता था जो कि व्यापारियों से दुर्व्यवहार करने पर उन पर टूटता था। मुगल इतिहासकार शफी खान ने लिखा है कि यूरोप से व्यापार का जो तुरत वित्तीय लाभ मिलता था- उसके कारण देश से यूरोपीयों के निष्कासन का क्रांतिकारी कदम सामान्यतः नहीं उठाया जाता था।[25] जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, बड़े व्यापार एवं वित्तपति जब पाते थे कि उनके व्यापक शांतिपूर्ण समुद्रपारीय व्यापार पर कोई बाहरी चोट पड़ी है तो वे राज्य का सहयोग सरलता से माँग लेते और पा जाते थे। इसके अतिरिक्त 'शाही अधिकारी इस बारे में सतत सजग रहते थे कि जिन व्यापारिक नगरों में भारतीय सौदागरों का यूरोपीयों से मुकाबला जोरदार होना है, वहाँ कोई सैनिक शक्ति यूरोपीय लोग न बढ़ा लें'।[26] 'हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इंडिया' में हंटर ने बताया है कि कैसे 'कम्पनी बंगाल से निकाल बाहर की गई तथा कैसे मुम्बई द्वीप पर मुगल नौसेना ने कब्जा कर लिया।[27] एक अन्य उल्लेख बताता है कि, 'मराठा एडमिरल कान्होजी आंग्रे ने 18वीं शती के आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के मुम्बई व्यापार को तथा समुद्री नियंत्रण को गम्भीर खतरा पैदा कर दिया था।[28]

''प्राचीनतम भारतीय नौसेनाएँ ''

यहाँ उल्लेखनीय है कि भारत का सैनिक इतिहास विश्व में प्राचीनतम है। हजारों वर्ष पूर्व से यहाँ सेनाएँ रही हैं और भारत के सभी किसान तथा ग्रामीण भी सैन्य क्षमता से सम्पन्न रहते थे, उन्हें युद्धकला आती थी, शस्त्र संचालन आते थे और वे वीरता को एक श्रेष्ठ आदर्श मानते थे। वेदों में भी सेनाओं का उल्लेख है। भारत के दो प्राचीनतम महाकाव्य हैं- महर्षि वाल्मीकि रचित- रामायण और महर्षि वेदव्यास रचित- महाभारत। दोनों युद्धकाव्य भी हैं, धर्मकाव्य और राजनीतिशास्त्रीय काव्य भी। दोनों में हजारों प्रकार के अस्त्र शस्त्रों, विमानों और प्रक्षेप्यास्त्रों तथा भयानंक संहारकारी शस्त्रों का वर्णन है। धनुर्वेद हजारों साल से भारत का एक मान्य शास्त्र है।

कम से कम 5000 वर्षों से भारतीय नौसेनाओं का गौरवशाली

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
इतिहास है। ईसा पूर्व 2300 में सारस्वत सभ्यता (सैन्धव सभ्यता) के अवशेष लोथल में मिले हैं, जिसमें नौ सेना होने का साक्ष्य है। चाणक्य ने शस्त्रोपजीवी, आयुधजीवी और राजशब्दोपजीवी समूहों का वर्णन किया है।अर्थशास्त्र का 9वां, 10वां, 12वां, 13वां और 14वां अध्याय (अधिकरण) शस्त्रास्त्रों के बारे में विस्तार से बताता है। नौभार, नौतरण और नौबलाध्यक्ष के विवरण अर्थशास्त्र में हैं। दूसरे अधिकरण के 44वें प्रकरण में 28वां अध्याय 'नावध्यक्ष:' शीर्षक से है, जो नौवकाध्यक्ष के लिए है। इस प्रकार सम्राट नन्द और सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में बहुत पहले से चली आ रही सेना और नौसेना का वर्णन मिलता है। नौसेनाओं के पास मत्स्य यंत्र भी होता था। सम्राट अशोक, सातवाहन सम्राटों, चोल सम्राटों, विजयनगर साम्राज्य के स्वामियों, कलिंग साम्राज्य के स्वामियों से लेकर मराठों तक के पास सशक्त नौसेना रही है। मराठों तथा केरल राज्य की नौसेनाओं ने अंग्रेजों तथा यूरोपीयों की नौसेनाओं को हरा दिया था। कान्होजी आंग्रे मराठा नौसेना के सेनापति थे। इस प्रकार भारत में अत्यंत प्राचीनकाल से नौसेना रही है। इसी सशक्त नौसेना के कारण भारत के व्यापारी समुद्र में दूर-दूर तक निर्भय होकर व्यापारिक यात्रा कर सकते थे।

श्री धर्मपाल ने ईस्ट इंडिया कंपनी के कतिपय अधिकारियों द्वारा किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर 18वीं शताब्दी ईस्वी में भारत में शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में प्रामाणिक आंकड़े दिए हैं। तदनुसार भारत के प्रत्येक गांव में कम से कम एक विद्यालय होता था, बड़े गांव में एक से अधिक विद्यालय होते थे और शहरों में अनेक विद्यालय होते थे। इन विद्यालयों में सभी जातियों के शिक्षक पढ़ाते थे तथा सभी जातियों के छात्र पढ़ते थे। छात्राओं के लिए अलग विद्यालय होते थे। श्री धर्मपाल ने अपनी ओर से केवल भूमिका ही लिखी है। शेष सम्पूर्ण पुस्तक अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किए गए सर्वेक्षण की रिपोर्टों को यथावत प्रकाशित करती है। अत: वे आंकड़े पूर्णत: प्रामाणिक हैं और उनसे यह प्रचार पूरी तरह झूठा सिद्ध होता है कि भारत में शिक्षा केवल कुछ जातियों का विशेषाधिकार है और यह बात भी पूरी तरह झूठ सिद्ध होती है कि केवल ब्राह्मण ही शिक्षक होते थे।[29] क्योंकि इंग्लैंड में केवल पादरी ही पढ़ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लिखने के अधिकारी 18वीं शताब्दी तक थे और केवल पादरी ही पढ़ा सकते थे। इसीलिए उन्होंने भारत के बारे में ही यह झूठ रचा और फैलाया तथा बलप्रयोग और प्रचार के द्वारा 100 वर्षों के भीतर इसे एक सत्य की तरह स्थापित कर दिया तथा इसी के साथ सचमुच भी पढ़ाई को कुछ वर्गों तक ही सीमित बनाकर रख दिया। राज्य के हस्तक्षेप से भारत में समाज अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बदलता है, क्योंकि यहाँ इंग्लैंड या अन्य यूरोपीय ईसाई देशों की तरह का कोई संगठित चर्चनुमा धर्मतंत्र नहीं है और राज्य के प्रति समाज में कोई प्रतिरोध भाव नहीं है।

18वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में भी कतिपय अंग्रेज अधिकारियों ने सर्वेक्षण कर रिपोर्टें लिखी थीं। अत: उससे यह भी प्रमाणित होता है कि 18वीं शताब्दी ईस्वी में भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दशा इंग्लैंड से बहुत उन्नत थी। इस्पात बनाने की विधियाँ, बर्फ बनाने की विधि, खेती और सिंचाई सम्बन्धी उन्नत तकनीक, चेचक का टीका, आयुर्वेद की उन्नत वैज्ञानिक विद्या आदि अनेक क्षेत्रों में भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी में इंग्लैंड से बहुत आगे था।[30]

भारत के बहुत से वैज्ञानिक ग्रंथ अंग्रेज और जर्मन चुराकर ले गए, यह बात भी समाज में बहुत प्रचलित है। यद्यपि इनका प्रामाणिक विवरण अभी तक सामने नहीं आया है। परन्तु शिक्षा, प्रौद्योगिकी, कृषि, इस्पात, तकनीकी, धातुकर्म, वस्त्र उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्रों में भारत की समृद्धि सर्वविदित है। खगोल शास्त्र में भी भारत का ज्ञान बहुत उन्नत था। रॉबर्ट बार्कर ने रॉयल सोसायटी लंदन के समक्ष 1777 ईस्वी में उसकी जानकारी दी।[31] एडिन बरो और जॉन प्लेफेयर ने भी अपने लेखों के द्वारा इसकी जानकारियाँ दीं।[32] यह तो विश्वविदित है कि गणित शास्त्र में भारत ही विश्व गुरु है। रेखा गणित और त्रिकोणमिति का ज्ञान भी भारत में ही सर्वप्रथम था। इंग्लैंड तथा यूरोपीय देशों को ये जानकारियाँ बहुत बाद में मिली। इस्पात बनाने की विधि, चेचक के टीके, बर्फ बनाने की विधि और भारत में विकसित शल्य चिकित्सा तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का ज्ञान भी अंग्रेजों को 18वीं शताब्दी ईस्वी में ही पहली बार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ।[33] इसके अतिरिक्त और भी विशद विवरण उपलब्ध हैं जिनसे यह सिद्धान्त खण्डित होता है कि 18वीं शती ईस्वी के भारत में किसी प्रकार का ठहराव और क्षय था। वस्तुतः उस अवधि में भारतीय समृद्धि सतत गतिशील थी। जिसक प्रमुख श्रेय भारतीय राजाओं और राजकीय नीतियों को जाता है। राज्य की पहल पर ही भारतीय व्यापार-वाणिज्य नया-नया विस्तार पाते रहते थे। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु हुई। तब विविध सूबेदारों ने स्वयं को दिल्ली की गद्दी के आधिपत्य से मुक्त घोषित कर दिया। पर इससे इन सूबों में प्रगति थमी नहीं। उल्टे उत्पादन एवं वस्तु-निर्माण में तीव्र वृद्धि हुई,आर्थिक विकास हुआ तथा व्यापार का फैलाव हुआ। बंगाल उसी दौर में रेशमी वस्त्रों का प्रमुख उत्पादक तथा निर्यातक बनकर फिर उभरा। सारा देश 18वीं शती ईस्वी में प्राणवान, जीवंत तथा उच्च स्तरीय सक्रियता में संलग्न था। यहाँ के राजे-महाराजे भी आर्थिक-सामाजिक उन्नति में गहरी रुचि लेते थे तथा उसमें सक्रिय योगदान देते थे। अतः ब्रिटिशपूर्व भारत के बारे में समाजशास्त्रियों, सामाजिक विज्ञानियों को नये सिरे से सोचना चाहिए तथा स्वतंत्र बुद्धि से, भिन्न अवधारणा कोटियों में विकास की भारतीय समस्या को देखना-समझना चाहिए।

• • •

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. होल्डेन फर्बर : राइवल एम्पॉइअ्रॅस आव ट्रेड इन दि ओरिएण्ट : 1600-1800, पृष्ठ 328.
2. वही, पृष्ठ 325-26, 331-38, 379-80.
3. तपन रायचौधुरी : दि स्टेट एंड दि इकॉनॉमी : दि मुगल एम्पाइअॅ, दि केम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑव इंडिया, खण्ड 4, पृष्ठ 192
4. जे.सी. वान ल्योर : इण्डोनेशियन ट्रेड एंड सोसाइटी, दि हेग एंड बांडुंग, 1955 ईस्वी, अध्याय-1 एवं 6.
5. दीतमॉर रादरमुंड : एशियन ट्रेड एंड यूरोपियन एक्सपेंशन इन दि एज ऑव मर्केण्टाइलिज्म, पृष्ठ 65, मनोहर, नई दिल्ली, 1981 ईस्वी।
6. फर्बर : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 331
7. दीतमॉर रादरमुंड : पूर्वोद्धृत, अध्याय-10 पूरा देखें। साथ ही अध्याय-11 एवं 12 भी।
8. के.एन. चौधुरी : दि ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑव एशिया एंड दि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी : 1660-1760 में पृष्ठ 192 पर उद्धृत 16 फरवरी 1722 की डिस्पैच बुक, खंड 101, पैरा 23, पृष्ठ 151.
9. ई. एच.कॉर : वाट इज़ हिस्टॅरि, पृष्ठ 23, लन्दन, 1961 ईस्वी।
10. दीतमॉर रादरमुंड : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 130
    साथ ही देखें- होल्डेन फर्बर : पूर्वोद्धृत पृष्ठ264-298
11. के.एन. चौधुरी का 'इकॉनामी एंड सोसाइटी' में (संपादक डेवी एंड चौधुरी) प्रकाशित लेख 'मार्किट एंड ट्रेडअॅस इन इंडिया ड्यूरिंग दि सेवेन्टीन्थ एंड एटीन्थ सेंचुरीज़', पृष्ठ 150
12. डब्लू. कनिंघम : दि ग्रोथ ऑव इंग्लिश इन्डस्ट्री एंड कामर्स, पृष्ठ 258-59
13. तपन रायचौधुरी : दि मुगल एम्पाइअॅ, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 172
14. के.एन. चौधुरी : पूर्वोद्धृत तथा रादरमुंड : पूर्वोद्धृत
15. होल्डेन फर्बर : पूर्वोद्धृत पृष्ठ 24
16. दीतमॉर रादरमुंड : पूर्वोद्धृत पृष्ठ 71-74
17. होल्डेन फर्बर : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 132-3.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

18. तपन रायचौधुरी का सी.ई. एच.आई. खंड 11, पृष्ठ 20 पर प्रकाशित लेख।
19. वही।
20. डी.के. सरदेसाई : ब्रिटिश ट्रेड एक्सपेंशन इन साउथ ईस्ट एशिया : 1830-1914, साथ ही देखें, रादरमुंड, पूर्वोद्धृत, अध्याय-9.
21. तपन रायचौधुरी का लेख 'दि मुगल एम्पॉइअॅ' (सी.ई.एच.आई. खंड 1, पृष्ठ 172)
22. रादरमुंड : पूर्वोद्धृत
23. देखें होल्डेन फर्बर : राइवल एम्पॉइअॅ आव ट्रेड इन दि ओरिएंट: 1600-1800, पृष्ठ 93, 159.
24. के.एन. चौधुरी : दि ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑव एशिया एंड दि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी 1660-1770, पृष्ठ 120, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978 ईस्वी।
25. वही, पृष्ठ 111
26. डब्लू.डब्लू. हण्टर, ए हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इंडिया, लन्दन,1899 ईस्वी, दिल्ली सं. 1972 ईस्वी.
27. के.एन. चौधुरी : उपर्युक्त, पृष्ठ 118
28. रादरमुंड : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 19
29. वही, पृष्ठ 11
30. वही।
31. वही, पृष्ठ 12.
32. वही, पृष्ठ 2
33. डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 218
34. वही, पृष्ठ 207-226, यहाँ यह भी स्मरणीय है कि हण्टर एक राजभक्त ब्रिटिश प्रजा थे और यह पुस्तक महारानी विक्टोरिया को उन्होंने समर्पित की है।
35. होल्डेन फर्बर : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 120-123
36. डब्ल्यू-डब्ल्यू. हण्टर : ए हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 207-226

●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-3

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: इंग्लैंड और यूरोप

विगत अध्याय में हमने 18वीं शताब्दी ईस्वी में भारत की शैक्षणिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, वाणिज्यिक, सैनिक और सांस्कृतिक समृद्धि की अतिसंक्षिप्त और सांकेतिक चर्चा की है। अब उसके सम्मुख इस अध्याय में तत्कालीन यूरोप और इंग्लैंड की चर्चा करनी आवश्यक है। यद्यपि यह बात अजीब लगेगी कि समकालीन भारत या बीते हुए कल के भारत को समझने के लिए यूरोप और खास करके ब्रिटेन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक जीवन के तथ्यों की पड़ताल की जाए। परन्तु बिना यूरोप या इंग्लैंड को समझे उस अवधि के भारत की घटनाओं को समझा नहीं जा सकता। वैसे भी इन दिनों भारत के बल, भारत की सामर्थ्य, भारत की हीनता, भारत की कुरूपता को यूरोप के बरक्स ही तो देखने का चलन है। यूरोप और इंग्लैंड की तुलना में ही तो भारत में कमियाँ ढूंढ़ी जाती हैं। किन्तु वह यूरोप/इंग्लैंड जो कसौटी है उसके बारे में पढ़े-लिखे भारतीयों को तो कुछ भी पता नहीं, बिना जाने समझे ही तुलना होती रहती है। यूरोप/इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था, उसके आर्थिक निर्णयों, उसके विकास के स्वरूप, उसकी राजनैतिक समझ और उसकी मानसिकता (जो शताब्दियों के उसके अनुभव में ढली है) तथा हमारी दुर्दशा, हमारी गरीबी, हमारी विपन्नता और हमारी हीनता में एक अत्यन्त गहरा और तात्कालिक सम्बन्ध है। अत: सामान्य बुद्धि का यह तकाजा है कि हम अपने चारों तरफ पसरी हुई समस्याओं को जरा ध्यान से देखें और यह समझें कि भूत वर्तमान पर क्या रोशनी डालता है और उस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घनिष्ठ अंतस्सम्बन्ध को समझें, जो यूरोप और एशिया में रहा है। इसे समझने के लिए हमें जाना पड़ेगा 14वीं-15वी शताब्दी के उस यूरोप में जहाँ अटलांटिक महासागर के तट पर बसे देशों-स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड, इंग्लैंड, फ्रांस में कलह मची हुई थी। उस समुद्री मार्ग को तलाशने के लिए जो उन्हें पहुँचा दे उस 'इंडीज' तक, जो बहुमूल्य धातुओं का विराट तहखाना था, जहाँ पहुँचकर सोना-चाँदी यूँ गुम हो जाते थे, मानो वापस धरती के गर्भ में समा गये हों।

यूरोप के लिए भारत का महत्व

आर्थिक इतिहास के अध्येता फॉकनर लिखते हैं कि यूरोप के लिए भारत तक जाने वाले जलमार्ग का महत्व तो बढ़ा कर बताया ही नहीं जा सकता, क्योंकि यूरोप का अस्तित्व ही पूर्व से मसाले के व्यापार पर टिका था।

'वाणिज्य के उषाकाल से ही यूरोप एशिया पर निर्भर था अपने भोग-विलास की अधिकांश वस्तुओं तथा अन्य प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए। आज इस बात को समझ पाना कठिन है कि मध्ययुग में मसालों का क्या महत्व था। आज तो गोश्त का ताजापन कोल्ड स्टोरेज या अन्य विधियों से बरकरार रखना संभव हो चुका है। किन्तु तब का सूखा उबाऊ और नीरस खाना तो मिर्च-मसाले को इतनी जरूरी बना देता था कि राजे-महाराजे इसे एक दूसरे के यहाँ गौरवशाली उपहार के रूप में इसे भेजते थे। मध्य युग में भारत के मालाबार तट से काली मिर्च का नियमित निर्यात होता था और वे सब जो इसे खरीद सकते थे, इसका इस्तेमाल करते थे।[1]

बहुतों के लिए यह एक मजेदार रहस्योद्घाटन होगा कि बास्को-डि-गामा द्वारा जलमार्ग खोजे जाने के बाद भी लगभग 100 साल तक एक तिहाई व्यापार केवल काली मिर्च का था।[2] इन परिस्थितियों में भारत के साथ व्यापार पर न केवल अत्याधिक दबाव था वरन यूरोपियनों के लिए यह अत्यंत बहुमूल्य भी था और इससे होने वाला लाभ अत्यंत आकर्षक।

वस्तुतः प्राचीन काल से ही इटलीवासी भारत से व्यापार कर रहे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। इटली के तीनों सुप्रसिद्ध नगरों वेनिस, जेनोवा और पीसा से एशियाई माल यूरोप के पश्चिमी, उत्तरी और मध्य हिस्सों में वितरित होता था।[3] पूर्वी व्यापार से इटली को होने वाली समृद्धि अन्य यूरोपीय देशों की ईर्ष्या और जलन का पर्याप्त कारण थी,[4] जिनके पास न तो पूर्व से व्यापार करने के लिए संसाधन थे, न ही मार्गों की जानकारी।[5] पूर्व जाने के वैकल्पिक मार्गों की तलाश इन परिस्थितियों में उनके अस्तित्व की अनिवार्यता बन चुका था। यह आज भी यूरोप की अनिवार्यता है।[6]

यह था मध्ययुग में पूर्वी व्यापार का यूरोप के लिए महत्व।[7] वस्तुतः यूरोप की समृद्धि और उसका स्वर्णयुग (यूनानी व रोमन युग) निर्भर था महत्वपूर्ण अर्थ में एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्धों पर। न कि जैसा लोग समझते हैं उसके अपने आंतरिक उद्योग, कृषि या व्यापार पर।[8] यूरोपीय देशों का भाग्य चाहे वे प्रतापी हों या दीन, सदैव निर्भर रहा और उतरता-चढ़ता रहा उनके एशियाई विशेषतः भारत चीन के साथ सम्बन्ध के आधार पर और इसी से प्रभावित होता था उनका सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन। स्पष्ट है कि जब यह व्यापार डगमगाता, तब सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी गिरावट दिखती। अकूत सम्पदा के चर्चे यूरोपियनों को ललचाते थे। यह वह लालच था जो 13वीं शताब्दी में मार्कोपोलो के किस्से-कहानियों के बाद अदम्य हो उठा था। इन सबकी स्वाभाविक परिणति थी समुद्री मार्ग की खोज। क्योंकि स्थल मार्ग मुसलमानों के उत्पात और कलह के कारण इनके लिए बन्द हो चुका था।

इतना जानना तो काफी नहीं होगा कि पहले पहल भारत तक पहुँचने का जल-मार्ग पश्चिमी यूरोपीय देशों को 15वीं शताब्दी के अन्त में पता चला। हमारी समझ के विस्तार के लिए तो ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न ये है कि- क्यों अचानक 15वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप को पूर्वी जल-मार्ग खोजने की आपा-धापी आ पड़ी। ये पश्चिमी यूरोपीय समाज आखिर कैसे थे? कैसी थी इनकी अंतरिक संरचना? कौन थे वे लोग जो महासागरों की तरफ मुँह उठाये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चल पड़े? क्या थी (काले अंधेरे खोजते महासागरों में) उनकी ये मजबूरियाँ जो इतने जोखिम भरे काम में लगने के लिए उन्हें प्रेरित कर रही थी (बिना जानकारी के छोटी-छोटी डोंगियों-नावों में निकल पड़ने को ललकार रही थीं)? क्यों और कैसे ईस्ट इंडिया कम्पनी जैसी व्यापारिक तिजारत संगठनों की जरूरत पड़ी? क्या था उनका व्यापार? और उसके तौर तरीके? हमारे लिए ये सभी प्रश्न इसलिए अत्यंत आवश्यक हैं, क्योंकि इनके उत्तर में ही निहित होगा गंभीर तात्पर्य आज के विकास सिद्धान्तों और मॉडलों के लिए?

विकास की अवधारणा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समझने के लिए यों तो हमें सम्पूर्ण यूरो-क्रिश्चियन सभ्यता-दृष्टि को संक्षेप में समझना होगा। परन्तु इसके साथ इंग्लैंड के इतिहास, विकास और औद्योगिक क्रांति के पीछे के सत्य को विस्तार से समझना सर्वाधिक आवश्यक है। संसाधनों की कमी और विकास के परिवेश के अभाव या अधोसंरचनाओं की अनुपस्थिति जैसे प्रत्ययों से विकास की अवधारणा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को नहीं समझा जा सकता। हाँ, इन प्रत्ययों के द्वारा उसे ढँका अवश्य जा सकता है।

यों तो 'तीसरी दुनिया' या 'अविकसित दुनिया' या 'विकासशील विश्व' जैसे पदों का अर्थ भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के बिना समझा ही नहीं जा सकता। या तो किसी नस्लवादी दृष्टि से ये विभाजन किये जाएँ या फिर इन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझा जाए। दो ही विकल्प हैं। वस्तुतः राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक अराजकता, भेदभावपूर्ण समाज-व्यवस्था, जनसंख्या वृद्धि आदि प्रत्ययों से भी इन सन्दर्भों को सही रूप में नहीं समझा जा सकता। यदि ये ही कारण अल्पविकास के मान्य हैं तो यह जाँचना आवश्यक है कि औद्योगिक क्रांति के आदर्श 'ब्रिटेन' में ये सब स्थितियाँ रही हैं या नहीं- विशेषकर स्वयं उस दौर में, जब वहाँ औद्योगिक क्रांति घटित हो रही थी। फिर, इन दिनों तो अर्थशास्त्रियों में इस पर सर्वानुमति है कि पूंजी ही विकास और वृद्धि का सर्वाधिक अनिवार्य तत्व है। यदि अर्थशास्त्र सचमुच एक वैज्ञानिक अनुशासन है तो इस सत्य का परीक्षण आवश्यक है कि औद्योगिक क्रांति में रत इंग्लैंड के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पास क्या था मूलभूत संसाधन : पूंजी, समता मूलक समाज, जनसंख्या- वृद्धि पर नियंत्रण आदि, क्या-क्या? साथ ही, इंग्लैंड के समाज के स्वरूप और इतिहास दोनों को जानना आवश्यक है, तभी हम ये परीक्षण कर सकेंगे।

इंग्लैंड के उदय और विकास पर विहंगम दृष्टि

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम उस इंग्लैंड के उदय और विकास पर विहंगम दृष्टि आवश्यक है जो औद्योगिक क्रांति का सर्वश्रेष्ठ मॉडल माना जाता है।

दलदलों और जंगलों से भरा वह इलाका, जिसे बहुत बाद में इंग्लैंड कहा गया, वहाँ जंगलों के बीच खदानों में टिन और सोना मिलता था और सागर-तट पर मोती मिलते थे।[9] यह आज से सात हजार वर्ष पूर्व की स्थिति है, जब अतलान्त सागर की लहरों ने उस पट्टी को लील लिया जो इस द्वीप को शेष बड़े हिस्से से जोड़ती थी। उस क्षेत्र का भी नाम तब यूरोप नहीं था। वह 19वीं शती ईस्वी से पूर्व विश्व इतिहास में कोई अलग महाद्वीप समझा ही नहीं गया। क्योंकि वह यूरेशिया क्षेत्र का ही वह हिस्सा है, जो समुद्र की ओर धंसी पट्टी जैसा है। ऐतिहासिक काल में वह 250 वर्ष पूर्व तक विविध रियासतों और राज्यों का एक पिंड मात्र था। उसका कोई एक नाम नहीं था और उस हिस्से में कभी कोई राष्ट्र ऐतिहासिक काल में नहीं रहा। यह भारत से नितांत विभिन्न स्थिति है। भारत हजारों वर्षों से एक राष्ट्र रहा है, इसके प्रचुर अभिलेखीय एवं अन्य साक्ष्य है। इसलिए किसी अद्वितीय प्रतिभाशाली यूरोपीय के अतिरिक्त सामान्यतः कोई यूरोपीय व्यक्ति भारत को समझ नहीं पाता। जो चीज कभी देखी-सुनी भी नहीं, पढ़ी-समझी नहीं, उसे समझ पाना सामान्यतः सम्भव नहीं होता, क्योंकि सादृश्य और तुलना पूर्वक ही सामान्यतः मनुष्य अवधारण करते हैं। जिन मानस प्रतिभाओं से जिस व्यक्ति या समाज का कोई परिचय ही नहीं है, उनका ध्यान वह नहीं कर पाता। बिना ध्यान के अवधारण सम्भव नहीं होता।[10]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ईसापूर्व 3200 वर्ष में, जब भारत वर्ष में कौरवों-पाण्डवों के विराट महाभारत युद्ध की देशव्यापी तैयारियाँ चल रही थीं, सैकड़ों तेजस्वी नरेश भारतभूमि पर राज्य कर रहे थे, महाप्रतापी भगवान कृष्ण तेजस्वी सूर्य की तरह ज्ञान, वीरता और शील, करुणा और प्रज्ञा, अध्यात्म और ऐश्वर्य के विराट तेजपुंज की तरह चमक रहे थे, तब ब्रिटेन दलदल और जंगल से भरा उजाड़ सा इलाका था। कहीं-कहीं कुछ मछुआरे और बहेलिए यहाँ-वहाँ बसते-उड़ते।

ईसा पूर्व 2000 में जब भारत में नन्दों, मौर्यों, मल्लों, वत्सों, पांचालों, शौरसेनों, मत्स्यों और कुरुओं के महान वैभवशाली साम्राज्य थे और 16 विशाल जनपद थे, जिनमें से प्रत्येक की आबादी कम से कम एक करोड़ से अधिक थी, उस समय ब्रिटेन की कुल आबादी 4 से 5 हजार थी और वहाँ लोग हिरण की सींग और मरे हुए जानवरों की हड्डियों से खड़िया की खदानों और चकमक पत्थरों की तथा कहीं-कहीं तांबे की खुदाई कर रहे थे। ईसापूर्व एक हजार में जब भारत में भगवान बुद्ध और महावीर आकर जा चुके थे, तब वहाँ पहलीबार कुछ लोगों ने लौह अयस्क ढूंढ़ा।

ईसा पूर्व 500 में वहाँ पहली बार खेती हुई।[11] तब वहाँ स्कैंडिनेविया से नॉर्समेन और डेन तथा अन्य देशों से पिक्ट, स्काट आदि लोग आकर बसे।[1] भारतीय दृष्टि से ईसा पूर्व तीसरी-चौथी शती में, जिन दिनों भारत में गुप्त काल का स्वर्ण युग था (पादरी जोन्स के भारतीय शिष्य गुप्त काल को तीसरी या चौथी शती ईस्वी में हुआ मानते हैं), उन दिनों इंग्लैंड में केल्त, ट्यूटन, सेक्सन, जूट, पिक्त, गॉल, वेल्श, स्काट आदि जातियाँ यानी जनगण अलग-अलग बस्तियाँ बनाकर रह रहे थे और परस्पर लड़ रहे थे।[12] सर्व प्रथम मीसीनी, मिस्र तथा कृति सभ्यताओं के कुछ साहसी लोग वहाँ आकर बसे। कार्नवाल, वेल्स और स्कॉटलैंड के पठारों में बसे इबेरियन और केल्त जो सूर्य-आराधक एवं बहुदेववादी थे। फिर स्कॉट, पिक्ट और वेल्श-जो सभी वस्तुतः इबेरियन नस्ल की अलग-अलग शाखाएँ मानी जाती है।[13] भारत का उन दिनों मिस्र तथा स्पेन से व्यापार था। स्पेन और मिस्र की तत्कालीन वस्तुएँ वहाँ खुदाई में मिली हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिससे लगता है कि कुछ भारतीय या मिस्त्री व्यापारी वहाँ उन दिनों भी जाते थे। यद्यपि भारत की चर्चा यूरोपीय इतिहासकार नहीं करते।

सूर्यपूजक केल्तों और रोमनों का दास बना इंग्लैंड

फिर वहाँ ईसा पूर्व दूसरी शती में रोमनों का आक्रमण हुआ।[14] दो सौ वर्ष इंग्लैंड का आधा हिस्सा रोमनों का दास हुआ। आधा हिस्सा सूर्यपूजक केल्तों का। रोमन भी बहुदेव पूजक थे। सर्वत्र बहुत से देवी-देवताओं की पूजा होती थी। रोमन इंग्लैंड के लोगों का गहरा तिरस्कार करते थे। पर वे सनातनधर्मी थे, अत: स्थानीय संस्कृति उन्होंने नष्ट नहीं की। रोमनों के समय पहली बार लंदन शहर विकसित हुआ। ईसा की पहली शती में रोमन साम्राज्य सिकुड़ गया। तब तक इंग्लैंड बीसों राज्यों में विभक्त था। इसमें से 11 राजा रोमनों के अधीन थे, शेष केल्तों के। बाद में रोमनों ने अधिकांश केल्तों को भी जीत लिया। परन्तु बोएदिका नामक रानी, जो केल्तों के आइसेनी कबीले की थी, परम वीर थी और उसने हजारों रोमनों को मौत के घाट उतार दिया। बाद में संगठित रोमनों ने बोएदिका की सेना को हरा दिया। रानी ने राजकुमारियों सहित जहर पी लिया, ताकि शत्रु स्पर्श न कर सकें।[15] तब भी धुर उत्तर के स्कॉटों को रोमन नहीं जीत सके। उन्होंने एक दीवाल खड़ी कर दी जिसे रोमन पार नहीं कर पाए। शेष ब्रिटेन का पूर्णत: रोमनीकरण हो गया। परन्तु बाद में, ईसाइयत के दुष्प्रभाव और चर्च पादरियों के विश्वासघात तथा छल से रोम- साम्राज्य नष्ट हो गया। ब्रिटेन में अंधकार युग प्रारंभ हो गया।[16]

नए-नए लोगों का कब्जा इंग्लैंड पर

इसके बाद पाँचवीं-छठी शती ईस्वी में गोथों, एंगल्स, सेक्सनों और जूटों के नए-नए समूहों ने बाहर से आकर इंग्लैंड पर अलग-अलग कब्जा कर लिया। उधर वेल्सों और केल्तों के अलग राज्य थे। यह वह समय था, जब उत्तर भारत में समुद्रगुप्त, कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त आदि के वैभवपूर्ण राज्य थे। दक्षिण में चालुक्यों का साम्राज्य था। अश्वमेध यज्ञ हो रहे थे। कालिदास जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाकवि, आर्यभट्ट, वराह मिहिर आदि गणितज्ञ व खगोलशास्त्री हो चुके थे। जब भारत में सम्राट हर्षवर्षन और पुलकेशिन द्वितीय तथा शशांक के राज्य थे तब इंग्लैड में सैक्सन और वेल्स आदिम किस्म की लड़ाई लड़ रहे थे तथा वहाँ अत्यंत अविकसित सामाजिक दशा थी।[17]

8वीं शती ईस्वी तक इंग्लैंड वाले धनुष-बाण चलाना नहीं जानते थे

तब तक वहाँ धनुष-बाण का प्रचलन युद्ध में नहीं हुआ था। इंग्लैंड में धनुष बाण वाइकिंग वंश के योद्धाओं के आक्रमण के साथ आया। इन्होंने 8वीं शती ईस्वी में इंग्लैंड पर हमला किया।[18] इसी समय सेक्सनों के भी और नए समूह आए।

दर्जनों समूहों का इंग्लैंड पर कब्जा, मारकाट

8वीं शती ईस्वी में इंग्लैंड में सैकड़ों रियासतें बन गईं। पिक्ट, स्कॉट, वेल्श, ब्रिगेन्तेस, सेक्सन, डेन, नॉर्स, फ्लेमिश, ट्यूटन, हूजनाट, हेब्रू और आइरिश समूहों के मध्य भयंकर मारकाट मची थी। धीरे-धीरे सेक्सन अधिकांश जगह भारी पड़े। इन्हें ही एंग्लोसेक्सन कहा जाने लगा। आज के इंग्लैंड के अधिकांश नाम सेक्सनों के रखे हुए हैं।[19] यद्यपि डेन, केल्ट तथा वेल्श मूल के भी कई नाम हैं। इन जातियों के इन आपसी युद्धों का सर्वाधिक लाभ चर्च के क्रिश्चियन पादरियों ने उठाया जो कभी इस राजा का साथ देते, कभी उस।[20] रोम में भी ईसाइयत ने इसी भांति प्रवेश किया था, ब्रिटेन में भी और अन्यत्र भी।

हर जगह हर कोई खुद को राजा बताने लगा

स्थिति सुदृढ़ होती, तभी नार्वे से डेन सैनिक हजारों की संख्या में इंग्लैंड पर टूट पड़े। डेन और वाइकिंग आपस में मिल गए तथा सेक्सनों को मारने लगे। हर जगह हर कोई खुद को राजा घोषित करने लगा। इसी अवधि में 11वीं शती ईस्वी में चर्च अपनी कूटनीति से इंग्लैंड में सुदृढ़ हुआ। उधर चर्च के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
निमंत्रण पर नार्मण्डी से नार्मनों ने इंग्लैंड पर आक्रमण किया। नार्मन फ्रेंच भाषी थे। वे मिट्टी के गुम्बदाकार दुर्ग बनाने में निपुण थे। लगभग 200 वर्षों तक नार्मनों और सेक्सनों में आपसी लड़ाइयाँ चलती रहीं। चर्च पादरियों ने अब नार्मनों का साथ दिया। नार्मनों ने चर्च को संरक्षण दिया। 11वीं शती ईस्वी से क्रिश्चियनिटी इंग्लैंड में व्यापक होने लगा।[21]

परस्पर मार-काट, लूट, विद्रोह, महामारियों का दौर

12वीं शती ईस्वी के आरम्भ में इंग्लैंड में 6 बड़े राज्य थे-(1) मर्सिया (2) नार्थम्ब्रिया (3) वेसेक्स (4) स्कॉटलैंड (5) वेल्श और (6) ईस्ट एंग्लिया। इनमें से हर एक स्वयं को एक अलग 'नेशन' मानता था। चर्च के इशारे पर बहुदेव पूजकों का नृशंस उत्पीड़न किया गया। गांव के गांव जिन्दा जला दिए गए।[22] इंग्लैंड के विविध लुटेरों के समूह फ्रांस के लुटेरों से लड़ते रहे। यह लड़ाई सौ वर्षों तक चली। बाद में इसे ही इंग्लैंड और फ्रांस का 'सौ वर्षीय युद्ध' कहा गया जो इन राष्ट्रों के राजाओं के बीच नहीं था, क्योंकि तब तक न इंग्लैंड एक राष्ट्र-राज्य बना था, न फ्रांस। 14वीं शती ईस्वी में इंग्लैंड और फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों में सौ से अधिक प्रचण्ड किसान- विद्रोह हुए। इसी बीच, वहाँ प्लेग की महामारी फैली और इंग्लैंड की लगभग आधी आबादी महामारी से साफ हो गई। प्लेग के प्रकोप के उपचार के सिलसिले में वहाँ होम्यापैथी दवाओं का पहली बार भारी प्रचार हुआ। एलोपैथी की तब तक ख़ोज ही नहीं हुई थी। आयुर्वेद वहाँ था नहीं।

षडयंत्रों के अड्डे बने चर्च

ईसाइयत के प्रचार के साथ इंग्लैंड में कैथोलिकों और प्रोटेस्टेण्टों में भयंकर मारकाट शुरू हो गई। चर्च षडयंत्रों के अड्डे बन गये। चारों ओर भयावह दरिद्रता का साम्राज्य था। चर्च के कठोर नियमों से जीवन दुष्कर हो रहा था। लोग भाग जाना चाहते थे। पर उन्हें बताया गया था कि आगे जाओगे तो अतल गहराई में सदा के लिए डूब जाओगे। तभी इटली से रेनेसां की लहर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
फैली। क्योंकि मार्कोपोलो चीन व भारत घूमकर लौटा तो बताया कि दुनिया बहुत बड़ी है और एक से एक सभ्य समाज विश्व में हैं।

लूट के मामले में रानी का कमीशन

पीकिंग और भारत घूम आए मार्को पोलो के किस्से भद्रजनों के घर-घर में फैल गये। इंडिया की समृद्धि की कहानियाँ फैलीं। आवारा, अपराधी, लुटेरे और डकैत, नाविक और उचक्के दूर देशों में जाने को मचलने लगे। इसके लिए महारानी को शपथपूर्वक आश्वासन देना होता था कि जो भी लूट का माल लाएँगे, उसमें आपको उचित हिस्सा देंगे। अन्यथा उनके वापस इंग्लैंड लौटने पर रोक थी। बेचारे लुटेरे और डकैत माल लूटकर परिवार में आने को बेचैन रहते थे। अत: कमीशन सहित हर शर्त मान ली।

400 साल पहले ही लिखी गई अंग्रेजी में बाइबिल

चासर ने पहली अंग्रेजी कविता चौदहवीं शती के अंत में लिखी, जिसका व्याकरण तब तक नियमबद्ध नहीं था। 16वीं शती ईस्वी में शेक्सपीयर ने नाटक व कविताएँ लिखीं जो चर्चित हुईं। उसी समय पहली बार अंग्रेजी में बाइबिल लिखी गई। उसके पहले लेटिन में ही लिखी जाती थी और थोड़े से पादरी ही वहाँ पढ़े हुए ते। अब अंग्रेजी बाइबिल को 'जेंटिलमेन' भी पढ़ने लगे और साधारण पादरी भी। जन-साधारण तथा स्त्रियाँ तब तक पढ़ाई से वंचित थे। वे बाइबिल का उच्चारण भी नहीं कर सकते थे। ऐसा करने पर प्रतिबंध था।

इंग्लैंड के आइने में भारत को पेश किया

उसी के अनुसरण पर पादरियों ने झूठा प्रचार किया कि भारत में भी धर्मशास्त्रों का पढ़ना साधारण लोगों के लिए वर्जित है। यह वह समय है, जब भारत में रामचरित मानस घर-घर गाई जा रही थी। कबीर, सूर, रैदास, आदि प्रख्यात संत हो चुके थे तथा उनकी कविताएँ घर-घर में गाई जाती थीं। नामदेव सहित मराठी संत, ओड़िया कवि, बांग्ला कवि, असमिया कवि, कश्मीरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि, तेलुगू–तमिल–मलयालम–कन्नड़ और गुजराती कवि तथा गुरु नानकदेव गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास सहित सिख गुरुओं की बानी देश भर में पूजित और व्यापक थी। तब इंग्लैंड में मुट्ठी भर लोग केवल बाइबिल पढ़ रहे थे और साथ ही पढ़ते थे लेटिन कानून जो केवल ईसाइयत की जानकारी देता था। जनसाधारण इन दोनों चीजों से अपरिचित थे।

औद्योगिक क्रांति के पूर्व के इंग्लैंड की कुछ झलकियाँ

औद्योगिक क्रांति इंग्लैंड में क्यों हुई? इसका कारण बताया जाता है- उन्नत समाज, समतामूलक व्यवस्था, पूँजी, प्रबन्ध कौशल, ज्ञान और अनुसन्धान। परन्तु इंग्लैंड की वास्तविक दशा 16वीं–17वीं शती ईस्वी में क्या था? तत्कालीन दशा की कुछ झलकियाँ निम्नानुसार हैं:-

(1) राजा व पादरियों के सिवाय कोई पढ़ना जानता ही नहीं था। पादरी भी केवल बाइबिल और पोप के कानून ही पढ़ते थे।

यह वह समय है, जब भारत के गांव–गांव में विद्यालय थे जहाँ हर जाति के शिक्षक होते थे और हर जाति के छात्र। जब विजयनगर साम्राज्य और मुगल साम्राज्य दोनों वैभव पर थे। चोलों और चालुक्यों के साम्राज्य हो चुके थे। भव्य मंदिरों की शृंखलाएँ भारत में स्थापित हो चुकी थीं। विशाल मंदिरों, भव्य प्रासादों, विशाल कृत्रिम झीलों, सुदृढ़ तटबंधों, सुंदर वास्तु, अद्वितीय शिल्प तथा विश्वव्यापी व्यापार के लिए भारत की प्रसिद्धि थी। विद्या के सैकड़ों विराट केन्द्र और लाखों विद्यालय भारत में चल रहे थे। जिनमें करोड़ों लोग पढ़ रहे थे। तब इंग्लैंड में बमुश्किल कुछ हजार लोग पढ़ रहे थे और केवल बाइबिल तथा ईसाइयत के नियम–कानून पढ़ रहे थे।

(2) उन्हीं दिनों वहाँ चर्च पादरी हजारों की संख्या में स्त्रियों को जला रहे थे, खौलते कड़ाह में उबाल रहे थे, पानी में डुबोकर मार रहे थे और घोड़ों की पूंछ में बांधकर सड़कों पर घसीट–घसीट कर मार रहे थे। कांटेदार कुर्सियों में बैठाकर यंत्रणा दे रहे थे तथा किस दिन स्त्रियाँ अपने पति से मिल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकती हैं, किस दिन नहीं, यह तय कर रहे थे। नियम तोड़ने वालों का दंड दे रहे थे। स्त्री-पुरुष के निजी प्रणय-भावों की गाथा विस्तार से अविवाहित पादरी रेलिजस ड्यूटी मानकर 'कन्फेशन्स' के नाम से सुन रहे थे। भांति-भांति के व्यभिचार हो रहे थे। यह इतिहास का तथ्य है और अन्य यूरोपीय तथा अंग्रेज इतिहासकारों की सर्वसम्मत मान्यता है कि यूरोप में प्लेग और ब्लैक डेथ से जितने लोग मरे, उससे अधिक लोग चर्च पादरियों के द्वारा 'रेलिजन' के नाम पर मार डाले गये।[23]

(3) महामारियों से उबरने के बाद सौ साल बीतते-बीतते सोलहवीं-सत्रहवीं शती ईस्वी में इंग्लैंड में भयंकर गृहयुद्ध हुआ। चर्च और राजा में ठन गई।[24] दूसरी ओर बाड़ाबंदी के नाम पर सम्पन्न लोग ऊन के लिए भेड़ें पालने के नाम पर किसानों को भगाकर सैकड़ों एकड़ खेत छीन-छीन बाड़ा बना देते। किसानों के पास कुल्हाड़े और तीर-कमान थे जबकि सम्पन्नों के पास तोपें और बारूद आ चुकी थी।[25] कई लाख किसान उजड़ गए। शाही पार्क से हिरणों का चोरी-चोरी शिकार होने लगा। लंदन में हर जगह छेड़छाड़, मसखरी, झड़पें। केथोलिकों- प्रोटेस्टेंटों में खूनी झड़पें जगह-जगह हो रही थीं।

(4) संसद में राजा के विरुद्ध अभियोग चला। सेना का नियंत्रण संसद ने अपने हाथ में ले लिया। ग्यारह वोट संसद में इस विधेयक के पक्ष में अधिक पड़े। जबकि विरोध भी बहुत हुआ।[26] राजा की रानी ने कहा- 'तुम कायर हो'। इस पर भड़करकर राजा चार्ल्स प्रथम 400 सैनिकों को लेकर संसद जा धमके और चार सांसदों को पकड़ने लगे।[27] इससे संसद के विशेषाधिकार भंग का मामला बना। सड़कों में जंग छिड़ गई। दोनों तरफ से सशस्त्र लोग जमा हो गए। सेना में फूट पड़ गई। एक ओर एंग्लिकन चर्च के समर्थक थे, दूसरी ओर प्रोटेस्टेंट, प्योरिटन और प्रेस्बीटेरियन। संसद में अभियोग चला। ऑलिवर, क्रामवेल की अगुवाई में राजा चार्ल्स प्रथम को मृत्युदंड सुनाया गया। गृहयुद्ध में शाही सेना के 4000 सैनिक मारे गए और 1500 सैनिक बंदी बना लिए गए। हजारों नागरिक मारे गए। क्रामवेल के समर्थक हजारों सैनिक भी मारे गए। क्रामवेल का भतीजा भी मारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया।[28] लेखक जॉन ओ फेरेल लिखते हैं- 'स्कॉटिश सेनाओं का समर्थन जुटाकर पिट ने राजा के समर्थकों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा, दूसरी ओर महामारी और तीसरी ओर क्रामवेल द्वारा कैथोलिकों की सामूहिक हत्या, इन तीनों के कारण 17वीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में (1640-1645 ईस्वी के बीच) इंग्लैंड में इतने लोग मारे गए, जितने प्रथम विश्वयुद्ध में भी नहीं मारे गए थे।[29]

(5) लेखक जॉन ओ फेरेल लिखते हैं- '1650 ईस्वी में इंग्लैंड में क्रिश्चियन फंडामेंटलिस्ट्स का बोलबाला था जिनका 'रेलिजस मिशन' था कि कहीं कोई व्यक्ति, नर या नारी सुखी दिखे तो उसका सुख मिटा दो। संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया गया। थिएटर बंद कर दिए गए। क्रिसमस और ईस्टर पर भी पाबन्दी लगा दी गई। क्रामवेल ने फतवा दिया- 'क्रिसमस गॉड के विरुद्ध एक पाप है। यह पापपूर्ण उत्सव है, दिखाऊ फिजूलख़र्ची है, रेलिजन के विरुद्ध है।' मनोरंजन के केन्द्रों पर जुर्माना ठोंका जाता। शराब के अड्डों पर पाबंदी लग गई। कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ ज्यादा खुश होकर आनंद लेता दिखे तो उसे भी दंडित किया जाने लगा। प्रोटेस्टेंट क्रामवेल ने कैथोलिकों को एंटी-क्राइस्ट करार दिया।[30] कैथोलिकों की सम्पत्तियाँ छीन कर खेत और समस्त जायदाद हड़पकर उन्हें मजदूर बना डाला गया।

कैथोलिकों को बंधुआ मजदूर बनाया

पहले तो तय किया गया कि सभी कैथोलिकों को इंग्लैंड से निकाल बाहर करो। फिर लगा कि खेतिहर मजदूर कहाँ मिलेंगे। बहरहाल सभी कैथोलिक किसानों के समस्त खेत छीन लिए गए और उन्हें खेतिहर मजदूर बनने को विवश कर दिया गया। उनके खेत छीनकर क्रामवेल के समर्थक सैनिकों को दे दिए गए।[31]

राजा को ही पादरियों ने मृत्युदंड दे दिया

(6) पादरियों के छल से चार्ल्स प्रथम को मृत्युदंड दिया गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस पर स्कॉटलैंड के लोगों ने चार्ल्स द्वितीय को वहाँ का राजा घोषित कर दिया। क्रुद्ध क्रामवेल उत्तर स्कॉटलैंड के विरुद्ध सेना लेकर जा पहुँचा। वहाँ कई जगह युद्ध हुए। क्रामवेल जीत गया।

30 जनवरी 1649 को किंग चार्ल्स प्रथम को मृत्युदंड स्थल ले जाया गया। जहाँ हजारों लोग एकत्र थे। जब राजा ने छोटा सा भाषण देने के बाद अपना सिर बलिवेदी पर रखा, भीड़ फफक कर रोने लगी। राजा का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। फिर, भीड़ से डरकर उसे फिर सिल दिया गया। खैर, राजा को तो मरना ही था। ऐसे सिले सिर से वह कैसे जी पाता? चार्ल्स प्रथम मर गया।

क्रामवेल का पैशाचिक उन्माद

इन दिनों क्रामवेल को प्रोटेस्टेंटों का तालिबानी संस्करण कहा जाता है। क्योंकि उसने लाखों निर्दोष नागरिकों को मरवा डाला था। स्त्रियाँ और बच्चे भागकर चर्च में जा छिपे तो वहीं उन्हें जिन्दा जला दिया गया। कई जगह जन-संहार किया गया। प्रोटेस्टेंटों के भीतर कैथोलिकों के विरुद्ध 'रेलिजस उन्माद' भर दिया गया।[32]

लाश को फांसी दी, फिर पानी में डुबोया, फिर सिर काटकर टांग दिया

राजा चार्ल्स की मृत्यु की खबर सुन क्रुद्ध स्कॉटिश आर्मी ने लंदन पर धावा बोल दिया। उस सेना के पक्ष में जनता हो गई। 13 वर्षीय चार्ल्स द्वितीय को गद्दी पर बैठाया गया। परन्तु चार्ल्स द्वितीय परम व्यभिचारी निकला। इस बीच मलेरिया के कारण आलिवर क्रामवेल मर गया था। चार्ल्स द्वितीय ने उसकी कब्र खुदवाई। फिर उसे फांसी दी। फिर उसे पानी में डुबो-डुबोकर (लाख को) दंडित किया। फिर उसका सिर काटकर टांग दिया गया।[33] गैर प्रोटेस्टेंट पादरियों को चर्चों से निकालकर बाहर किया गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यभिचारी चार्ल्स द्वितीय

(7) चार्ल्स द्वितीय इसके लिए कुख्यात हो गया कि वह हजारों स्त्रियों के साथ हम बिस्तर हो चुका है। 14 अवैध बच्चों का वह 'ऑफिशियल' पिता कहलाया। वे सभी अवैध बच्चे इंग्लैंड के ड्यूक बने। 20वीं शती ईस्वी तक के लोग इंग्लैंड के हाउस ऑफ लॉर्ड्स के सदस्य रहे। अंततः 25 वर्ष की उम्र में चार्ल्स द्वितीय मर गया। इंग्लैंड में और यूरोप के अन्य देशों में भी राज-परिवारों की अपनी परम्परा है, जिसे विधिक मान्यता प्राप्त है। दूसरी ओर चर्च की अपनी मान्यताएँ हैं और उन्हें भी विधिक मान्यता प्राप्त है।

भयंकर प्लेग दुबारा फैला

(8) 1665 ईस्वी में प्लेग दुबारा फैला। एक लाख अंग्रेज महामारी से मगर गए। हल्ला मचा कि इंग्लैंड में पाप बहुत बढ़ गया है, इसलिए प्लेग फैला है। इस बीच वहाँ भी रेनेसां का प्रभाव फैला और हर दुस्साहसी अंग्रेज युवा इंग्लैंड से बाहर भागकर जाने की ताक में रहने लगा। इसी के समानान्तर कैथोलिकों के विरुद्ध मारकाट व जलसा-जुलूस बढ़ता गया।[34]

कैथोलिकों को पीटना कानूनन सही

(9) ईस्वी सन् 1688 में ब्रिटिश संसद को विधिक सर्वोच्चता मिल गई। तब संसद ने तीन महत्वपूर्ण विधेयक पारित किए- (1) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विधेयक। (2) राजनैतिक मत की स्वतंत्रता का विधेयक और (3) सभी कैथोलिकों को पीटने का अधिकार हर प्रोटेस्टेंट को है। यह विधेयक।[35]

1707 ईस्वी में स्कॉटलैंड और इंग्लैंड की एकता के लिए दोनों राज्यों में संधि हुई। तब हुआ यह कि स्कॉटिश खिलाड़ी ब्रिटिश मीडिया में तब तक ही 'ब्रिटिश' कहे जाते थे, जब तक वे जीतते रहे। इससे स्कॉट बहुत चिढ़ते थे, क्योंकि हारने वाले उनके खिलाड़ियों को मीडिया 'स्कॉट' ही लिखता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नित्य स्नान और हाथ धोना भी पाप घोषित

(10) पॉलीन ईसाइयत ने पवित्रता की भी विचित्र धारणाएँ दी थीं। यह माना गया कि ज्यादा नहाने की इच्छा व्यक्ति की आंतरिक अपवित्रता का लक्ष्य है। हाथ भी ज्यादा नहीं धोना चाहिए। इन मान्यताओं तथा इस दशा के कारण कि इंग्लैंड में तब तक साधारण लोगों के पास एक जोड़ी ऊनी कपड़े से अधिक नहीं होते थे और वे मल-त्याग के बाद हाथ तो धोते नहीं थे, घाव होने की स्थिति में व्यक्ति को अक्सर 'संक्रमण' हो जाता। इस कारण लाखों लोग मरते रहते। 1855 ईस्वी में जब फ्लोरिस नाइटिंगेल ने हाथ धोने का प्रचार किया, तब से ऐसी मौतें थमीं। ये हैं उस परिदृश्य की कुछ झलकियाँ, जो तत्कालीन इंग्लैंड की हैं, जब वह औद्योगिक क्रांति में अग्रणी बन रहा था। जिन दिनों भारतीय राजा तथा जनगण, ईस्ट इंडिया कम्पनी के सैनिक अफसरों व सेनाओं को पीटकर भगाने की तैयारी कर रहे थे, उन्हीं दिनों शौच के बाद सफाई न करने की प्रवृत्ति के कारण हजारों लोग इंग्लैंड में रोग-संक्रमण से मर रहे थे।

(11) वस्तुत: शौच के बाद की सफाई का ज्ञान इंग्लैंड के यहूदियों और मुसलमानों को था, परन्तु ईसाइयों को बताया गया था कि ऐसी सफाई भीतरी पाप की निशानी है। सच्चे ईसाई को तो 'गॉड' के इकलौते बेटे के रूप में 'जीसस' पर आस्था ले आना ही पवित्रता की गारंटी है। इसलिए केवल ईसाइयों में 'इन्फेक्शन' फैलता। अनेक धनी अंग्रेज किसी कारण घाव हो जाने पर ऐसे ही इन्फेक्शन से मरते रहते थे। उधर, जब ज्यादा ईसाई किसी इलाके में मरते और मुसलमान या यहूदी न मरते, तो इलाके के बचे हुए ईसाई यह मानते कि यहूदियों या मुसलमानों ने उनके कुंओं या झीलों में जहर मिला दिया है और उनका सामूहिक कत्ले-आम या जिंदा जलाना शुरू कर देते। ऐसे क्रूर तथा अज्ञान से भरे परिवेश में जी रहे थे अंग्रेज, जब वहाँ तथाकथित औद्योगिक क्रांति हो रही थी। विदेश गए अंग्रेज जब धनलूटकर लाते तो उनका सम्मान होता। वे विदेशों की जानकारियाँ भी देते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्राह्मणों को भारत के पादरी समझा

(12) तब तक, भारत के ब्राह्मणों को भारत के पादरी माना जाता था। उनके बारे में भांति-भांति के किस्से वहाँ लिखे और फैलाए जाते कि वे दिन में तीन बार नहाते हैं, किसी को छूते नहीं। कम्पनी ने अवध के नवाब की सेना को भंग करने की मजबूरी पैदा की तो अवध के बहुत से किसान जो सेना में थे, बेरोजगार हो गए। उनमें से हजारों ब्राह्मण भी थे। वे सब कम्पनी की 'रॉयल बेंगाल आर्मी' में जीविका के लिए भर्ती हुए।

भारत से सीखे सफाई के तरीके

उनमें से हर एक स्वपाकी था, कभी भी मांस या अंडा नहीं खाते थे। शौच के किन नियमों का किस गोत्र के ब्राह्मण किस प्रकार पालन करते हैं, लड़ाई के मोर्चे पर कैसे वे कई दिन सूखा सत्तू ही पानी में सानकर नमक मिलाकर खाते हैं, मांस-अंडा नहीं छूते, फिर भी शक्तिशाली होते हैं, इस पर खूब लेख व किताबें छपीं। इस कारण इंग्लैंड के सम्पन्न वर्ग में स्वच्छता का आग्रह व सम्मान बढ़ा। इसी बीच, 18वीं शती ईस्वी के भारत के विज्ञान के विषय में अंग्रेजों तथा यूरोपीयों द्वारा एकत्र जानकारियाँ छपीं। तब यह भी छपा कि वहाँ के नाऊ (जिन्हें कई बार अंग्रेज ब्राह्मण ही समझते थे और वे नाई भी स्वयं को शर्मा कहकर ब्राह्मण बताकर आनंदित होते थे) कैसे शल्य-चिकित्सा करते हैं। तब, हाथ धोने, चाकू वगैरह को पानी में उबालने आदि के महत्व पर खूब लेख छपे। सम्पन्न वर्ग में हाथ धोने और सफाई का चलन बढ़ा। यद्यपि शौच में पानी से सफाई करने का चलन तब भी सम्भव नहीं था, क्योंकि इतना पानी ही इंग्लैंड में सब जगह तब तक सुलभ नहीं था। ज्यादातर शहरों में शौचालय घरों के उस हिस्से में बनते, जहाँ से सड़कें और गलियाँ गुजरतीं। सुबह सुअर छोड़ दिए जाते तो घूम-घूमकर मल की सफाई करते। इसीलिए शहरों की सार्वजनिक जिन्दगीं देर से शुरू होती। ऐसे परिवेश में भारत तथा अन्य देशों की स्वच्छता की जानकारी का फैलाव होने पर स्वच्छता का आग्रह बढ़ा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने नर्सों को हाथ धोना सिखवाया

(13) 19वीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैंड के अभिजात वर्ग में उत्पन्न फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने चर्च की सेवा के लिए बीमारों की सेवा का व्रत लिया। उसके पहले वहाँ नर्सिंग के पेशे में मुख्यत: ऐसी वेश्याएँ ही होती थीं, जो चर्च की प्रेरणा से अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए नर्स बनती थीं। तब तक, इंग्लैंड में यह प्रचार था कि हॉस्पिटल जाने का अर्थ है मौत। क्योंकि हर भर्ती होने वाले रोगी को वहाँ नए-नए रोग-संक्रमण हो जाते थे। नाइटिंगेल ने आंकड़ों और तथ्यों से रॉयल एकेडमी के समक्ष यह सिद्ध कर दिया कि संक्रमण से ये मौतें स्वच्छता की कमी से हो रही हैं। तब भी, बात बनी नहीं। क्रमश: सम्पन्न फ्लोरेंस ने अन्य सम्पन्नों के सहयोग से अनुकूल परिवेश बनाकर यह प्रचार करने में सफलता पा ली कि मरीजों को दवा देने के पहले या किसी चीरफाड़ या घाव साफ करने के पहले नर्सों को हाथ अवश्य धोना चाहिए। शीघ्र ही, 'इन्फेक्शन' से होने वाली मौतें बिल्कुल कम हो गईं और पूरे इंग्लैंड में लेखों, रिपोर्टों आदि के द्वारा 'हाथ धोने' का प्रचार हो गया। यह सन् 1855 की घटना है। रोग-संक्रमण से हो रही मौतें नगण्य हो गईं। इसका ब्रिटिश इतिहास व समाज में अद्‌भुत महत्व था क्योंकि ब्रिटेन अनेक मोर्चों पर युद्धों में उलझा था और उसके सैनिक भी बड़ी संख्या में घायल हो अस्पतालों में भर्ती हो रहे थे। इंग्लैंड से यह प्रचार अन्य यूरोपीय देशों में भी फैला और सभी जगह 'हाथ धोने' का चलन शुरू हुआ।

(14) पैशाचिक उन्माद के साथ दुनिया में हर तरफ की गई लूट से इंग्लैंड सम्पन्न तो हुआ ही, वहाँ स्वास्थ्य, चिकित्सा, स्वच्छता के ज्ञान का भी आयात हुआ और वस्त्रोद्योग, इस्पात, बर्फ बनाने, कागज बनने, छपाई आदि की प्रौद्योगिकी का भी आयात हुआ। लूट और डकैती तथा हत्याएँ, छलघात और नीचताएँ इंग्लैंड के लिए तो वरदान ही वरदान सिद्ध हुई।[36]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

औद्योगिक क्रांति के पूर्व के इंग्लैंड की कुछ झलकियाँ

जैसा ऊपर बताया, सेक्सनों ने जब इंग्लैंड के एक हिस्से पर कब्जा किया, तब वहाँ के डेनों (डेनमार्क के बहुदेवपूजक एवं सूर्यपूजक समूहों) ने और भी डेन्स को बुला भेजा । डेनमार्क से तो वे नहीं आ पाए पर नार्वे से आए। उन्होंने सेक्सनों को हरा दिया। सेक्सन एवं डेन सभी बहुदेववादी थे। क्रिश्चियन पादरी कभी एक, कभी दूसरे को फुसलाते थे जोशुआ मसीह को अपना लो, तो तुम्हारी जीत होगी। कभी-कभी उनका तीर निशाने पर बैठ जाता। ऐसे ही छल-कपट से क्रिश्चियनिटी धीरे-धीरे फैली- 300 वर्षों में। 8वीं से 11वीं शती तक।

भारत की जाति प्रथा से यूरोपीयों विशेषतः अंग्रेजों की चिढ़ का मूल कारण

इसी बीच, वहाँ पचासों समूह आए। युद्ध के कारण हर समूह के सदस्यों ने दूसरों की स्त्रियों और कन्याओं से बलपूर्वक सम्बन्ध बनाए। 11वीं शती ईस्वी तक आते-आते ब्रिटेन में एक भी परिवार ऐसा नहीं था, जो मिश्रित नस्लों का न हो। इसीलिए अंग्रेज तथा अन्य यूरोपीय भारत की गोत्र-प्रथा और जाति-प्रथा से बहुत चिढ़ते हैं क्योंकि उनके भी आदर्श यही थे- जातीय शुद्धता के, पर वे विफल रहे अतः उन्हें उनसे चिढ़ होती है, जहाँ जाति व गोत्र-व्यवस्था चल रही है। ग्यारहवीं शती ईस्वी (1066 ईस्वी) के बाद तो वहाँ डच, जर्मन, रशियन, अफ्रीकी, वेस्टंडीज के लोग आदि पचासों समूह आए। सब एक-दूसरे के प्रति शंकालु रहे। फिर क्रमशः घुल-मिल गए।

राजवंशों और चर्च-पादरियों में होता रहा लगातार टकराव

1066 में फ्रेंक इटालियन मूल के नार्मनों ने इंग्लैंड पर हमला किया था। उन्होंने सेक्सनों को हटाकर बर्बाद कर दिया। ज्यादातर को खेतिहर मजदूर बना डाला। नार्मनों ने व्यवस्थित राजवंशों की नींव डाली। ब्रिटिश समाज में राजवंशों की अपनी परम्परा है और चर्च का अपना तंत्र है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों बारम्बार टकराते रहे हैं। इंग्लैंड के राजा-रानी व लॉर्ड्स मज़बूरी में चर्च का अनुशासन मानते हैं और मौके की ताक में रहते हैं कि कब चर्च को अनुशासित करें। चर्च वहाँ भीड़-तंत्र के सहारे दबाव बनाकर शक्ति अर्जित करता रहा है और फिर राजाओं और लॉर्ड्स से लेन-देन करता रहा है। राजाओं और लॉर्ड्स की मुख्य चिंता सम्पत्ति-विस्तार की रही है और है। चर्च को वे शुरू में एक व्यर्थ की बाधा मानते थे। उनके इस प्रसाद का लाभ उठा चर्च शक्तिशाली होते गए। तब, राजा-रानी तथा लॉर्ड्स को उनसे समझौता करना पड़ा। दोनों की समानान्तर सत्ता साथ-साथ चलती है। लॉर्ड्स ने ही, मौका पाकर 'रेनेसां' को जन्म दिया है। दूसरी ओर चर्च अपने कट्टर अनुयायियों को किसी प्रकार लॉर्ड्स बनवाने के प्रयास करता रहा है। उसके द्वारा दी गई लॉर्ड की उपाधियों को परम्परागत लॉर्ड्स तिरस्कार से देखते हैं। पर ताकत का खेल चलता रहता है।

क्लाइव, हेंस्टिंग्ज आदि किनके लॉर्ड हैं ?

जिन मामूली लोगों को भारत में अज्ञ लोग ईस्ट इंडिया कम्पनी के रौब में आकर लॉर्ड कहते रहे हैं, उन्हें ब्रिटिश समाज ने कभी लॉर्ड नहीं माना। जैसे क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्ज, कार्नवालिस, वेलेजली आदि को केवल भारत में अंग्रेजों के मूढ़ दासानुदास ही लॉर्ड कहते लिखते हैं। ये सभी बेचारे ईस्ट इंडिया कम्पनी के मामूली अफसर या मैनेजर थे। अपने ब्रिटिश मालिकों से, जो स्वयं भी इंग्लैंड के श्रेष्ठ अभिजन नहीं थे, झूठ बोलकर और कम्पनी को ज्यादा लाभ का प्रलोभन देकर ही इन लोगों ने व्यापार की सुरक्षा के लिए सैनिक टुकड़ियाँ रखने की अनुमति पाई थी।[37] ब्रिटिश राज्य से इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं था, सिवाय इसके कि मुनाफे में रानी को कमीशन दो और आयकर, सम्पत्तिकर आदि के रूप में राजकोष में टैक्स जमा करो। ईस्ट इंडिया कम्पनी के इन मैनेजरों का जो वस्तुतः रंगदार-ठेकेदार मात्र थे, भारत के कुछ 'अनपढ़ इतिहासकारों' ने गौरवशाली रूप खड़ा किया है और इनकी करतूतों को ब्रिटिश राज्य की योजनाबद्ध कूटनीति बताया है, जो निपट अज्ञान है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी भी ईसाइयत को धता बता सकते हैं यूरोपीय राजवंश

प्रसंग अभी वास्तविक लॉर्ड्स का है, जो 'रेनेसां' के मूल प्रेरक हैं और जो समय आने पर कभी भी क्रिश्चियनिटी को धता बताकर पुनः सूर्य-पूजा तथा बहुदेववाद को अपना सकते हैं। प्रबुद्ध तो वे सब हैं ही। मध्ययुगीन-आस्थाएँ वे तज ही चुके हैं। भारत सहित विश्व के अध्यात्म-ज्ञान और अध्यात्म-विज्ञान को वे उत्सुकता से पढ़-देख तथा जान समझ रहे हैं। पर स्वयं इन विषयों में पहल की इन राजवंशों की इन दिनों प्रवृत्ति नहीं है। प्रजा में यानी समाज में अनुकूल परिवेश बनाने में वे परोक्ष सहायक बन सकते हैं। प्रजा में गैर-क्रिश्चियन पंथों एवं सनातन धर्म की स्वीकृति हो गई तो ये तत्काल उधर झुक जाएँगे। इसीलिए यूरोपीय चर्च गैर-ईसाई पंथों, हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म से बहुत डरते हैं। सतर्कता के रूप में वे भारत आदि में चर्च का जाल बिछा रहे हैं।

ऐसे जीते थे नार्मन

क्रिश्चियनिटी तो इंग्लैंड में 11वीं शती से 14वीं शती ईस्वी के मध्य फैली। उसके पूर्व के इंग्लैंड का इतिहास भी संक्षेप में स्मरण योग्य है।

जब नार्मनों ने आक्रमण किया तो उसकी कुछ भनक सेक्सनों तथा इंग्लैंड की एक रियासत नार्थम्ब्रिया के समूहों को मिल गई थी। पर नार्थम्ब्रिया के लोग सेक्सनों से चिढ़े थे तो वे मौके का फायदा उठाकर सेक्सनों के विरुद्ध लड़ाई की तैयारी करने लगे। उन दिनों इंग्लैंड के 6 राष्ट्रों में अलग-अलग शासक थे। स्कॉटलैंड में स्काट थे। नार्थम्ब्रिया में मॉर्कर का शासन था। मर्सिया में एडविन का। ईस्ट एंग्लिया में गिर्थ का। वेल्शों का अपना अलग राज्य था ही और वेसेक्स एक अलग राज्य था। वेसेक्स के जागीदार एक फ्रेंच पादरी एडवर्ड ने जिसकी माँ नार्मन थी, इंग्लैंड के राजपद पर अपना दावा पेश किया। वेसेक्स के लोग उसे राजा मानने लगे। परन्तु एडवर्ड की नार्मनों से दोस्ती थी, उसे कई नार्मन पादरियों ने बिशप घोषित कर दिया। कुछ बंदरगाहों पर भी नार्मनवंशी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सैनिक थे। 1066 में नार्मनों के आक्रमण में इन सब नार्मनों ने उनका साथ दिया। वस्तुतः उन दिनां यूरोप के विभिन्न देशों में जो लोग स्वयं को राजा घोषित कर रहे थे, वे सभी किसी न किसी जागीरदार घराने के थे, भारत के क्षत्रियों की तरह और इसीलिए उनके वंश का मान था। चाहे वह नार्मन्डी का रिचर्ड प्रथम हो, चाहे डेनमार्क का हेरॉल्ड ब्लू टूथ, चाहे स्वीडन का व्योलॉफ। इनके परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होते रहते ते।

कुछेक हजार घुड़सवार ही थे हमलावर

इंग्लैंड पर नार्वे और नार्मन्डी दोनों ओर से आक्रमण हुए। अंततः सेक्सन दोनों ओर से पिस गए। पर पाठक जान लें कि ये आक्रमण कुछेक हजार घुड़सवारों के थे, कोई विशाल फौज किसी से पास नहीं थी। इंग्लैंड के भीतर से नार्मनों को इतना सहयोग मिला कि वे छा गए। सभी चर्च पदाधिकारी बिशप आदि सदा विजेता की ओर हो जाते रहे हैं ताकि निजी लाभ मिले। इस प्रकार पादरी, अर्ल, शेरिफ आदि सभी सम्पन्न लोग नार्मनों से मिल गए। जनसाधारण में से जो विरोध उभरा, उसे नार्मनों ने क्रूरता से कुचल दिया। नार्मन राजवंश उस पूरे इलाके का स्वामी हो गया। जिसे अब ब्रिटेन कहा जाता है। वस्तुतः तब तक ब्रिटेन एक राष्ट्र नहीं बना था। अनेक जागीरों और इलाकों का संघ था।[31] चर्च जनसाधारण के व्यवस्थित दमन का एक उपकरण बन गया। नार्मनों के अधीन। चर्च ने कठोर अमानवीय अनुशासन को 'रेलिजस' रूप अवश्य दिया। परन्तु चर्च के कठोर क्रूर नृशंस अनुशासन ने नार्मनों के एक भाग को स्वयं राजा का विरोधी बना दिया।

नार्मन शासकों के नीचतापूर्ण अत्याचार

शासक नार्मनों ने नृशंसता से सभी सेक्सन किसानों को दास बना डाला। उनके ऊपर नार्मन मालिक होते जो मनमाने अत्याचार करते। इन मालिकों ने नियम बनाया कि दासों के घर में जब भी कोई नई बहू आएगी, पहली रात मालिक के घर मालिक के साथ सोएगी। हो सकता है, ऐसा कुछ ही ने किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो, पर पूरे इंग्लैंड में ऐसे किस्से बहुत फैले। जंगलों में जाकर जो वनोपज आदि लोग लाते थे, उससे उन्हें रोक दिया गया। दास का जंगल में प्रवेश वर्जित हो गया। इसे ही इंग्लैंड तथा यूरोप में सामंतवाद (फ्लूडलिज्म) कहा जाता है। सामंतों के समर्थक पादरियों ने ये व्यवस्थाएँ प्रस्तुत कीं कि पादरी सम्पूर्ण समाज के लिए चर्च में प्रेयर करता है, जागीरदार सम्पूर्ण समाज के लिए लड़ते हैं और दास सबके लिए काम करते हैं, अतः यह समानता का सिद्धांत है। यहाँ यह ध्यान रहे कि तब इंग्लैंड की कुल आबादी 2 से 3 लाख के बीच थी। जागीरदारों को राजा से यह सब करने की अनुमति इस शर्त पर मिली कि अपने अधीन इलाके के हिसाब से उन्हें साल में भेंट-नजराना चुकाना होगा। इस बीच एक किताब लिखी गई, जिसके दो खंड थे- (1) ग्रेटर डूम्स यानी महाप्रलय और (2) लिटिल डूम्स यानी लघु प्रलय।[38]

इसी अवधि में इंग्लैंड के द्वितीय नार्मन राजा विलियम रफस ने पूरे देश में घूमने का नियम बनाया। हर जगह वह जागीरदारों के यहाँ ठहरता। जागीरदार अतिथि-सत्कार करते: शानदार भोज, शराब और स्त्रियाँ सुलभ कराते।[33] जब तक राजा ऊब न जाता, उतने दिन वह वहाँ ठहरता। फिर अगले पड़ाव पर पुनः वही सब। परिणाम यह हुआ कि राजा के आने की खबर सुन नोबुल्येन (जागीरदार) छिप जाते। अंततः संदिग्ध परिस्थितियों में राजा की हत्या हो गई [34] उसका बेटा हेनरी प्रथम नित्य नई स्त्री के साथ सोने का शौकीन था।[35] मनमाने अतिचार से वह भी शीघ्र मर गया। कुछ के अनुसार ज्यादा मछलियाँ खाने से वह मर गया।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बारहवीं शती ईस्वी के इस आरंभिक समय तक बहुत पढ़े लिखे अंग्रेज पादरियों और राजाओं को भी 9 के आगे की गिनती नहीं आती थी। शून्य से वे अपरिचित थे।[39]

12वीं शताब्दी के अंत और तेरहवीं शती ई. के प्रारंभ से इस्लाम और ईसाइयत में टकराहटें बढ़ गईं। सलादीन ने 1187 में जेरूसलम पर कब्जा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर लिया। जेरूसलम यहूदियों का शहर था। ईसाइयों ने उस पर यह कहकर कब्जा किया कि जीसस को यहीं सूली पर चढ़ाया गया था तो यह शहर हमारा है। मुहम्मद एक दिन सपने में घोड़े में बैठकर जेरूसलाम के रास्ते जन्नत गए थे और लौटे थे। सो मुसलमानों का दावा था कि अब जेरूसलम पर हमारा हक है। मुसलमानों ने पहले कई मुद्दों पर ईसाइयों को बारम्बार हराया। इस लड़ाई में ईसाइयों ने पहलीबार भारत से अरबों को गया गणित ज्ञान सीखा, त्रिभुजाकार पालदार नावों के बारे में जाना और मेहराबों आदि वास्तु-शास्त्रीय कई चीजें जानी। जिहाद और क्रूसेड जारी रहा। फिर अंग्रेज अभिजन सेना की भर्ती के लिए पैसे देते-देते थक गए।

निजी लाभ की चिंता में निमग्न राजा

इस प्रकार शताब्दियों तक इंग्लैंड में आपसी मारकाट चलती रही। जागीरदारों और इलाकेदारों में झड़पें होती रहीं। इस बीच एडवर्ड प्रथम एक इलाके का राजा बना। उसने ऊन का व्यापार करने की ठानी। दासों से बहुत बड़ा जंगल साफ कराया ताकि वहाँ भेड़ें चराई जा सकें। निर्यात होने वाले ऊन के हर थैले पर टैक्स लिया जाता जो सीधे एडवर्ड प्रथम को जाता। इससे चुंगी अफसरों में भारी भ्रष्टाचार फैला और ऊन की तस्करी होने लगी। इसी एडवर्ड ने स्कॉटलैंड और वेल्श की बीसों रियासतों पर हमला किया व उन पर कब्जा किया। इसी बीच इंग्लैंड में महामारी फैलीं जिसे 'ब्लैक डेथ' कहा गया। भारी संख्या में लोग मरे। मजदूरों की बेहद कमी हो गई। फिर, किसानों के विद्रोह हुए। किसानों को धोखा देकर उनका कत्लेआम किया गया। इसके विवरण पूर्व में आ चुके हैं।

इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्श में डेढ़ सौ साल तक परस्पर भयंकर मारकाट चली। पादरियों ने हर जगह युद्ध की अलग-अलग प्रेरणा दी। विजेता का साथ देकर अपना-अपना उपपंथ फैलाया। तब तक, इस अवधि में इंग्लैंड में इंग्लिश बोली का प्रचलन तो बढ़ा था पर उसका कोई साहित्य नहीं था। लेटिन और फ्रेंच साहित ही चर्च में और जागीरदारों के यहाँ पढ़ा जाता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1485 ईस्वी में इंग्लैंड में किंग हेनरी सप्तम ने स्वयं को राजा घोषित किया। क्रिस्टोफर कोलम्बस उन्हीं के राज्य में था। वह संसार की सैर कर इंडी (भारत) को ढूंढ़ना चाहता था। वह हेनरी सप्तम के पास प्रार्थना करने गया कि कुछ आर्थिक मदद दे दें। हेनरी सप्तम ने पूछा- 'मि. कोलम्बस, क्या वहाँ खूब ऊन मिलेगा?' कोलम्बस ने निवेदन किया, श्रीमान, ऊन तो शायद न मिले, पर इतना सोना-चांदी मिलेगा कि आपका महल दस बार उससे भर दिया जाए।

हेनरी सप्तम बोले- 'पर तुम बता रहे हो कि ऊन तो मिलेगा नहीं' और उन्होंने कोलम्बस को खाली हाथ लौटा दिया।

प्रोटेस्ट का स्वरूप

1517 ईस्वी में यूरोप में 'सुधार' का दौर शुरू हुआ। जर्मन पादरी मार्टिन लूथर ने विट्टनवर्ग कैथेड्रल के सामने चर्च की स्थापित मान्यताओं में 95 गलतियाँ ढूंढ़ निकालीं और उन्हें लिखकर दे दिया। इसे ही चर्च के विरुद्ध 'प्रोटेस्ट' कहा गया। बाद में इसी से 'प्रोटेस्टेंट पंथ' पनपा।

केवल पादरी ही अफसर, नेता, अध्यापक, डॉक्टर, वकील

उन दिनों हर बीस यूरोपीयों में एक व्यक्ति 'क्ल:जी' होता था। यानी चर्च का पादरी। प्रशासक, शिक्षक, डॉक्टर, वकील, कूटनीतिज्ञ- सभी कुछ केवल चर्च- पुरोहित ही तब बन सकते थे। तत्कालीन चर्च सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की तरह सर्वाधिकारी था।[40] इन चर्च-सेवकों पर राजकीय नयम नहीं चलते थे। यदि उन पर किसी अपराध का अभियोग लगाया जाए तो उसकी सुनवाई चर्च का कोई बड़ा पुरोहित (बिशप) ही कर सकता था।[41]

मुख्य ब्रात यह थी कि यदि आप शिक्षक, प्रोफेसर, संगीतज्ञ, डॉक्टर, वकील, अफसर कुछ भी बनना चाहें तो पहले चर्च में भर्ती होइए।[42]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
चर्च में आपको प्रतिज्ञा करनी होती कि आप विवाह नहीं करेंगे।[43] यह प्रतिज्ञा लिखित में करनी पड़ती। फिर चर्च पादरी आपका इंटरव्यू लेते। फिर एक लिखित परीक्षा ली जाती। परिणाम यह हुआ कि लोग चर्च में भर्ती होते, पढ़ते, नौकरी या पसंदीदा व्यवसाय चुनते।[44] पर शादी नहीं कर पाते। सेक्स की अदम्य भूख से धधकते रहते और भांति-भांति की यौन-विकृतियों से ग्रस्त होते।[45] हर पादरी छिपे तौर पर रखैलें रखता और अवैध बच्चे पैदा करता। पादरियों को सर्वाधिक भ्रष्ट और व्यभिचारी माना जाने लगा।[46]

राजा को बेटा चाहिए

इस बीच हेनरी अष्टम की मुख्य चिंता यह बनी रही कि उसका वारिश कैसे पैदा हो। क्योंकि पहली रानी कैथरीन पुत्र नहीं दे पाई। उसने एने बोलिएन नामक महिला विवाह के लिए चुनी। एने एक सामान्य स्त्री थी और उसके एक हाथ में छ अंगुलियाँ थीं। अफवाह फैली कि वह एक डायन है। पोप इस विवाह की अनुमति नहीं दे रहे थे, क्योंकि कैथरीन स्पेन के राजघराने की थी और स्पेन के राजा का पोप पर दबदबा था। क्रूसेड का मुखिया तो स्पेन ही था। बेचैन हेनरी सप्तम ने रोम से नाता तोड़ लिया और स्वयं को इंग्लैंड के चर्च का मुखिया (यानी समानांतर पोप) घोषित कर दिया। यह है रोम से इंग्लैंड के चर्च के सम्बन्ध विच्छेद की कथा। मनपसंद विवाह के लिए किया गया यह विच्छेद।[47] बरहाल एने पुत्र नहीं दे सकी।

शादियाँ ही शादियाँ

राजा हेनरी ने जो चर्चाध्यक्ष भी थे, एने से छुटकारे के लिए वही रास्ता चुना जो अन्य पादरी और पोप चुनते थे। कह दिया- यह दूषित हो गई है, इसकी चर्च में सच्ची आस्था नहीं है। एने को एक नाव में बैठाकर थैम्स नदी में सैर के लिए भेज दिया। जब नाव टॉवर ऑफ लंदन के पास पहुँची तो एने सब समझ गई और चीखने कलपने लगी। उसे फांसी दे दी गई।[48] राजा ने तीसरा विवाह किया। रखैलें तो दर्जनों थीं हीं। तीसरी पत्नी जोन सीमोर से बेटा हुआ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर जच्चा मर गई।[49] तब जर्मनी की राजकुमारी 'एन्न ऑफ क्लेव्स' से चौथा विवाह हुआ। पर वह असुंदर निकली।[50] तब कैथरीन होवार्ड नामक 18वर्षीय मॉडल से पाँचवां विवाह किया।[51] हेनरी लगभग 50 वर्ष के हो चले थे। लंगड़ाने भी लगे थे। कैथरीन होवार्ड ने उन्हें पसंद नहीं किया। वह दरबार के नौजवानों से जुड़ गई। तब उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।[52] तब छठा विवाह कैथरीन पॉर से हुआ। वह रूमानी थी। हेनरी के पहली पत्नी से दो बेटियाँ हुईं थीं। हेनरी ने नाराज होकर दोनों को दरबार से दूर, गरीबी में रहने भेज दिया। पर अंतिम समय में कैथरीन पॉर ने मना लिया। ये दोनों बेटी थीं मेरी और एलिजाबेथ। दोनों हेनरी के मरने पर बारी-बारी से इंग्लैंड की रानी बनीं। कैथरीन पार ने सौतेली बेटियों को राजा के मरने पर प्यार से रखा।[53]

मनमानी शदी के लिए कैथोलिक रोम से रेलिजस नाता तोड़कर स्वयं को इंग्लैंड के चर्च का अध्यक्ष बनने वाले हेनरी अष्टम को बाद के अंग्रेज इतिहासकार ब्रिटिश राष्ट्रीयता का जन्मदाता बताते हैं।[54] कहा गया कि देखो, अब हमारे इंग्लैंड के चर्चों को पोप को धन नहीं भेजना होगा।[55] पहले पोप का नियमित धन भेजा जाता था। आज भी सभी कैथोलिक राष्ट्राध्यक्षों से चर्च-टैक्स पोप के पास भेजा जाता है। काश ! हमारे ब्रिटिशभक्त लेखक व इतिहासकार इंग्लैंड से यही सीख पाते कि राष्ट्र की कमजोरियों की भी कैसी सुन्दर व्यवस्थाएँ की जाती हैं। अधिक अच्छा तो यह है कि हिन्दू धर्माध्यक्षों को राजकोष से नियमित धर्म- कर दिया जाए, तभी तो यूरोप की सच्ची नकल कहलाएगी।

देश की एक तिहाई भूमि का स्वामी था चर्च

11वीं शताब्दी से लगातार इंग्लैंड की कुलभूमि पर चर्च ने कब्जा कर रखा था। लगभग 800 क्रिश्चियन मठ थे जिनमें हर एक में लगभग 20 से 25 पादरी रहते थे। इस प्रकार लगभग बीस हजार पादरी थे। मठ समाजों से सर्वथा अलग-थलग होते थे। पादरी सामान्य लोगों को अछूत मानते थे।[56]

अचानक हेनरी ने तय किया कि इन ईसाई मठों को इतनी जागीरों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की क्या जरूरत है। सो, ये जमीनें छीन ली गईं। इनकी बिक्री हुई। राजा को धन मिला। इंग्लैंड के अभिजन प्रसन्न कि उन्हें खूब जमीनें मिल गईं, उन्होंने ये जमीनें खरीदी थीं। पर, यह प्रक्रिया जटिल थी। पहले राजा के निर्देश पर नए उपदेशक तैयार हुए जो कैथोलिक मठ-पुरोहितों के व्यभिचार और पाप के किस्से जनता को सुनाते। उन्हें आलसी, कामचोर बताते। यह भी कहा जाता कि मठों की जागीरें मुक्त हो जाएँ तो नोबुलमेन पर कोई टैक्स लगाने की जरूरत नहीं रह जाएगी। मठों के खजाने भी छापे मारकर राज्य के कब्जे में ले लिए गए।[57] कहा गया, पूजा स्थलों में इन जेवरात बगैरह की जरूरत क्या है? इस खजाने में सोने-चांदी की मूर्तियाँ भी मिलीं, जड़ाऊ गहने भी। सबको गलाया गया। इसे ही मूर्तिभंजन (आईकॉनाक्लेज्म) कहा गया।[58]

रेलिजस उन्माद का अंतहीन सिलसिला

हेनरी सप्तम सिफलिस से मर गया। हेनरी अष्टम के समय से रेलिजस रिवाल्यूशन (पांथिक उलट-पुलट) शुरू हुई। लोग जानते नहीं थे कि इसका परिणाम क्या होगा, पर एक उन्माद था।[59] यह क्रांति भयंकर खूनी सिद्ध हुई। कैथोलिक हेनरी अष्टम राजा हुआ तो हजारों प्रोटेस्टेंटों की 5 वर्षों तक लगातार हत्याएँ हुईं।[60] फिर 9 वर्षीय प्रोटेस्टेंट एडवर्ड षष्टम राजा बने तो कैथोलिकों की हत्या हुई। फिर कैथोलिक मेरी रानी बनीं तो उन्हें प्रोटेस्टेंटों को जिंदा जलवाने में अद्भुत आनंद आता था। फिर प्रोटेस्टेंट एलिजाबेथ आईं तो कैथोलिकों का उत्पीड़न शुरू हुआ।[61]

इसी समय बड़े भूस्वामियों ने साधारण किसानों के खेत छीनकर बाड़ाबंदी करना शुरू किया। किसान भूखों मरने लगे और मजदूरी के लिए भटकने लगे। इसी 16वीं शती में इंग्लैंड की आबादी भी बढ़ी। बेरोजगारी, महंगाई, कंगाली। सब बढ़े। किसानों ने विरोध किया तो उनकी बड़े पैमाने पर हत्याएँ की गईं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो असहमत हैं, उन्हें मार डालो

इस रेलिजस रेवाल्यूशन में हर ईसाई व्यक्ति भिन्न उपपंथ वाले ईसाई की हत्या करने लगा। जॉन ओ फेरेल ने इस स्थिति का वर्णन इस शीर्षक से किया है-'थॉट फार दि डे: लेट अस किल एवरीवन हू डिसएग्रीज विद अस'

(आज का विचार: जो भी हमसे असहमत हो, ऐसे हर एक व्यक्ति को मार डालें)।[62]

'धरती चपटी है' का हठ जारी

कोलम्बस के बाद मेगेलेन का जहाज सारी धरती धूमकर यूरोप लौटा पर कैथोलिक पादरियों का हठ जारी था कि धरती चपटी है (यह हठ अभी भी जारी है)। बाइबिल की स्थापनाओं पर प्रबुद्ध यूरोपीय अविश्वास करने लगे। इन अविश्वासियों को कैथोलिक दंडित करते। फिर नए-नए पंथ उभरे जो कैथोलिक को ही दंडित करने लगे। इस प्रकार लाखों लोगों की सामूहिक हत्याएँ हुई। प्रबुद्ध लोग क्रिश्चियन फेथ से असहमत होने लगे।

'डिस्कवरी' नए रास्तों की थी, देश तो वे जानते ही थे

जब इंग्लैंड सहित यूरोप की रेलिजस ज्यादतियों, कंगाली, बेकारी, मारकाट से घबराकर अंग्रेज तथा अन्य लोग सुख-सम्पत्ति की तलाश में बाहर भागे, तो जलमार्ग में नई समस्याएँ सामने आईं। सभी व्यापार-मार्गों पर तुर्कों का एकाधिकार था। इसीलिए कोलम्बस और वास्कोडिगामा को इंडीज (भारत) तक पहुँचने के नए मार्ग तलाशने पड़े। वे जो खोज रहे थे, वे नए रास्ते थे, नए देश नहीं। भारत की खोज वस्तुत: किसी यूरोपियन को नहीं थी। भारत के बारे में खूब पता था। वे भारत पहुँचने के वैकल्पिक रास्ते की खोज कर रहे थे। (भारत की खोज का काम उन्होंने अपने बौद्धिक या राजनैतिक उत्तराधिकारी भारतीयों के लिए मानो विरासत में सौंप रखा था।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एलिजाबेथ प्रथम रिश्ते में स्पेन नरेश फिलिप की साली थी। जब वह इंग्लैंड की रानी बनी तो फिलिप ने पूछा कि मुझसे शादी करोगी। एलिजाबेथ ने शिष्टता से टाल दिया। इस पर फिलिप ने कुछ वर्षों बाद 30,000 सैनिक और 130 जहाजों द्वारा इंग्लैंड पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि वे जीत नहीं सके।[63]

लूट की मनोदशा

इसी समय, जहाँ स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैंड, फ्रांस, इंग्लैंड, सभी के साहसी नाविक और लुटेरे दुनिया में समृद्धि की खोज में जोखिम भरी यात्राएँ कर रहे थे, वे परस्पर एक-दूसरे को बुरी तरह लूट रहे थे। रानी एलिजाबेथ ने स्वयं हॉकिन्स और ड्रेक जैसे कई समुद्री डकैतों से सम्पर्क कर उन्हें स्पेन के माल से भरे जहाज लूट लेने कहा। उधर स्पेन भी डकैतों और लुटेरों को उकसाता कि इंग्लैंड के ये प्रोटेस्टेंट तो कैथोलिक पंथ में विश्वास नहीं करते इसलिए इन्हें लूटना-सताना हमारा 'रेलिजस' कर्त्तव्य है। हर तरफ ऐसी ही लूट चल रही थी।[64] इसी लूट की मनोदशा में दुस्साहसी अंग्रेज ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी व प्रबंधक बन कर भारत पहुँचे थे, धन कमाने का काम और 'रेलिजस' काम साथ-साथ करते थे।

अत्याचार, महामारी, बेरोजगारी

रोमन कैथोलिक चर्च के आततायी और दमनपूर्ण व्यवहार से यूरोपीय समाज लम्बे समय से ही त्राहि-त्राहि करता हुआ संतप्त था। चर्च नागरिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में दखलन्दाजी करता था और शंका तथा विरोध को कुचलने की उसके पास जबरदस्त दुनियावी और मजहबी ताकत थी। ईसाई चर्च और उसके अनुयायियों के मजहब की जुनूनी मानसिकता को यदि समझना हो तो देखें बर्ट्रेंड रसेल की निर्भीक स्वीकारोक्ति 'व्हाई आई एम नॉट ए क्रिश्चियन'। इस संदर्भ में 'स्पैनिश इनक्विजिशन' के नाम से कुख्यात उस दौर के बारे में गैर यूरोपीय पाठकों को जानना अति जरूरी है, जिसमें शंकालुओं और भिन्न मतावलम्बियों को चर्च द्वारा भीषण यातना दी गयी थी और लाखों लोगों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
को यूरोप से बाहर भागना पड़ा था, यद्यपि यूरोपीय पाठकों और अंग्रेजी भाषा के विद्वानों को इस बारे में कुछ ज्यादा बताना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वे तो इन तथ्यों से परिचित हैं। खास बात जानने योग्य तो हमारे लिये यह है कि नागरिकों के इस मजहबी दमन और उत्पीड़न में चर्च के साथ यूरोपीय राज्य तन्त्र बराबर का हिस्सेदार था। दशकों नहीं, कई शताब्दियों तक इसने भागीदारी की चर्च के साथ- निर्दोष और विवेकवान स्त्रियों को मरवाने, जलाने और काटने में। जॉन विलियम ड्रेपर अपने दस्तावेजों में लिखते हैं-

'लन्दन के पुराने बीहड़ टेम्स नदी के पुल को सजाया जाता था अपराधियों की खोपड़ियों से ताकि इस भयानक मंजर को देखकर साधारण जनता कानून से डिगाने की ना सोचे। उस काल की सहिष्णुता और दया भावना को तो स्कॉटलैंड की संसद द्वारा मई 1685 में पारित उस विधेयक से समझा जा सकता है, जिसमें कहा गया कि 'जो व्यक्ति वैकल्पिक मजहबी सभाओं में भाषण देगा या सुनेगा, उसकी हत्या कर दी जायेगी और सम्पत्ति जब्त हो जाएगी।'

आगे वे लिखते हैं:- 'कुपोषण, भुखमरी, खाद्यान्न के लिए होने वाले दंगे-फसाद, लड़ाइयाँ, महामारी, मृत्यु के उच्च दर के बावजूद जनसंख्या में वृद्धि आदि'[65] तत्कालीन अंग्रेजों के जीवन के कुछ स्थायी लक्षण थे। उन विद्वानों ने जिन्होंने इस सच्चाइसों को थोड़ी परिष्कृत भाषा में बताने का प्रयास किया है, उनके शब्द हैं:- 'अभावग्रस्तता' 'हट्टे-कट्टे लोगों में फैली बेरोजगारी'। उनके अनुसार, लोगों के तकलीफ दुख के लिए जिम्मेदार जितनी आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियाँ थीं, उतनी ही आम आदमी की चरित्रहीनता (भ्रष्ट चरित्र)। जब उन विद्वानों का वर्णन हम पढ़ते हैं तो लगता है मानो फिल्म ही देख रहे हों।...

'बहरहाल, एक सामाजिक समस्या तो थी ही यूरोपीय देशों में।... बेकार नपुंसक गरीब बंधुआ बनाए जाकर कष्ट भोग रहे थे और हट्टे-कट्टे पूरे देश में खुलेआम लावारिश जानवर की भाँति आवारा विचर रहे थे।'[66]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काली मौत और घेराबन्दी

वस्तुतः काली मौत (प्यूबॉनिक प्लेग) और घेराबन्दी का दौर (एनक्लोजर मूवमेंट) अंग्रेजी जीवन के कुछ ऐसे विशिष्ट आयाम थे, जिसने इंग्लैंड को 'बेकार' और 'आवारा' लोगों का घर बना दिया था। जैसा कि इंग्लैंड के आर्थिक इतिहास की लगभग हर पुस्तक में लिखा मिलता है। काली मौत का जो साया इंग्लैंड पर 14वीं शताब्दी में पड़ा, उसने आधी आबादी को ही साफ कर डाला। उस जर्जर अर्थव्यवस्था के बलबूते के बाहर था प्लेग की इस महामारी को झेलना और जो मरने से बच सके, उन पर इसकी छाप गहरी ही पड़ी।[67] जहाँ एक ओर इसने समाज में व्याप्त बेचैनी और असंतोष को निर्ममता से सतह पर ला पटका, वहीं दूसरी ओर आपाधापी की उस भावना को पैदा कर दिया, जिससे निकला घेराबंदी आन्दोलन, 'जमीन घेरो और कब्जा जमाओ'। वैसे इसकी आवश्यकता तो इसलिए आ पड़ी थी, क्योंकि 'काली मौत' के कारण ज्यादातर मजदूर मर चुके थे। मजदूरों की कमी के कारण जागीरों के लिए खेती से ज्यादा उपयुक्त अब भेड़ पालना ही था। इससे दोनों ही काम सधते थे। खाने के लिए गोश्त और पहनने के लिए ऊन- जिसकी जरूरत उनको भी थी और यूरोप के बाकी ठंडे मुल्कों को भी। भेड़ों को और भेड़ शावकों को जानवरों से बचाने के लिए बाड़े बनाना समय के साथ आवश्यक होने लगा। 16वीं शताब्दी के आते-आते एक अभियान छिड़ गया, जितनी ज्यादा जमीन घेर सको घेर लो।

प्रमुख इतिहासज्ञ ब्रिग्स और जॉर्डन बताते हैं कि 18वीं शताब्दी तक इंग्लैंड की ज्यादातर जमीन 'बेकार' (वेस्टलैंड) थी। जिस पर खेतिहरों को जलावन बटोरने और जानवर चराने का हक हासिल था। जमीन की नई घेराबन्दी का अर्थ था 'उन लोगों को बेदखल करना जिनके परिवार शताब्दियों से खेती करते चले आ रहे थे, जिससे कि भेड़ें पल सकें।'[68] कहा गया कि '16वीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था में भेड़ें जरूर थीं और... यह कि आदमी की बनिस्बत भेड़ें कीमती थीं[69]।' इस प्रकार घेराबन्दी के सिलसिले से 'गांव उजड़ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगे और भूमिहीन गरीबों की तादाद बढ़ने लगी'। इससे एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आया जो स्थायी तौर पर बेरोजगार हो गया, जिसे अपने ही देश में सुख-चैन से आजीविका पाने की समानता या तो खत्म हो गई या अत्यन्त क्षीण'।[70]

अनेक अन्य कारण मिल गए, जिनसे 18वीं शताब्दी की सामाजिक आर्थिक स्थितियाँ दु:सह हो गई। मसलन खाना, कपड़ा और मकान- ये भाड़ा मजदूरी की तुलना में लगातार महंगे होते चले गये। इस तरह जो पहले ही गरीब थे, उनके लिए मुसीबतें और भी बढ़ गईं। 'इंग्लैंड में आमदनी निर्धनता और बहुत निर्धनता के बीच में थी'।[71] हेनरी अष्टम और एडवर्ड षष्टम् के शासनकाल में सिक्कों के अवमूल्यन से स्थिति और भी विकट हो गयी।

पुअर लॉज यानी गरीबो, तुम शापित हो

इस सामाजिक आर्थिक कष्ट का एक कटु आयाम था- निर्धन कानून (पुअर लॉज) और उनकी आंतरिक संरचना। कोशिश तो यह प्रतीत कराने की थी कि मानो कानून का उद्‌देश्य लावारिस, आवारा, कंगालों को उनकी दुर्दशा से मुक्ति दिलाना हो, किन्तु इस कानून के प्रावधानों पर एक सरसरी नजर ही उनकी असलियत को उजागर कर देती है, इन नियमों के तहत भिखमंगों को सैकड़ों की संख्या में एक साथ खड़े कर दिया जाता था और बीहड़ यातना दी जाती, दण्ड दिया जाता था।[72]

'काश्तकारों और दस्तकारों को मजबूर किया जाता था वही काम करने के लिए, जो कहा जाए। निर्धारित से ज्यादा मजदूरी देना निषिद्ध था।'[73]

हेनरी अष्टम् के शासन में जो कठोर कानून बनाये गये, उनके तहत तो 'तन्दुरुस्त आवारों और हट्टे-कट्टे भिखमंगों को नंगा कर गाड़ी के पीछे बाँध दिया जाता था और कोड़े लगाते हुए सारी बस्ती में उन्हें तब तक घुमाया जाता था जब तक उनका बदन खून से लथपथ न हो जाये।'[74]

कंगाली की वृद्धि के संदर्भ में प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी लिखते हैं- 'आवारा कंगालों से सम्बन्धित तत्कालीन कानून खून में लिखा गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
है- उसका बस एक ही उपाय बताया गया था निर्मम यातना द्वारा उन्हें दण्डित किया जाये- चाबुकों से और गरम सलाखों से। दूसरी या तीसरी बार गलती करने पर तो हत्या कर दी जाये। यद्यपि ये दमन पूरी तरह अप्रभावी ही सिद्ध हुए तदपि इन्हें त्यागा नहीं गया तब तक, जब तक एलिजाबेथ के 43वें कानून ने रोग के उपचार में इस कानून की असफलता नहीं स्वीकार की।'[75]

शरणस्थलों की तलाश को ही डिस्कवरी कहा गया

इन भीषण-दारुण हृदयविदारक परिस्थितियों से मजबूर होकर कानून से दंडित जन आतंक से कहीं दूर भागने को छटपटाने लगे। हजारों की संख्या में इन्होंने समुद्र की शरण ली। समुद्र का जोखिम भरा जीवन और डाकूगिरी इन्हें सहज प्रतीत हुआ, घर के बाधित प्रतिबंधित प्रताड़ित जीवन की तुलना में। इतिहासकार ब्रिग्स और जॉर्डन लिखते हैं-'समुद्री डाका और लूट-पाट बहुत फायदेमंद धंधे थे। वे नाविक, जिन्हें हताशा ने उद्धत और दुर्दान्त बना दिया था, जिनके मन में राज्य शक्ति या भलमनसाहस के प्रति गहरी अवमानना थी, उन्होंने समुद्री डाकाजनी को अपना व्यवसाय बना लिया। अमेरिका के सुप्रसिद्ध विद्वान ब्रुक्स एडम्स ने इन समुद्री दुर्दान्त दस्युयों के बारे में विस्तार से लिखा है- वे बताते हैं कि किस प्रकार इन्होंने दक्षिणी अमेरिका के देशों को 'वाइकिंग के समान अदम्य ऊर्जा और निर्दयता से उजाड़ डाला। उनकी लगभग एक पीढ़ी सोने-चाँदी और हीरे जवाहरात में लोटती रही।'[76]

पलक झपकते ही पूरा क्षेत्र उन डाकुओं की बाड़ से भर गया जो जहाजों में तो बिना तनख्वाह के काम करते, लेकिन अपनी जेबें भरने को चाँदी से भरे जहाज ये अंग्रेज डाक लूट लेते। फिर खाली जहाज समुद्र में ही जल समाधि दे देते। इन लोगों में फ्रांसिस ड्रेक था अंग्रेज दस्युराज और जॉन हाकिंस (जो बाद में भारत आया था जहाँगीर के दरबार में) था 'गुलामों का व्यापारी'। यह बात और है कि सामान्यत: शिक्षा जगत की विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों में ये महानुभाव हीरो के रूप में स्थापित हैं। कृतज्ञ राष्ट्र ब्रिटेन ने तो इन्हें 'सर' का खिताब दिया ही था। ये दोनों ड्रेक और हॉकिन्स न केवल रिश्तेदार थे, आदतें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
भी दोनों की एक थी। एडम्स बताते हैं कि दोनों ही खूंखार शिकारी थे।[77]

डाकू सर, लुटेरे सर

एम.डब्ल्यू फिल्न अपनी पुस्तक 'इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ ब्रिटेन' में भी इसी तथ्य को उद्घाटित करते हैं- 'अनेकानेक अन्य समुद्री यात्राएँ जिन्होंने एलिजाबेथियन नाविकों ड्रेक, हाकिन्स जैसों को समुद्री यात्रा के क्षेत्र में ख्याति दिलाई, वस्तुतः उनका उद्देश्य था लूटपाट। सन् 1540 ईस्वी के बाद से ही दक्षिणी अमेरिका की खदानों से स्पेन वाले अपार चाँदी मंगवा रहे थे और यह बेशकीमती धातु युद्ध पोतों के गहन संरक्षण में जहाजों में लादकर आ रही थी, अटलांटिक महासागर को पार करके। चाँदी से लदे एक भी जहाज को झपट लेने का मतलब था डकैत नाविकों के हाथ अकूत खजाने का लगना। 1588 ईस्वी. के बाद अंग्रेज-स्पेनिश सम्बन्ध बिगड़ गये और दोनों में युद्ध छिड़ गया। तब लूट-मार की इन गैरकानूनी घटनाओं को 'युद्ध में वैध कृत्य' का कानूनी जामा पहना दिया गया। इन कृत्यों से सर फ्रांसिस ड्रेक और सर बाल्टर रैले का नाम जन मानस में जुटा हुआ है।[78] डाकुओं का नाम 'सर' की उपाधि से विभूषित करने वाला समाज और राज्य कैसा होगा- हमारे लिए अनुमान का विषय है।

गुलामों की बिक्री ही व्यापार

समय के साथ इन जल-दस्युओं ने 'व्यापार' में भी हाथ डाला। इनका 'व्यापार' भी 'विशिष्ट' था। समुद्र में मार-काट और खून-खराबे के जीवन की तुलना में गुलामों की तिजारत इन्हें सहज लगी। यह जानना स्तब्धकारी होगा कि 'हाकिन्स में तीक्ष्ण व्यापारिक बुद्धि थी और तिजारत में गहरी रुचि।.....' युवाकाल में ही जॉन ने समझ लिया था कि... 'नीग्रो बहुत अच्छा माल था।'...जबकि उस समय वेस्टइंडीज में एक नीग्रो की कीमत करीब 600 पौण्ड जान पड़ती है, तब कोई 1000 नीग्रो की एक खेप से 60,000 से 80,000 पौण्ड की कमाई तो पक्की सी है... कोई आश्चर्य नहीं है कि गुलामों का यह व्यापार खूब फला-फूला और अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड अफ्रीका से कम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से कम 1,00,000 काले लोगों को तो गुलाम बनाकर बिक्री के लिए अवश्य ले गया। बाहर ये और ऊँचे दामों में बिकते थे। चाँदी या सोने में कीमत की अदायगी होती थी।

गुलामों के व्यापारी इंग्लैंड में चाँदी लाते थे- चाँदी की इस बाढ़ से लन्दन में पूर्व और पश्चिम के बीच विनिमय बढ़ने लगा। सन् 1545 ई. के पहले इंग्लैंड में चाँदी की कमी थी, जिससे भारतीय व्यापारियों का माल थोक में खरीदने की हैसियत में अंग्रेज व्यापारी नहीं थे। लूट के माल से प्राप्त चाँदी से वे भारत का माल खरीदकर यूरोप में बेचने और भारी मुनाफा कमाने लगे। जब लुटेरे एक पीढ़ी तक खजानों से लदे जहाज इस प्रकार लूट कर लाने लगे, तब उन्हें अपने पास इतना पर्याप्त धन संचित दिखा कि ये भारत का सामान खरीदकर यूरोप में बिक्री करने का स्वप्न देख सकें और इस प्रकार समुद्री लूट ने नींव रखी एशिया में ब्रिटिश घुसपैठ की, जिसे वे साम्राज्य कहते हैं।[79]

पाठकों का ध्यान हम भारतीय विश्वविद्यालयों में इस विषय पर पढ़ाई जाने वाली अधिकांश उन पुस्तकों की ओर ले जाना चाहते हैं जो हमारे उच्च स्तरीय शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रम की अभिन्न अंग हैं। इन पुस्तकों के अनुसार यूरोपीय व्यापार का यह कालखण्ड विराट विस्तार का युग है। वह युग जिसकी परिणति हुई व्यापारिक क्रान्ति और अन्ततः औद्योगिक क्रान्ति में। किन्तु इस बात का विश्लेषण कतई नहीं किया जाता कि विस्तार/फैलाव का स्वरूप क्या था? और तत्कालीन विश्व व्यापार के अनुपात में इसकी औकात क्या थी? विश्लेषण बस इस बात का सीमित होता है कि इसका अंग्रेजी राज्य पर क्या प्रभाव था, और इस तरह जो छवि बनती है वह अधूरी तो होती है, भ्रम भी पैदा कराती है (और इस तरह बनी अधूरी छवि भ्रम ही पैदा करती है) यह भी विद्वानों में एक आम चलन सा है कि विकासशील देशों को धिक्कारा जाये ऐसे 'अद्‌भुत अभूतपूर्व विदेशी व्यापारिक फैलाव' को न हासिल कर पाने के लिए। यह कहना तो शायद व्यर्थ ही होगा कि कोई भी सभ्य राष्ट्र उन तौर-तरीकों को अपने अर्थ तंत्र के उत्प्रेरक के रूप में नहीं अपनाएगा, जिसकी चर्चा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ऊपर की गयी है। विकासशील देशों को विचारने वाले विद्वानों में इतना नैतिक बल भी नहीं है कि वे भारतीयों एवं अन्यों को ललकार कर कहें कि तुम भी लूटते-डकैती-छिनैती करते, यही उचित था, चलो अब वह सब करो। हम तुम्हारा तत्कार करेंगे लूट के लिए।

सम्मानित लुटेरे महाशय

देखें कि इन जल-दस्युओं का अंग्रेजी समाज और अंग्रेजी साम्राज्ञी ने कैसी आवभगत की। सी.आर.एन. राउथ बताते हैं-

'1580 के अक्टूबर माह में ड्रेक प्लीमाउथ पहुँचा... अपने साथ जो सम्पदा वह लाया। वह इस यात्रा पर लगे कुल पूंजी-निवेश का 1400 गुना था। एलिजाबेथ बहुत प्रसन्न आनन्दित हुईं... वे 'गोल्डेन हिन्द' को लन्दन ले आई जहाँ जनता उमड़ पड़ी उस जहाज को देखने। 1581 में वे स्वयं, फ्रांसीसी राजदूत के साथ जहाज पर आई और उनके आदेश पर ड्रेक को नाइट की उपाधि से विभूषित किया गया।[80] जिस समाज में वहाँ की रानी और जनता लुटेरों का आतिथ्य और सम्मान वीर नायकों की भाँति करें और जिनकी आँखें लूट के धन से ही चुंधिया जाएँ, वह समाज कैसा होगा?

17वीं शताब्दी तक यूरोप एक जड़ समाज था

यूरोप की सामान्य स्थिति का विवेचन करते हुए फॉकनर ने लिखा है, कि पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में आर्थिक दृष्टि से यूरोप 'आधुनिक प्रतिमानों से एक जड़ सभ्यता' थी जिसका सारा इलाका आदमियों की भीड़ से भरा था और आजीविका के साधनों पर जनसंख्या का भारी दबाव था।[81] 16वीं-17वीं शताब्दी के इंग्लैंड का वर्णन करते हुए सर जॉन विलियम ड्रेपर लिखते हैं:-

किसानों के घर घास-फूस के थे जिस पर मिट्टी का लेप होता था। बिना चूल्हों-चिमनियों वाले- अक्सर ये चूल्हे सड़ी मिट्टी के बने होते थे... सड़कों पर उचक्के थे, नदियों में जल-दस्यु और कपड़े तथा चारपाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
खटमल-पिस्सू से भरे पड़े थे। खाना आमतौर पर मटर, मोठ, फर्न की जड़ें, यहाँ तक कि पेड़ों की छाल का था। (रोटी-चावल का नाम भी वे नहीं जानते थे) अकाल से बचने के लिए वाणिज्य था ही नहीं। आदमी पूरी तरह मौसम के मिजाज पर आश्रित था। आबादी पहले ही कम थी और इस पर भी महामारी और कंगाली की मार थी। शहरी लोगों की हालत गंवारों से कोई बेहतर नहीं थी।... अगर कोई खाते-पीते घर का था तो उसका पहनावा चमड़े का होता था और अगर गरीब तो बदन पर घास-फूस लपेटे होता था, जिससे ठंड तो दूर हो। (कपास था नहीं सो सूती कपड़े नहीं थे।) गरीब के लिए कोई इलाज नहीं था... साफ-सफाई की कोई व्यवस्था न थी... विदेश जाने पर मालामाल होने की अफवाह से लोगों का चित्त बेचैन रहता था... एक राष्ट्र जो इतना निरक्षर कि संसद में उसके गणमान्य न पढ़ सकते, न लिख सकते... चर्च द्वारा जघन्यतम अपराध के बदले खासा धन जमा हो जाता था- छोटे-मोटे पाप के लिए छः शिलिंग और आठ पेंस काफी था।... सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक लन्दन गन्दा था। बैठने का ढंग बिना किसी साफ-सफाई और इंतजाम के... जंगली जानवर इधर-उधर घूमा करते....। बरसाती मौसम में सड़कों पर चलना दुष्कर होता (मल फैला होता) सामाजिक अनुशासन कोसों दूर था उससे जिसे नैतिक कहा जा सके... पति पत्नी को कोड़े लगाता था...। अपराधी को टिकटी से बाँध देते थे कि ईंटें-पत्थर उस पर बरसें।...। औरतों के पांव बाँधकर बाजार में छोड़ देते थे...। लन्दन में रात के बाद अपने जोखिम पर ही निकला जा सकता था... (जे चाहे हो)। चाहे राजनैतिक हो या मजहबी, कानूनी सजा बेहद बर्बरता से दी जाती थी... महिलाएँ, यहाँ तक कि इंगलैंड की रानी भी स्त्रियोचित और साधारण मानवता तथा दया से इतनी रहित थीं कि वे भी इन नारकीय अत्याचारों में सम्मिलित रहती।'

कंगालों को देश से बाहर भगा दो

नोरा ब्रिटानिका के लेखक लिखते हुए राय देते हैं कि कंगालों को देश के बाहर भगा दिया जाना चाहिए तो इससे ब्रिटेन की हालत पर भी पर्याप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रोशनी पड़ती है:- "हमारे देश में काहिलों की बाढ़ है। दुर्दशा दूर करने के लिए इनके पास कोई काम धंधा नहीं है। इसलिए बदमाशी और लम्पटता करते रहते हैं। यदि इनके रोजगार के लिए कोई उपाय ढूंढ़ा नहीं गया तो जल्दी ही और ज्यादा जेलों का इन्तजाम करना पड़ेगा। मेरा सुझाव है जो नया नहीं है, परन्तु सबसे ज्यादा फायदेमंद जरूर है। हमारी सरकार के लिए इस भीड़ से पिंड छुड़ाने का रास्ता है इन्हें बाहर भेज देना। ये आवारा लोग देश में महामारी और कंगाली के कारण बने हुए हैं और एक दूसरे को नित भ्रष्ट और पाप कर्म में प्रेरित कर रहे हैं-यह विपत्ति तो प्लेग से भी भयंकर है।[82] आगे वे और कहते हैं कि इंग्लैंड 'ठगों, बदमाशों, आवारा और हट्टे-कट्टे भिखमंगों से बुरी तरह आक्रांत है।'[83]

शब्दों के अर्थ समझिए

ऐसा था वहाँ का समाज और ऐसे थे उस वक्त के हालात। अब यदि समुद्री डाकाजनी को संज्ञा दी गयी 'साहसी यात्राएँ', जल दस्युओं को कहा गया 'वीर बहादुर', गुलामों की तिजारत में लगे लोग हो गये 'व्यापारी' और फलस्वरूप प्राप्त धन दौलत हो गया 'विदेशी व्यापार में अभूतपूर्व विस्तार' तो आश्चर्य भी क्या। भारत में कई लोग उन शब्दों के अर्थ जाने-समझे बिना उन्हें प्रशंसापरक दृष्टि से दुहराते हैं। उन पर केवल तरस ही खाई जा सकती है।

लूटो, घूस दो, तब देश आ सकते हो

उपर्युक्त तथ्यों को जानने के बाद अनुमान करना अब सहज होगा कि इस समुद्री डाकुओं और इंग्लिश राजाओं के आपसी सम्बन्ध क्या थे। जिस सरकार ने इन कंगाल हताश लोगों को अपराधी करार देकर देश से खदेड़ दिया था, वही इन्हें ढूंढ़ने लगी इनकी लूट में हिस्सा लेने के लिए। एक ओर तो सरकार ने इन्हें घर लौटने पर सम्मानमय जीवन जीने का आश्वासन दिया बशर्ते ये उतना धन बटोर लाये, जिससे अधिकारियों को ढंग से घूस मिल जाये और दूसरी तरफ समुद्र में खूनी डाकाजनी की होड़ मची।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लूट में रानी का शेयर, डकैत को शाही सेनापति का पद

रूथ बताती हैं कि जब हाकिन्स दुबारा 1564 ईस्वी में गुलामों की तिजारत के लिए निकला तब इंग्लैंड की रानी ने स्वयं सबसे बड़े जहाज 'जीसस ऑफ ल्यूबेक' को चार्टर किया। इस यात्रा पर मिला मुनाफा निवेश का 60 प्रतिशत था। रानी इतनी संतुष्ट हुईं कि उसने हाकिन्स को राजकीय सम्मान दिया। 1567 में हाकिन्स तीसरी मुहिम पर निकला तो रानी उस जोखिम में शेयर होल्डर थी और उसने दो जहाज दिये और इसे इन लोगों ने ज्वाइंट स्टाक कम्पनी कहा। (ब्रिग्स एंड जोर्डन बताते हैं कि एलिजाबेथ प्रथम और अठारहवीं शताब्दी के शुरू में साउथ सी बबल के छूटने के काल तक ज्वाइंट स्टाक सिद्धांत खूब फला-फूला। यह शायद ड्रेक और टेलिग के मुहिम के साथ शुरू हुआ और स्टुअर्ट राजाओं के शासन काल में तेजी से फैला) इस यात्रा में हाकिन्स ने स्पेनी बेड़े के सोने-चाँदी की सिल्लियों को लूट लिया और रानी के जहाज पर लाद कर लन्दन ले आया। इसके एवज में आह्लादित रोमांचित रानी ने राष्ट्र की सुरक्षा का दायित्व ही हाकिन्स को सौंप दिया। और इस प्रकार एक सफल खूंखार समुद्री डाकू बन गया रायल नवल कमांडर।[84]

यह जानना भी स्तब्धकारी होगा कि प्रधानमंत्री क्रामवेल (जो इंग्लैंड के त्राणकर्ता के रूप में जाना जाता है) ने ब्लेक को सोने-चाँदी से लदे जहाजों को, जो स्पेन से लौट रहे थे, पकड़ लाने के लिए भेजा। इस मुहिम में दो एक असफलताओं के बाद अन्तत: ब्लेक ने 450,000 पौण्ड का माल अपने कब्जे में कर ही लिया। यह मात्रा उससे कहीं अधिक थी जो 18वीं शताब्दी के शुरू में पूरब को निर्यात की जाती थी। अगर यह त्राणकर्ता जीवित रहता तो कोई सन्देह ही नहीं कि ऐसे ही कुछ उपायों से ब्रिटेन के संसाधन और भी बढ़ा देता।'[85]

डाकुओं से धन मांगकर गद्दी चलाते राजा

इतिहास में क्रामवेल का नाम विख्यात है स्पेनिश अमेरिका पर छापा मारकर सोने की खानों को लूटने की याजना बनाने के लिए। यही बात

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सच है जेम्स प्रथम, चार्ल्स प्रथम आदि राजाओं के बारे में जिन्होंने अपनी राजगद्दी तक चलाने के लिए समुद्री डाकुओं से धन की मांग की। क्योंकि संसद उन्हें और धन देने को तैयार नहीं था। उन स्टुअर्ट राजाओं को 'हरदम धन की जरूरत रहती थी और करों के प्रश्न पर इनका अपनी संसदां से निरन्तर टंटा होता था।' [86]

अब यदि इन राजाओं ने धन के बदले समुद्री डाकुओं को 'एकाधिकार चार्टर्स' से उपकृत किया, तो स्वाभाविक ही था। ब्रिग्स एण्ड जोर्डन स्पष्ट लिखते हैं-

'स्टुअर्ट राजाओं और संसद के बीच उनकी फिजूलखर्ची और उनकी निरंकुशता उतनी नहीं थी जितनी कि बदलती परस्थितियों में पुराने सामन्ती राजस्व से राज काज चलाना अब असंभव हो गया था।' [87]

जहाँ एक ओर हैरिस लिखते हैं कि 'सौदागर और नाविक छापामार दस्तों को भांति थे जिन्हें विदेश भेजा जाता था ज्यादा से ज्यादा माल लूटने के लिए' वहीं जार्डन इस तथ्य की पुष्ट करते हैं-

'एलिजाबेथ के शासनकाल और जॉर्ज तृतीय के राज्यारोहण की मध्यावधि में लूट और डकैती के इन उपायों से करोड़ों पौण्ड धन देश में आया।' [88]

लुटेरों-डकैतों की कम्पनी

'पारस्परिक हित की इसी भावना ने बाद में जन्म दिया उसे जिसे हम ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से जानते हैं। इसे मिला शाही फरमान इंडीज के साथ एकछत्र व्यापार का।' इस कम्पनी की स्थापना की व्यापारी लुटेरों ने, जो विदेशी व्यापार और लूट की संभावनाओं से पागल हो उठे थे, जो दुर्दान्त बेईमानों का गिरोह था, जो इसके लिए कोई भी संगठन बनाने को तैयार थे और संरक्षक बनी इंग्लैंड की रानी, हिस्सेदारी तो उनकी तय थी ही। रानी के संरक्षण और भागीदारी के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को कानूनी दर्जा मिल गया अर्थात्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जोखिम में पड़ जाने या अन्य यूरोपीय कम्पनियों से मुकाबले की स्थिति में सरकार द्वारा हर संभव सहायता की पक्की गारंटी।[89]

सभ्य लोग हमारी कम्पनी में न आएं

इस अवसर पर रानी ने एक फरमान जारी किया, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि यह जोखिम उठाने वाले लोगों का एक संगठन है जो बिना किसी नीति की परवाह किये कमाएंगे, जो मुनाफे से, चाहे लूट से। कम्पनी के निवेशकों ने भी रानी को लिखे आवेदन पत्र में अपनी तरफ से स्पष्ट कर दिया कि उन्हें अपने पसंद के लोगों को भर्ती करने की खुली छूट होनी चाहिए और 'जिम्मेदारी के ओहदे पर शरीफ आदमी को न नियुक्त किया जाय।'[90] स्पष्ट घोषणा है कि सभ्य लोगों की हमारी कम्पनी में जगह नहीं होगी।

गरीब सरकार

एल.सी.ए. नावेल्स ने लिखा है– 'ब्रिटिश सरकार तो इतनी निर्धन थी कि इन कम्पनियों को आर्थिक अनुदान दे नहीं पाती।... अत: सहायता देना तो दूर, अंग्रेज सरकार उल्टे उनसे ही उधार लेने की इच्छा रखती थी, ऐसा उसने कई बार किया भी।' (दी इकनोमिक डेवलपमेंट ऑफ ब्रिटिश ओवरसीज एम्पायर, पृ. 69)

राजाओं के डकैतों से इस घृषित गठबंधन को कई लेखक बड़े तर्कपूर्ण ढंग से उचित ठहराते हैं। उदाहरणार्थ यह वर्णन: ''16वीं शताब्दी में अंग्रेज व्यापारियों को दूर देशों में तिजारत की इच्छा जाग पड़ी। काम जोखिम भरा था और तिजारत शुरू करना महंगा। दूरदराज के बजारों के लिए चाहिए थे बड़े मुहिम–बड़े जहाज, लंबी यात्राएँ, दूर देशों में अपने आदमियों की तनख्वाहें और उससे भी ज्यादा तो घूस देने के लिए मोटी रकमें, जिससे व्यापार करने का दम मिल सके। अकेले अंग्रेज व्यापारी बलबूते के बाहर था यह तब। तब अस्तित्व में आया एक नये ढंग का व्यापारिक संगठन जिसमें बहुत से लोग मिलकर धन लगाये। ये ज्वाइंट स्वर कम्पनियाँ सामानयत: शाही फरमान से से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनती थी और चूंकि जोखिम ज्यादा था अतः इन्हें एकाधिकारी हक दे दिया जाता था।'' (हू इज हू इन हिस्ट्री खंड 2.)

ये सभी विवरण स्तब्धकारी है। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदमियों, नीतियों और कारगुजारियों को समझने का सूत्र इनमें निहित है। इन विवरणों से तथाकथित राज्य संचालित कम्पनियों की असलियत और मंसूबों का खुला परिचय या पर्दाफाश भी होता है। इस प्रसंग में उल्लेखनीय होगा कि 1608 में भारत आने-वाले पहले अंग्रेजी जहाज का नाम 'हेक्टर' था जिसका अर्थ होता है- धौंस पट्टी करके रौब जमाने वाला। 'हेक्टर' का कप्तान था अपना पूर्व परिचित हाकिन्स, जो अपने साथ अंग्रेज राजा जेम्स प्रथम का अनुरोध पत्र लाया था कि उन्हें हिन्द में व्यापार करने की अनुमति दी जाय। इस प्रकार हिंद में ईस्ट इंडिया कम्पनी की नींव पड़ी थी।

अब यह स्पष्ट हो ही गया होगा कि 15वीं-16वीं शताब्दी में ये शब्द- व्यापार, डाकाजनी, नौचालन, साहस भरा जोखिम आदि पर्यायवाची बन चुके थे। वस्तुत: इनमें न तो कोई श्रेष्ठता थी, न कोई जिज्ञासा, न महासागरों में विचरने की अदम्य लालसा और न ही शुभ संकल्पों के लिए जी जान लगा देने वाला जीवट, जैसा कि आमतौर पर हमारे शिक्षाविद् नौजवानों और बच्चों को सिखाते रहते हैं।

दयनीय भूगोल ज्ञान

इनके भूगोल ज्ञान पर भी एक दृष्टि डालना उचित होगा। (हंटर डब्ल्यू.डब्ल्यू की पुस्तक हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इंडिया के पृष्ठ 65-71 का अध्ययन मजेदार होगा इस सम्बन्ध में। इनके भूगोल ज्ञान और गैर मजहबी दुनियावी शिक्षा के बारे में सभी धारणाएँ तब खंडित होने लगती हैं जब पता चलता है कि मध्य युग तक ईसाई यूरोपवासियों का मानना था कि धरती चपटी है और यदि नाव चलाते हुए वे किनारे तक पहुँच गये तो नीचे लुढ़क जाने का खतरा है।[91] जब गैलिलियों ने घोषित किया कि धरती चपटी नहीं गोल है तब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मजहबी ज्ञान के खिलाफ काम करने के आरोप में उसकी हत्या कर दी गयी। 15वीं शताब्दी के अंत में जाकर यूरोप के कतिपय बुद्धिमानों को भरोसा हुआ कि धरती चपटी नहीं गोल है। किन्तु जब कोलम्बस ने धरती गोल है इस धारणा के आधार पर स्कीम बनाई कि पश्चिम दिशा में लगातार चलकर अन्ततः 'इंडीज' पहुँचा जा सकता है, तब उसका बहुत उपहास और अवमानना हुई। उसने आर्थिक सहायता के लिए राजाओं से जब अनुरोध किया तो उसे मूर्ख पागल ही समझा गया और जब कोलम्बस महोदय इसाबेला की मदद से 'इंडीज' के लिए अटलांटिक सागर में निकल ही पड़े तो जा टकराये उसके पश्चिमी तट पर स्थित द्वीप से, वहाँ से निकले तो भी मरते दम तक यही मानते रहे कि इंडीज उन्हें मिल गया और उस विराट महाद्वीप के लोगों को आज तक उनका दिया विचित्र नाम 'रेड इंडियन' ढोना पड़ रहा है। क्या विडम्बना है अब इन्हें 'लाल भारतीय' न कहकर 'अमेरिकन' कहा जाता है। अमेरिका के अचानक यों ही खोज लिये जाने पर 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' की यह टिप्पणी पठनीय है-

'यद्यपि यह सर्वाधिक महत्वपर्ण विशिष्ट उपलब्धि थी, खोज अभियानों की, तदपि स्पेन निवासियों को बड़ी निराशा थी कि कोलम्बस इंडीज नहीं पहुंचा।'

भारत कहाँ है, कैसा है- यह तो पता था ही नहीं स्पेन पुर्तगाल, इंग्लैंड, हॉलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड, पोलैंड, स्वीडेन, डेनमार्क और भी शेष यूरोपीय देशों को। उसके पास तो थे बस किस्से कहानियाँ, चटपटी, अजीबो-गरीब, चर्चे, अनुमान, हवाई उड़ानें और बेतरतीब सपने।

इन यूरोपीय समुद्रज्ञानियों को तब यह भी नहीं पता था कि जिब्राल्टर के सवा तीन हजार मील पश्चिम में इतने विराट दो महाद्वीप स्थित हैं। उन महाद्वीपों को पार करने पर मिलेगा धरती के आधे गोलार्द्ध में पसरा प्रशान्त महासागर और यह सब पारकर हिन्द महासागर में प्रवेश करने पर द्वीप पार करके उनके स्वप्न लोक का नम्बर आएगा- 'इंडीज' का। ये तो अमेरिका में भी जहाज से घुसकर 'इंडीज' पहुँच जाना चाहते थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी हताशा और साथ-साथ इंडीज तक पहुंचने के निश्चय ने उन्हें अनजान जगहों पर ला पटका। खोज में अचानक मिले स्थानों को उन्होंने विभिन्न नाम दिये जो आज भी प्रचलित हैं। मैगलन स्ट्रेट्स, हडसन बे आदि। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (पेज 2317) और रीडर्स डाइजेस्ट के ग्रेट एटलस 1) (पे. 134) में इसके सजीव विवरण हैं।

'यह नया ढूंढ़ा गया महाद्वीप पश्चिम में प्रशान्त तक पहुंचने के मार्ग में अवरोध बन स्थित है।'इंडीज' तक पहुँचने के लिए किसी गलियारे की तलाश वह प्रभावी प्रेरक था जिसने अमेरिका के पूर्वी तट का सवेक्षण करा दिया और पूरे महाद्वीप के आंतरिक हिस्से को जान लिया गया।'

अंत में वास्को-डि-गामा को वह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वह 1498 में भारत के मलाबार तट पर जा पहुँचा। इस पुर्तगाली नाविक को पूर्व अफ्रीका की यात्रा के दौरान भाग्य से कुछ भारतीय नाविक मिल गये थे जो हिन्द महासागर के व्यापारिक जल मार्गों से सुपरिचित थे,'[94] गामा के बाद अनेक पुर्तगाली नाविक भारत आए, वहाँ से चीन और पूर्व एशिया के अनेक देशों और द्वीपों तक पहुंचे, लेकिन अंग्रेज़ इतने भाग्यशाली नहीं सिद्ध हुए। उन्हें अगले 100 सालों तक काले महासागरों में असफल ही भटकना पड़ा 'इंडीज' का मार्ग तलाशने।'

यही नहीं एम.डब्ल्यू फिलन ने भी इस समुद्री खोजियों का वर्णन .विस्तार से किया जो भूगोल के ज्ञान के बिना ही समुद्र यात्रा पर निकल पड़े थे। उनके शब्दों में जॉन कॉबॉट अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर इस उद्देश्य से गया कि इस प्रकार अमेरिका का मुख्य भाग उसके रास्ते में आड़े नहीं आएगा। उसे उत्तरी अमेरिका की लंबाई-चौड़ाई का कोई ज्ञान नहीं था और वह इस प्रकार न्यू फाउंडलैंड पर पहुँच गया। वह उत्तर पश्चिमी रास्ते का पता नहीं लगा सका और इसे वापस लौट आना पड़ा। इसी प्रकार सर यू विलोबी और रिचर्ड चांसलर भी पूरी तैयारी के साथ 16वीं शताब्दी के मध्य में एशिया जाने के लिए उत्तरपूर्वी रास्ते की खोज में निकले थे।'इस खोज में उनके तीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जहाजों में से दो संकटग्रस्त हो गए और इन जहाजों का कर्मीदल 'अज्ञानता के कारण भयंकर शीत से मर गया।' बाकी बचा एक जहाज व्हाइट-सी पहुँचा और चांसलर उत्तरी रूस में उतरा' (पृष्ठ 59).

इन जोखिम भरी यात्राओं में पुर्तगालियों या इटलीवासियों का अंग्रेजों ने कोई साथ नहीं दिया था, क्योंकि जहाज छोटे-छोटे हेते थे और छोटी-छोटी समद्र यात्राओं के लायक थे।[95] ये जहाज केवल लिस्बन, बोर्डो और एंटवर्प के बीच धूमा करते थे। कुछ अंग्रेजों ने (मैगेलन, यू विल्वी, रिचर्ड चांसलर, फ्राविशर, हडसन आदि) कोलम्बस का अनुसरण अवश्य किया, लेकिन इनमें से अधिकांश तो भयंकर मृत्यु की चपेट में आ गए या इनके जहाज कुछ दूसरे उन तटों पर जा लगे- जो निश्चित ही भारत का तट नहीं था। यह तब तक संभव नहीं हुआ जब तक ब्रिटेन के फ्राँसिस ड्रेक ने किसी तरह से लिस्बन जाने वाले एक पुर्तगाली जहाज को लूट कर उसे अपने कब्जे में कर लिया। इस लूट में कुछ महत्वपूर्ण नक्शे उसके हाथ लग गए। इन नक्शों की मदद से अंग्रेज नाविक भारतीय समुद्र तट पर पहुँच सके।[96]

नक्शों की चोरी

इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्कोडिगामा तो भारतीय नाविकों द्वारा रास्ता बताये जाने पर भारत पहुँचा था, लेकिन फ्रांसिस ड्रेक को अपने देशवासियों को भारत जो उनके लिए स्वप्न सदृश था, लाने के लिए नक्शों की चोरी करनी पड़ी थी। केवल इतना ही नहीं, गजब तो यह कि अब भी पश्चिमी यूरोपवासियों की इस उपलब्धि को मानव जाति की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि बताया जाता हैं।

यह थी मोटा-मोटी वह पृष्ठभूमि यूरोप की और विशेषकर इंग्लैंड की जिसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी का जन्म हुआ। भारत के इतिहास में पहली बार भारतीय उस सभ्यता के सम्पर्क में आए जो अपने मजहब, विचार और आचरंण में सर्वथा भिन्न थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दो खोजियों की समुद्र यात्राओं का वर्णन करते हुए फ्लिन लिखते हैं कि एलिजाबेथीय नाविकों में से कोई भी आर्कटिक महासागर के विशाल बर्फीले प्रदेश को पार नहीं कर सका, जिसके कारण खोजियों के लिए उत्तरपूर्व का मार्ग उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक अभेद्य रहा। (पृष्ठ 60)।

इसी प्रकार हेनरी हडसन जो चीन और एशिया जाने के लिए अपनी दृढ़ संकल्पित समुद्री यात्राओं के लिए विख्यात है, अन्ततः बर्फ के कारण जीवित नहीं रह सका। हडसन के उदाहरण ने ज्ञान, साहस, नौचालन और खोज की आकांक्षा को ध्वस्त कर दिया जा रेनेसां के कारण जन्मी थी। इसके बाद चीन जाने के लिए उत्तर-पश्चिमी मार्ग की खोज आरम्भ नहीं हुई।

ईस्ट इंडिया कम्पनियों के इन लोगों ने अपने क्रियाकलाप में उन सभी घृणित सिद्धान्तों को अपनाया, जिनके आधार पर उनका गठन हुआ था, वही सिद्धांत उनकी नीति का आधार बन गए और उन्होंने जो कुछ भी अर्जित किया उसका आधार भी फेरी लगाने वालों की धोखाधड़ी और डाकुओं की निर्दयता और लम्पटता थी।[97]

यूरोपीय देशों के पुराने नाम मिट गए

इन सब तथ्यों से प्रमाणित है कि 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इंग्लैंड एक टूटा-फूटा, कलहरत, कमजोर और असंगठित समाज था, जिसे चर्च और राज्य किसी प्रकार अपने-अपने ढंग से चलाने की कोशिश कर रहे थे और चर्च तथा राज्य दोनों में एक गहरा आंतरिक तनाव था। बात इंग्लैंड की ही नहीं है। 17वीं शताब्दी ईस्वी तक यूरोपीय क्षेत्र के (तब तक इस क्षेत्र का नाम यूरोप नहीं पड़ा था) लगभग सभी देश- फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, स्पेन, हॉलैण्ड, नार्वे- सभी की दशा कुछ ऐसी ही रही है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि रोमनों के समय इन क्षेत्रों के नाम भिन्न थे। राष्ट्र तो वे तब तक बने ही नहीं थे, तब तक वे लगभग सभी क्षेत्र रोम राष्ट्र के अधीन या प्रभाव में थे। उन दिनों के उनके कुछ नाम ये हैं :- जिसे आज ऑयरलैण्ड कहते हैं, तब वह हिबर्निया कहलाता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
था। वर्तमान का स्कॉटलैंड तब ब्रितानिया इन्फीरियर कहलाता था, इंग्लैंड तब ब्रितानिया सुपीरियर कहलाता था। हॉलैंड का नाम था- जर्मेनिया इन्फीरियर और जर्मनी का जर्मेनिया सुपीरियर। फ्रांस तब तक तीन अलग-अलग नामों से अलग-अलग क्षेत्रों में पुकारा जाता था- लुग्दुनेन्स, बेल्जिका और एक्विताानिया। उन दिनों यहाँ गॉल जाति सबसे बड़ी संख्या में थी। अत: इसे गॉल भी कहा जाता था। पुर्तगाल को ताराकोनेन्सिस कहा जाता था और स्पेन के दो अलग-अलग क्षेत्रों के अलग-अलग नाम थे,- लुसितानिया तथा बएतिका। स्पेन नाम तब तक प्रयोग में था ही नहीं। इतली को इतालिया कहा जाता था।

लगातार बदले हैं देशों के नाम और सीमाएँ

बाद में भी इन देशों के नाम बदलते रहे। वर्तमान नाम बहुत बाद के हैं- 16 वीं या 17वीं शती ईस्वी के। यहाँ वर्तमान देशों के इतिहास पर संक्षेप में एक नजर:-

1. फ्रांस :- रोम साम्राज्य के समय यहाँ गॉल जाति निवास करती थी। गॉल की सूर्योपासक केल्त्तों के ही वंशज हैं। केल्त स्वयं भारत से गए लोगों के वंशज हैं। तीसरी शती ईस्वी से वहाँ फ्रेंक लोग बसे। रोमन, गॉल, फ्रेंक, ये तीन नस्लें वहाँ रहीं। बाद में विसगोल, बंडाल आदि भी आकर बसे। फ्रेंको में क्रिश्चियनिटी पहले अपनाई। केल्त, वंडाल, विसगोथ लोग तब तक सनातन धर्मी थे। फ्रांस में 16वीं शती ईस्वी तक अनेक राज्य थे। 17वीं शती ईस्वी में उपनिवेशों के कारण इसकी शक्ति बढ़ी। 18वीं शती में प्रसिद्ध फ्रेंच क्रांति हुई। 18वीं शती में भी नेपोलियन ने पूरे यूरोपीय क्षेत्र को फ्रांस के अधीन लाने की चेष्टा की। कनाडा की लूट से फ्रांस शक्तिवान हुआ। भारत में भी कुछ क्षेत्र अधीनस्थ किए। आधुनिक युग में फ्रांस साहित्य एवं कलाओं के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। नेपोलियन ने उस देश को अद्भुत ऊर्जा दी।

16वीं शती ईस्वी के अंतिम दशक में फ्रेंच के एक इलाके में नरेश हेनरी चतुर्थ को अपने दो दूत भेजकर पोप से क्षमा याचना करनी पड़ी। उसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अवधि में फ्रांस और स्पेन में संधि हुई। जैसुइटो, कैथोलिकों, प्रोटेस्टेंटों, हूजनॉट्स आदि क्रिश्चियन पंथों में वहाँ निरंतर रक्तरंजित संघर्ष चलते रहे।

रानी के षडयंत्र से हेनरी की 1599 में मृत्यु हो गई। फ्रांस में तब तक 24 राजा अलग-अलग क्षेत्र में राज्य कर रहे थे। क्रिश्चियन पंथ की आड़ लेकर ये परस्पर युद्धरत रहते थे।

2. जर्मनी : जर्मनी अनेक राज्यों में विभक्त रहा है। पहले यह रोमनों के अधीन था। नौवीं शती ईस्वी. में यहाँ प्रचंड गृह युद्ध हुए। विभिन्न जागीरदार (डचीज) स्वयं को सर्वोपरि मानते थे। उधर पोप के प्रतिनिधि राज्य पर अलग दबाव बनाए रखते थे। इधर कैथोलिकों प्रोटेस्टेंटों के युद्धों से जर्मनी जर्जर होता रहा। इन्हीं झगड़ों का लाभ उठाकर 20वीं शती ईस्वी में हिटलर वहाँ नायक बना।

3. स्पेन : स्पेन पहले यवनों एवं फिनिशियन्स के प्रभाव में रहा। फिर रोमनों के अधीन रहा। फिर विसिगोथों, वंडालों, हूणों ने वहाँ राज्य किया। फिर मुसलमानों ने राज्य किया। अंत में संगठित ईसाई शक्तियों ने मुसलमानों का जातिसंहार कर यहाँ क्रिश्चियन राज्य स्थापित किया। हॉलैण्ड से इसके भयंकर युद्ध चले। यहूदियों का भी यहाँ कत्लेआम किया गया। पुर्तगाल से भी युद्ध चला। बाद में उपनिवेशों की लूट से स्पेन भी समृद्ध हुआ।

4. पोर्तुगाल : पहले यहाँ मुसलमानों का राज्य रहा। ग्यारहवीं शती ईस्वी में इबेरियन ईसाइयों ने उनसे प्रचंड युद्ध किया। तब उसका एक अंश बुरगुंडी के ईसाई जागीरदार के अधीन हो गया। फिर लिऑन के जागीरदार ने उसे जीता। पोप की मदद से 12वीं शती ईस्वी में वहाँ एक स्वतंत्र राजा हुआ। अंग्रेजों की मदद से उन्होंने मुसलमानों का कत्लेआम किया। ये युद्ध दो सौ वर्षों तक चले। मुसलमानों की जागीरें छीनने के बाद तथा उनका वंशनाश करने के बाद पुर्तगाली क्रिश्चियनों का एक वर्ग सम्पन्न हुआ। सोलहवीं शती ईस्वी से इसने उपनिवेशों की लूट के जरिए समृद्धि अर्जित की।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शताब्दियों तक पिट चुके क्रिश्चियन यूरोप की अंगड़ाई

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि क्रिश्चियन यूरोप शताब्दियों तक मंगोलों, तुर्कों तथा पारसीकों सहित अनेक समाजों से बहुत बुरी तरह पिटता रहा। 10वीं शताब्दी ईस्वी तक, जिसे आज यूरोप कहा जाता है, उस सम्पूर्ण क्षेत्र में एशिया के चारों कोनों से बारम्बार हमले होते रहे थे और लूट होती रहती थी।[1]

दलदली उजाड़ यूरोपीय क्षेत्र और समृद्ध भारतीय क्षेत्र

यह वह समय है, जब भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक, सम्राट विक्रमादित्य, सम्राट पुष्यमित्र शुंग, सम्राट खारवेल, सातवाहन सम्राटगण, शातकर्णि सम्राटगण, कण्व सम्राटगण, सम्राट कनिष्क, महान गुप्त सम्राट-सम्राट समुद्रगुप्त, सम्राट स्कंदगुप्त, सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय आदि, सम्राट पुलकेशिन, चालुक्य सम्राटगण, चोल सम्राटगण-सम्राट परान्तक द्वितीय, सम्राट राजेन्द्र प्रथम, सम्राट राजेन्द्र चोल, सम्राट वीर राजेन्द्र, सम्राट अधिराजेन्द्र आदि, पाण्य सम्राटगण-पाल सम्राटगण, सम्राट हर्ष, सम्राट भास्कर वर्मा, सम्राट अनंगपाल, राष्ट्रकूट सम्राटगण, प्रतिहार सम्राटगण, गंग सम्राटगण, हैहय सम्राटगण आदि हो चुके थे और उनके अत्यंत वैभवशाली साम्राज्य थे, जिनमें से प्रत्येक इंग्लैंड की तुलना में बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए साम्राज्य थे। तब तक चीन और भारत दोनों ही राष्ट्रों में खेती और सिंचाई तथा वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हो चुकी थी। नहरें, बाँध, जल प्रबंधन, भूमि प्रबंध और वन प्रबंध में दोनों ही देश उन्नत थे और सेना तथा शासन का स्तर भी बहुत ही उच्च था। ऐसे परिवेश में, इन देशों की सीमांत से बहुत दूर स्थित यूरोपीय देश लूट और बदहाली से जर्जर थे। रोम वस्तुतः भारतीय राष्ट्र तथा चीन से घनिष्ठता से जुड़ा हुआ था और तब तक रोम को ये देश अपना मित्र देश और अपने ही क्षेत्र का देश मानते थे। यूरोप नाम तब तक अस्तित्व में ही नहीं था। हेला गणराज्य जिसे अंग्रेजी में पिछले कुछ समय से ग्रीस कहा जाता है, तब तक भारत का ही अंग था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुली लूट का क्षेत्र

वाइकिंग, नोर्स, रूस, स्लाव, स्कॉट, वेल्श, सेक्सन, डेन्स, जूट, हूण, गोथ, आस्ट्रोगोथ, केल्त आदि समूहों के लोग चारों दिशाओं से इस यूरोपीय क्षेत्र पर बारम्बार हमला करते और लूट कर चले जाते। लूटने के लिए वैसे ज्यादा कुछ था नहीं। एक तरह से शिकार खेलकर या कुछ धातुएँ कहीं से लेकर वे लोग वापस लौट जाते। यूरोपीय समूह तब तक स्थिर नहीं हुए थे और जो रह रहे थे, वे बहुत सम्पन्न स्थिति में नहीं थे, तब भी उन्हें सदा लुटेरों का डर लगा रहता था। स्वयं इस क्षेत्र के निवासी छोटी-छोटी नावों में सवार होकर आसपास फैले समुद्र में चले जाते और वहाँ लूट-पाट करते। ये बड़े क्रूर किस्म के समुद्री डकैत माने जाते थे।

हूणों ने जीता यूरोप को

10वीं शताब्दी ईस्वी तक यहाँ भू-मध्यरेखीय क्षेत्र से मुसलमानों के दल के दल लूट और नियंत्रण के लिए कई बार आ चुके थे तथा कई जगह बस भी गए थे। इसीलिए आज भी यूरोपीय समाज में हूणों और तुर्की मुसलमानों का रक्त खासी संख्या में है। हूण सबसे अंत में आये। उन्होंने हंगरी में तो अपना स्थाई साम्राज्य बनाया ही, हंगरी अर्थात हूण गिरि से अपना साम्राज्य फ्रांस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, पोलैण्ड आदि तक फैलाने का प्रयास किया। इंग्लैंड के दलदली इलाके की ओर उन्होंने झांका भी नहीं, क्योंकि वहाँ झांकने योग्य कुछ था ही नहीं। वाइकिंगों ने सबसे ज्यादा लूटपाट की और यहाँ-वहाँ कुछ ईसाई पादरियों ने जो छोटी-छोटी झोपड़ियों जैसे चर्च बना रखे थे, उन्हें वाइकिंग लोग सबसे पहले लूटते थे, क्योंकि वे उन्हें जुआघर जैसा कुछ मानते थे। हूणों के आक्रमण चर्चों पर नहीं होते थे, क्योंकि वे उन झोपड़ियों को नितांत अनाकर्षक पाते थे और पादरी लोग उनसे कभी भिड़ते भी नहीं थे। वैसे भी तब तक सम्पूर्ण यूरोपीय क्षेत्र में ईसाई पादरियों की कुल संख्या 700 से 800 के बीच ही थी। हूणों की रूचि घोड़े तथा अन्य उपयोगी जानवर हांककर ले जाने में अधिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहती थी। उनके आक्रमण या भ्रमण का प्रतिरोध करने वाला उस समय सामान्यतः यूरोपीय क्षेत्र में कोई था ही नहीं। तुर्कों से अवश्य ईसाईयों की कई झड़पें हुईं। क्योंकि तुर्क उनके खच्चर छीनकर ले जाते थे। अनेक हूण तो यूरोपीय क्षेत्र में भी धीरे-धीरे बस गए। फ्रांस, जर्मनी और तुर्की में वे बड़ी संख्या में बसे।

कच्चा मांस ही था मुख्य भोजन

यूरोपीय क्षेत्र में उन दिनों बहुत थोड़े से हिस्सों में ही मक्का आदि की कुछ खेती होती थी। शेष यूरोपीय मुख्यतः भेड़ पालन के जरिए ही जीविका चलाते थे। उनका मुख्य भोजन कच्चा मांस ही था।[2] उनमें से जो कुछ ज्यादा दमदार होते, वे छोटी-छोटी नावों से समुद्र में जाकर डकैती किया करते थे।

पारसीक प्रांत को ही वे पूर्व कहते थे

यूरोप के लोगों के मन में पूर्व और पश्चिम शब्द वस्तुतः पारसीकों के यूरोपीय क्षेत्र में आक्रमण के बाद विशेष रेखांकित हुआ। वे पारसीक प्रांत को जो कि तब तक यवन राज्य (ग्रीस) तक फैला था, पूर्व मानते थे और पूर्व की दिशा से सम्भावित आक्रमण से भयभीत रहते थे।

तब तक यूरोपीय क्षेत्र में लोगों के पास कोई उल्लेखनीय सम्पत्ति थी ही नहीं। क्योंकि वहाँ सभ्यता का अधिक विकास नहीं हुआ था। ईसाई पादरियों ने पहली बार थोड़े बलवान लोगों को प्रेरित किया कि वे आसपास के इलाके और लोगों पर कब्जा करें और इसको ही सम्पत्ति का अधिकार के रूप में पादरियों ने प्रचारित किया। यद्यपि तब तक उस क्षेत्र में सर्वाधिक सभ्य समूह जर्मन लोग ही माने जाते थे और वे घुमन्तू समूह थे, उनके पास सम्पत्ति के नाम पर भेड़ें ही होती थीं। इसीलिए उन लोगों में सम्पत्ति का कोई विशेष लोभ भी नहीं पाया जाता था। ईसाई पादरियों ने एक और सम्पत्ति के अधिकार का प्रचार किया। दूसरी ओर गरीबों को विनम्र और आज्ञाकारी बनने की प्रेरणा दी। इस प्रचार ने उन्हें कुछ लोकप्रियता दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

कुल्हाड़ों से होती थीं लड़ाइयाँ

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जर्मनों के बाद दूसरा सभ्य समूह गाल और फ्रेंक थे। गालों और फ्रेंकों के मध्य कई बार लड़ाइयाँ हुईं। ये लड़ाइयाँ मुख्यत: कुल्हाड़ों से ही लड़ी गईं। तब तक धनुष बाण का प्रचलन उस क्षेत्र में नहीं था। धनुष बाण में तो हूण ही अग्रणी होते थे।[4] बैलों, घोड़ों, गधों और खच्चरों के लिए होने वाली छीना-झपटी और मारकाट को ही तब तक उस इलाके में युद्ध कहा जाता था। बड़े युद्धों के लायक न तो उनके पास शस्त्र थे और ना ही सम्पत्ति।

ऐसे फैला चर्च

धीरे-धीरे सम्पत्तिवान लोग सम्पत्ति के अधिकारों के प्रचार के कारण ईसाई चर्च के निकट होने लगे। कुछ समय बाद चर्च के पादरियों ने यह तर्क प्रचारित किया कि धरती पर जो कुछ भी है, सबका मालिक 'गॉड' है और 'गॉड' का इकलौता बेटा जीसस है तथा चर्च जीसस की दुल्हन है और प्रतिनिधि है। अत: समस्त सम्पत्ति का स्वामी सदा चर्च ही होता है। इस तर्क के प्रचार से सभी बलवान लोग सम्पत्ति के लोभ से चर्च से जुड़ने लगे और ईसाई बनने लगे।[5] परन्तु शिक्षा व्यापक नहीं थी और बाइबिल को पढ़ने का भी अधिकार केवल पादरियों का था, अत: सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार समाज में कभी भी जाने नहीं गए। पादरी जो व्याख्या कर दें, वही सम्पत्ति के स्वामित्व के विषय में अधिकृत व्याख्या मानी जाती थी। धीरे-धीरे यह विचार मान्य हुआ कि ऊपर 'गॉड' है और नीचे उसका प्रतिनिधि 'पोप' है। विश्व की समस्त सम्पत्ति के मालिक ये ही हैं।

11वीं शती से फैली ईसाइयत

11वीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में पहली बार यूरोप में छोटे-छोटे कस्बे बसने लगे। ये कस्बे ईसाई पादरियों के स्वामित्व और नियंत्रण में होते थे। मुसलमानों से युद्ध की तैयारी के लिए ये बसे। मुसलमान ईसाई लोगों पर जेहाद के नाम पर आक्रमण करते और ईसाई मुसलमानों पर क्रूसेड के नाम पर आक्रमण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते। कस्बे इन्हीं लड़ाइयों की तैयारी के अड्डे थे। मंगालों के सम्पर्क से सबसे पहले इन्होंने सभ्यता के कुछ लक्षण सीखे।

मंगालों से सीखी सभ्यता

मंगालों ने ईरान, खुरासान, अजरबेजान, आॅर्मेनिया, इराक आदि होते हुए तुर्की, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, अनातोलिया, बलगारिया, अलबानिया, हंगरी, पोलैण्ड, ऑस्ट्रिया, फ्रांस और जर्मनी के कई हिस्सों पर कब्जा किया। तुर्की को आज भी अपने हूण पूर्वजों पर गर्व है।[६] परन्तु शेष हिस्से में पादरियों ने हूणों के प्रति गहरा भय और घृणा फैलाने वाले कहानियाँ खूब फैलाईं। जिसके कारण यूरोप का वह हिस्सा हूण विरोधी हो गया। चर्च की प्रेरणा से मुस्लिम समूहों पर सामूहिक हमले होने लगे और उन्हें जिन्दा जलाया जाने लगा। अपनी बारी आने पर मुसलमान भी यही काम करते थे। 300 वर्षों तक भयंकर आपसी मार-काट का दौर चला।

महामारी का प्रकोप

14वीं शताब्दी ईस्वी से यूरोपीय क्षेत्र में प्लेग की महामारी भयानक रूप में फैली। जिससे लगभग आधी आबादी का सफाया हो गया।[९४] परन्तु इस्लाम से सीखी हुई सभ्यता के कारण इन लोगों ने पुनर्निर्माण का हौसला बनाए रखा। मुसलमानों से होड़ में इन्होंने भी भारत से मुस्लिम देशों में गए हुए ज्ञान-विज्ञान को सीखने का प्रयास किया और उससे उन्हें लाभ भी हुआ। खेती के तरीके भी इन्होंने सीखे। दवाओं का भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु इसके साथ ही उन्होंने इस्लाम के अनुयायियों से भयंकर साम्प्रदायिक असहिष्णुता में भी होड़ जारी रखी। एक ओर तो वे मुस्लिम जेहाद के विरुद्ध क्रूसेड चलाते रहे, परन्तु दूसरी ओर स्वयं एक ईसाई पंथ दूसरे ईसाई पंथ का भी कत्लेआम करता रहा। बस्तियों की बस्तियाँ जिन्दा जला दी जातीं। भयंकर तबाही मचाई जाती और हर चर्च के अनुयायियों की भीड़ एक विचित्र से उन्माद में भरकर दूसरों के सामूहिक जाति संहार के लिए पादरियों के नेतृत्त्व में निकलती तथा हत्याओं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

और आगजनी में रुचि लेती। बहुत ही पैशाचिक रुचियाँ और उन्माद थे। लगभग 300 वर्षों तक ऐसा ही उन्माद का दौर जारी रहा।"

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

14वीं शती में कहीं-कहीं खेती सीखी

मुसलमानों के जरिए भारत से गई हुई खेती और सिंचाई की उन्नत तकनीक के विषय में पहली बार जानकर यूरोपीय क्षेत्र में खेती का विस्तार हुआ। पहली बार वहाँ एक साल खेत को खुला छोड़कर दूसरे साल फसल उगाने की पुरानी पद्धति के स्थान पर साल में दो फसलें बारी-बारी से उगाने का चलन 14वीं शताब्दी ईस्वी से बढ़ा। ठंड और गर्मी में अलग-अलग अनाज बोते हुए वे खेत का एक तिहाई हिस्सा खाली छोड़ने लगे। इससे उपज में भारी बढ़ोत्तरी हुई। तब मांस के साथ अनाज भी खाने का चलन बढ़ा। हालांकि भोजन के विषय में यूरोपीय लोग 18वीं शताब्दी ईस्वी तक अत्यंत अविकसित ही रहे। मसालों के ज्ञान के साथ भारत तथा अन्य एशियाई एवं अमेरिकी देशों से उन्होंने पहली बार 18वीं शताब्दी ईस्वी में ही भोजन की उन्नत और विविध विधियों की जानकारी प्राप्त की। हाथ धोकर खाना भी उन्होंने 19वीं शताब्दी ईस्वी में ही सीखा। 15वीं शताब्दी ईस्वी तक सम्पूर्ण यूरोप के लोग बिना हाथ धोये और हाथ से ही खाना खाते थे। जब मार्कोपोलो चीन से लौटा तब पहली बार वहाँ के राजाओं और बड़े पादरियों को लकड़ी की छुरी, चम्मच, कांटे बगैरह का ज्ञान हुआ। यह ज्ञान फैलते-फैलते 16वीं शताब्दी ईस्वी में ही व्यापक हो पाया। बिना हाथ धोये ही खाने के कारण बड़ी संख्या में संक्रामक बीमारियाँ और प्रदूषण से मौतें वहाँ होती रहती थीं। मल त्याग के बाद की सफाई की विधि के विषय में भी पुराना ज्ञान ईसाइयों ने नष्ट कर डाला था, जिससे अधिकांश साधारण यूरोपीय सूखे पत्तों से ही पोंछते थे और प्रायः रोगाणु के संक्रमण के शिकार हो जाते थे।

बंधुआ मजदूरी

खेती के विषय में जानकारी बढ़ने के साथ ही ताकतवर लोग अपने आसपास के लोगों को जबरन पकड़कर उनसे बंधुआ मजदूरी करवाते थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्त्रियों और बच्चों से भी बहुत मेहनत का काम लिया जाता था और उन्हें बदले में पेटभर खाने के लायक कमाई भी नहीं हो पाती थी। गांवों और शहरों के लोगों में भी आपस में आय दिन लड़ाइयाँ होती रहती थीं।

चीन और भारत से सीखा ज्ञान-विज्ञान

चीन से मार्कोपोलो कुबलई खान द्वारा दिए गए उपहारों के साथ लौटा। इससे पहली बार वेनिस तथा उसके आसपास के इलाके में घड़ियों के बारे में जानकारी फैली। तब पादरियों में चर्च के लिए घड़ी प्राप्त करने की होड़ मच गई। कई लोगों ने चीन जाकर घड़ी बनाना सीखा। हर बड़े चर्च में घड़ी रखी जाने लगी, जिसमें समय देखकर दिन में कई बार घंटा बजाया जाता था। इंग्लैंड और इटली में सबसे पहले घड़ियाँ लोकप्रिय हुईं। उससे पहले चर्च प्रकृति के आधार पर समय का बंटवारा करता था। जिससे क़ि गर्मी और ठंड में घंटों का काल अलग-अलग होता था- कभी 35 मिनट का तो कभी 90 मिनट का। मिनट के विषय में भी कोई ज्ञान नहीं था। घड़ियाँ आने के बाद ही यह ज्ञान फैला और घंटों की गणना नियमित हो गई। 14वीं शताब्दी ईस्वी के बाद धीरे-धीरे घड़ियों का चलन यूरोप में फैला और 15वीं शताब्दी ईस्वी तक फैलता रहा। घड़ी ने यूरोप के जीवन में भारी परिवर्तन घटित किया। चीन से ही इटली में तथा अन्य यूरोपीय देशों में प्रिंटिंग की कला की जानकारी आई। बारूद का ज्ञान भी चीन से ही आया। जिसे आज संयुक्त राज्य अमेरिका कहा जाता है, उसका पुराना नाम दुनिया में उस क्षेत्र से बाहर कोई नहीं जानता। पहले उस इलाके को कोलम्बस के नाम पर कोलम्बिया कहा गया। कोलम्बस वहाँ स्थानीय लोगों की मदद से ही पहुँचा था अन्यथा भटक रहा था।[100]

15वीं शताब्दी तक निरंतर पराजित होते रहे

यूरोप शताब्दियों तक दूसरों के द्वारा पराजित और दमित होता रहा है। 15वीं शताब्दी इस्वी से उसने पहली बार यह जानकारी पाकर कि दुनिया गोल है और समुद्र से आगे भी है, दुनिया के अलग-अलग इलाकों में धावा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

बोला और दूसरों को मारा, पीटा, हराया, जीता और छलघात से वशवर्ती किया। इनका छलघात पैशाचिक तो था ही, अकल्पनीय वंचनाओं वाला था। सुसंस्कृत समाजों की उदारता का इन्होंने अनुचित लाभ उठाया। फिर छल से उन्हें ही वशवर्ती बनाने लगे। तब उखाड़ फेंके गए। परन्तु उखाड़े जाते-जाते इन्होंने अपने उन उदार स्वामियों को, जिनकी कृपा से इन्हें राजस्व वसूली, मुनाफामय व्यापार आदि के अवसर मिले थे, भारी हानि पहुंचाई। यह इनकी कृतघ्नता तो है ही, मानवता के विरुद्ध किए गए अपराध हैं। ऐसे अपराध ही मानव जाति पर से विश्वास उठा देते हैं। ऐसे समूहों को देखकर भला कोई कैसे किसी अपरिचित पर भरोसा करे और कैसे अतिथि समझकर या याचक समझकर या व्यापार करने आया विनम्र और चतुर व्यापारी समझकर व्यवहार करे। व्यापारी तो सदा ही लेन-देने की भावना और समझ रखते हैं। ये अभागे तो इतने मूढ़ थे कि इन्होंने सोचा कि हम सम्पूर्ण भारतीय समाज को सदा के लिए मूर्ख बनाकर, धोखा देकर, फिर अपने अधीन रखने में सफल रहेंगे। इन्हें संसार के नियमों की और कर्मफल की कोई जानकारी ही नहीं थी। पुनर्जन्म में तो इन्हें श्रद्धा है ही नहीं। इन्होंने सोचा कि एक ही कुल जन्म है, इसमें चाहे जो पाप करके सम्पत्ति जुटाओ और भोग करो, कृतघ्नता करो, वचनभंग करो, धोखाधड़ी करो और फिर आँखें तरेरो। इसीलिए बेचारों को बहुत जल्दी जाना पड़ा।

क्या इंग्लैण्ड की हैसियत कभी भी भारत पर राज्य करने की थी?

भारत में ऐसे अनेक भ्रांत देशभक्त हैं जो इस बात से दुखी हैं कि भारत पर इंग्लैण्ड ने शताब्दियों राज्य किया। कुछ लोगों के अनुसार उसने दो सौ वर्षों राज्य किया और कुछ के अनुसार ढाई सौ वर्ष। इतिहास के तथ्यों की जानकारी रखने वाला कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसे लोगों के प्रति गहरी करूणा का भाव ही पालेगा। इसमें तरस का भाव भी शामिल रहता है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

इंग्लैंड का आकार

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबसे मुख्य बात तो यह है कि इंग्लैण्ड का कुल क्षेत्रफल ही वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य के लगभग बराबर है। वर्तमान मध्यप्रदेश वर्तमान इंग्लैण्ड से लगभग ढाई गुना बड़ा है। पहले के आकार में यह लगभग साढ़े तीन गुना बड़ा था। दूसरी बात यह है कि 1947 ई. के 200 वर्ष पहले तो इंग्लैण्ड एक मिशन स्टेट था ही नहीं। ऐसी स्थिति में जो वह था ही नहीं, उस रूप में वह किसी अन्य से मैत्री या आक्रमण, युद्ध या संधि का कोई भी व्यवहार कर ही कहाँ से सकता था।

200 साल पहले क्रमशः बना राष्ट्र-राज्य

इंग्लैण्ड पहली बार एक राष्ट्र राज्य के रूप में 18वीं शताब्दी ई. में कुछ-कुछ आकार लेने लगा। उसके पहले तक तो वहाँ निरंतर आपसी मारकाट और गृह युद्ध चलते रहते थे और पूरे इंग्लैण्ड क्षेत्र का कोई एक सर्वमान्य राजा था ही नहीं। जिस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारी, जिनमें से अधिकांश मामूली लुटेरे, ठग, डकेत और अपराधी थे तथा जिनका आचरण भारतीय कसौटियों पर व्यभिचार से भरपूर था, भारत आये थे तो उनके पीछे किसी संगठित राज्य का कोई बल नहीं था। क्योंकि उन दिनों स्वयं इंग्लैण्ड के भीतर भयंकर मारकाट मची हुई थी। यहाँ तक कि कट्टरतावादी पादरियों की प्रेरणा से इंग्लैण्ड के अभिजनों के एक वर्ग ने तथाकथित पार्लियामेंट (जिसमें तब सभी बालिग मतदाताओं के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि कतई नहीं होते थे) के माध्यम से और कट्टर ईसाई कानूनों की आड़ लेकर स्वयं इंग्लैण्ड के तत्कालीन राजा चार्ल्स प्रथम को मृत्युदण्ड दे दिया था और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया था। यद्यपि तब तक किसी भी वैधानिक व्यवस्था के द्वारा इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट को, जैसी भी वह थी, सर्वोच्च सत्ता नहीं दी गई थी। वह तो 1688 ई. में पहली बार दी गई, जिस वर्ष में कैथोलिकों को पीट सकने का अधिकार भी कानूनन दिया गया था। 18वीं शताब्दी के मध्य में भी इंग्लैण्ड और फ्रांस में भयंकर युद्ध हो रहे थे। यह ठीक उसी प्रकार से तुलनीय है जैसे छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के बीच भयंकर युद्ध हो। क्योंकि इंग्लैण्ड का क्षेत्रफल छत्तीसगढ़ के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बराबर है और फ्रांस का वर्तमान मध्यप्रदेश के बराबर। परन्तु 18वीं शताब्दी में फ्रांस का क्षेत्रफल भी इससे कम था और फ्रांस तब भी एक राष्ट्र राज्य नहीं बना था। नेपोलियन के समय तक फ्रांस अनेक टुकड़ों में बँटा था। इससे पूर्व 17वीं शताब्दी तक तो इंग्लैण्ड में सूर्य पूजक और बहुदेव पूजक अनेक राजा थे ही। 1789 ई. में पहली बार फ्रांस में नागरिकों के अधिकार को सार्वजनिक स्वीकृति दिये जाने की घोषणा की गई। 18वीं शताब्दी के अंत तक फ्रांस में भी चर्च और वहाँ के राजाओं के बीच भयंकर टकराव हो रहे थे। इसी टकराव में से वस्तुतः 1791 ई. में पहली बार वहाँ एक राष्ट्रीय विधायिका गठित हुई, जो साल भर में ही बिखर गई। इसके बाद धीरे-धीरे फ्रेंच राष्ट्र का विकास हुआ। अतः इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच जो लड़ाई हुई वह भी दोनों नेशन-स्टेट्स के कतिपय राजाओं के समूहों के बीच हुई थी। वह भी दो राष्ट्रों के बीच हुई लड़ाई नहीं थी। युद्ध की प्रक्रिया में से ही वहाँ राष्ट्र राज्य उभरे। पादरियों के संगठनों की शक्ति और अधिकार छीनकर तथा उनके अत्याचारों का दमन करके ही ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी में राष्ट्र राज्य उभरे, जिनसे प्रत्येक देश में संबंधित पादरी संगठनों (चर्च संगठनों) ने बाद में संधि की। ऐसे युद्ध जर्जर और गृह युद्ध से टूटे थके, आपस में बुरी तरह विभक्त और कलहरत समाज की यह हैसियत ही नहीं थी कि वह एक समाज या राष्ट्र के रूप में किसी अन्य राष्ट्र को अधीन बनाने की सोचे।

जो लोग अंग्रेजों में से कुटिल और भारतद्वेषी विद्वानों को ही प्रामाणिक मानते हैं और उनके ही बताये निदानों को भारत के इतिहास के लिए कसौटी मानते हैं, वे जब भारत के तथाकथित आपसी झगड़ों से दुखी होते हैं तो उन्हें यह अवश्य सोचना चाहिए कि वह किसकी तुलना में दुखी हो रहे हैं। क्योंकि इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी तो उन दिनों भारत से कई गुना अधिक टूटे-फूटे, कलहरत और विखण्डित समाज थे।

प्लासी का युद्ध तो कभी हुआ ही नहीं

भारत में जो व्यापारी आये वे बहुत झुककर व्यापार करने आये थे। परन्तु उनके भीतर ईसाई एकपंथवादी उन्माद के संस्कार भी गहरे थे। उनके साथ बड़ी संख्या में पादरी भी आये थे और पादरियों ने ही उन्हें उन पापाचारों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए उकसाया जो कम्पनी के लोगों ने भारतीय समाज के साथ किया। वस्तुतः सिराजुदौला ने बंगाल में पादरियों के मिशनरी पापाचार को बंद कराया था और इसी से कुपित होकर पादरियों ने कम्पनी के लोगों को छल-कपट, भेद और फूट के जरिये सिराजुदौला की सेना में तोड़-फोड़ करने का दबाब बनाया था और फिर इस तिकड़म तथा फरेब को ही तथाकथित प्लासी का युद्ध प्रचारित कर दिया गया। ऐसा युद्ध जो कभी हुआ ही नहीं और जिसमें सिराजुदौला की सेना में दल-बदल कराकर सिराजुदौला के रिश्तेदार मीर जाफर की ओर सारी सेना को ले आया गया और इसे ही युद्ध में जीत बता दिया गया। एक सेना अपना सेनापति अथवा अपना प्रधान अपने प्रमुख लोगों में से ही एक के स्थान पर किसी अन्य को चुन लेती है, जैसे कि तत्कालीन बंगाल नवाब की सेना ने सिराजुदौला के स्थान पर मीर जाफर को चुन लिया तो इसमें युद्ध कहां से हो गया, युद्ध में विजय कहां से हो गई और इस विजय का अंग्रेज़ों से या उनकी सेना से क्या लेना देना है?

कम्पनी की कोई अपनी सेना नहीं थी

कम्पनी के पास कोई सेना तब तक थी ही नहीं। वह तो इन फिरंगियों व्यापारियों की दुकानों और कोठियों की रखवाली के लिए भर्ती किये गये भारतीय रक्षकों की टुकड़ी मात्र थी। कम्पनी तब इंग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही थी। वह इंग्लैण्ड के कतिपय व्यापारियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी। इस पर भी भारत में क्लाइव आदि जो पापाचार कर रहे थे, उसकी पूरी रिपोर्ट वे अपने उन व्यापारी मालिकों को भी नहीं दे रहे थे। इस प्रकार केवल पादरियों के उकसाने पर और केवल मज़हबी उन्माद से संचालित होकर कम्पनी के ये नौकर अपने मालिकों के साथ दुराव-छुपाव कर रहे थे, अपने राज्य के साथ कानून के उल्लंघन का अपराध कर रहे थे, अपने इंग्लैण्ड राज्य और इंग्लिश समाज को कलंकित तथा बदनाम कर रहे थे, भारतीय व्यापारियों और राजाओं के साथ वचन भंग, विश्वासघात, कपटजाल और नीचता कर रहे थे तथा सदाचार और श्रेष्ठ आचरण की सार्वभौम कसौटियों के आधार पर वे केवल पापाचार कर रहे थे। इसीलिये तत्कालीन संस्कृत पंडितों ने राबर्ट क्लाइव के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'कपटकापटिक' विशेषण का प्रयोग किया था। 2 मई, 1907 के अंक में संस्कृत पत्रिका 'सूनृतवादिनी' ने इसी विशेषण का प्रयोग क्लाइव के लिए किया था।

राष्ट्र राज्य थे ही नहीं

सार यह है कि इंग्लैण्ड, फ्रांस, पुर्तगाल आदि कोई भी तब तक कोई राष्ट्र-राज्य नहीं बने थे और उसके जो निवासी भारत में आकर व्यापार कर रहे थे, वे व्यक्तियों के रूप में ही उन-उन देशों के निवासी थे, वे उन राज्यों के राजनैतिक प्रतिनिधि नहीं थे और उनके पापाचारों को संबंधित राज्यों की राजनीति का अंग नहीं माना जा सकता। जहाँ तक सफलता की बात है, उन सभी लोगों की सफलता केवल लुटेरों, ठगों और डकैतों की सफलता से ही तुलनीय है।

काहे का साम्राज्यवाद

अपनी सफलता के लिए उन्होंने पहले तो बहुत ही झुक-दबकर भारत के लोगों से व्यापार की रियायत ली और सुविधायें लीं और फिर अचानक कुछ अटपटे और विचित्र ढंग से ईसाई कानूनों के अनुसार शासन चलाने की कोशिश करने लगे। वस्तुत: तो व्यवहार में इसे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद कहना भी निरर्थक गरिमामंडन मात्र है। लुटेरों के झुण्ड मिशनरी उन्माद से भरकर पापाचार करने लगे। पहले भारतीयों को विश्वास ही नहीं हुआ कि ऐसा कोई पौशाचिक समूह भी मनुष्य की शक्ल में धरती में ऐसे व्यापारी बनकर घूम-फिर सकता है क्योंकि हज़ारों साल के अनुभवों की स्मृतियों और संस्कारों से सम्पन्न भारतीय व्यापारी बहुत शांति और धीरज से व्यापार चलाते थे और शुरु में उन्होंने फिरंगियों को एक बहुत चालाक और चलता पुर्जा व्यापारी तो माना, पिशाच नहीं माना।

झूठ की आड़ लेकर अनुचित हस्तक्षेप

जब वे पिशाच के रूप में सामने आये तो उन्हें पीट-पाटकर भगाया जाने लगा। तभी 1858 ई. में अचानक तत्कालीन इंग्लैण्ड के राज्य ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने सेनापति को उन पिशाचों की सहायता के लिए इस झूठे बहाने की आड़ लेकर भेज दिया कि निरीह अंग्रेज़ों की भारत में बड़े पैमाने पर हत्या हो रही है। इसके लिए कम्पनी के दलालों ने भयंकर अफवाहें उड़ाई और यह झूठा प्रचार किया कि जगह-जगह अंग्रेज़ों को मारकर उनकी लाशें कुओं में डाली जा रही हैं। इस तरह स्वयं अपने शासन के साथ कम्पनी के लोगों ने छल किया। कम्पनी ने जो गलत सूचनाएँ ब्रिटिश शासन को दी थीं उसके आधार पर वे भारत को ईसाई प्रकाश के लिए प्रतीक्षारत राष्ट्र समझकर भारत के लोगों को विधि का शासन, न्याय और कल्याणकारी व्यवस्था का आश्वासन देते हुए भारत पर राज्य करने चले आये और 90 वर्ष के भीतर ही यहाँ से उखाड़ फेंके गये।

दो अपरिचित समाजों में अन्तः क्रिया

इस पूरे घटनाक्रम में ब्रिटिश शासन और ब्रिटिश समाज के बारे में जैसे व्यापक अज्ञान भारत के लोगों को अपने संस्कारों और अपनी जातीय स्मृतियों के कारण था, उससे कहीं अधिक व्यापक अज्ञान स्वयं इंग्लैण्ड के सदाशयी और भले लोगों को भी भारत के बारे में था। एक प्रकार से यह दो अपरिचित समाजों के बीच हुई अंतः क्रिया थी जिसमें से दोनों ने धीरे-धीरे एक दूसरे को समझा।

सबसे दुर्बल चरित्र लोगों को सौंपी अपनी सत्ता

यह ठीक है कि जाते हुए ब्रिटिश शासन भारत में सत्ता का हस्तांतरण यहाँ के सबसे कमजोर चरित्र वाले समूह को कर गया और वे सब लोग ब्रिटेन के प्रति, ब्रिटिश कानून व्यवस्था, संस्थाओं और मान्यताओं के प्रति भक्ति भाव से संचालित हैं। परंतु उन्हें इस प्रकार संचालित होने की अनुमति भारतीय समाज ने नहीं दी है और केवल विदेशियों के शासन के हट जाने के हर्ष से प्रमुदित समाज 60-65 वर्षों से सत्ता के हस्तांतरण द्वारा शासक बनें अपने लोगों के प्रति थोड़ा उदासीन रहा है। क्रमशः उसे इन लोगों के चरित्र के प्रति सजगता हो रही है और अंततः इस पूरी व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन अवश्यंभावी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्री नरेन्द्र मोदी के प्रति उमड़ता लोकमानस इसका सूचक है। न इंग्लैण्ड ने कभी भारत पर आक्रमण किया, न उसने भारत को पराजित और पराधीन किया और न ही उसे कभी भी भारत पर विजय प्राप्त हुई। वह तो अपने व्यापारियों द्वारा दी गई गलत सूचनाओं के आधार पर अपने मूढ़ आत्मविश्वास से प्रेरित होकर भारत पर शासन करने की सोचने लगा और उसके लिए अत्यंत कठोर तथा दमनकारी राज्यतंत्र को भारत पर थोपा परन्तु इसके बाद भी उसे तो जाना ही था।

अब जो लोग भारत में पश्चिमी यूरोप और अमेरिका की नकल में विदेशनीति चला रहे हैं, वे लालच से प्रेरित लोग हैं तथा भारतीय जातीय (राष्ट्रीय) अनुभवों से रिक्त हैं और गहरी आत्मविस्मृति के शिकार हैं।

● ● ●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. फॉकनर : अमेरिकन इकॉनॉमिक हिस्ट्री, पृ.32, प्रो. कुसुमलता केडिया की पुस्तक : 'दि रूट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट' में अध्याय-1, पृष्ठ 2 पर उद्धृत।

2. ई.जे. हॉब्सबाम : इंडस्ट्री एंड एम्पायर, पृ.52

3. चूंकि इटली और इटालियनों का अपने देश की केन्द्रीय स्थिति होने के कारण एशिया और यूरोप के बाजारों में लाभप्रद व्यापार में वर्चस्व था, इसलिए वे लोग यूरोपीय व्यापार पर छाये रहे। इटालियन 13वीं शताब्दी में भी लन्दन के व्यापार पर छाये रहे। वे मुख्यत: पूर्व के माल को इंग्लैंड लाते और इसके बदले वहाँ से ऊन आदि खरीदा करते थे। 14वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में अंग्रेजों का एक नवोदित समुदाय इन विदेशी व्यापारियों की शक्ति, सम्पत्ति और विशिष्ट स्थिति से ईर्ष्या करने लग गया था। इटली वस्तुत: समशीतोष्ण कटिबंध का भारत से मिलता-जुलता क्षेत्र है। उसे यूरोप का अंग पहली बार 19वीं शताब्दी ईस्वी में प्रचारित किया गया है।

4. प्रो. केडिया : पूर्वोद्धृत।

5. वही।

6. उदाहरणार्थ, अंग्रेजों ने यह सोच कर कि केप होते हुए सुदूर पूर्व जाने के पुर्तगाली रास्ते के विकल्प के रूप में एक रास्ता उत्तर पूर्व से भी हो सकता है, रूस में रुचि लेनी आरंभ कर दी।

7. मध्यसागरीय व्यापार में इटालियनों का एकाधिकार होने के कारण विभिन्न प्रकार के माल खास तौर पर मसालों की सप्लाई घटती ही नहीं रही, बल्कि यह माल यूरोप के उत्तरी या पश्चिमी भागों तक पहुंचते-पहुंचते काफी महंगा हो जाता था। स्पष्टत: इटालियनों को अधिक दाम देना अन्य यूरोपियनों के लिए सहज नहीं था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

8. यहाँ एक और बात महत्वपूर्ण है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। बात सिर्फ इतनी नहीं है कि खाद्य सामग्री को सुरक्षित रखने के लिए मसाले आवश्यक समझे जाते थे। मूल बात यह है कि स्पेन का सम्राट फिलिप्स द्वितीय भी सिर्फ एक ही वस्तु काली मिर्च के व्यापार से इतना धन कमा लेता था कि वह यूरोप में काली मिर्च का बादशाह कहा जाने लगा था।

दीतमार रॉदरमुंड ने अपनी पुस्तक एशियन ट्रेड एंड यूरोपियन एक्सपेंशन इन दि एज ऑफ मर्केन्टीलिज्म में कुछ इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है जैसे 'पुर्तगालियों का काली मिर्च पर एकाधिकार' 'काली मिर्च का ठेका लेना', 'काली मिर्च के लिए खोज' या फिलिप्स द्वितीय का हमेशा धनाभाव से ग्रस्त रहना'.... और जब एक बार उसने देश पर कब्जा कर लिया, तब उसने उससे अधिकतम लाभ उठाने का निर्णय लिया। एक अन्य स्थान पर दीतमार लिखते हैं- फिलिप्स द्वितीय के ये अन्तिम वर्ष काली मिर्च के व्यापार के लिए खराब दिन थे जो 1588-90 में प्रतिवर्ष 24,000 क्विंटल से घटकर 1592-94 में केवल 7000 क्विंटल रह गया था।' (पृ.17-28)

इसी प्रकार एल.सी.ए. नोएल्स ने जो वर्णन किया है वह भी रहस्योद्घाटन है। इससे यूरोपीय व्यापार कुशलता या 'व्यापारिक क्रान्ति' आदि के बौनेपन का पता चलता है जिसे बढ़ा-चढ़ा कर गौरवपूर्ण रीति से प्रस्तुत किया जाता है। नोएल्स लिखती हैं- 'इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी में व्यापार के विस्तार का प्रधान उद्देश्य तम्बाकू, चीनी, लकड़ी और मछली प्राप्त करना था। - अठारहवीं शताब्दी में व्यापारियों का उद्देश्य काफी बदला- हालांकि व्यापार में पहले की चीजें अब भी महत्वपूर्ण थीं- उनके साथ-साथ और चीजें भी व्यापार सूची में शामिल, हो गई जैसे चाय, काफी, नारियल और गुलाम- 'गुलामों का व्यापार धीरे-धीरे काफी महत्वपूर्ण हो रहा था।' (दि इकॉनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ दि ब्रिटिश ओवरसीज एम्पायर, पृ. 69)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आजकल भी वे अपनी अधिकांश आवश्यकताओं के लिए उष्णकटिबंधीय देशों पर निर्भर रहते हैं। इस विषय और अधिक विवरण के लिए एल.सी.ए. नोल्स की उक्त पुस्तक में प. 76–150 देखें।

रादरमुंड ने भी इस विषय की चर्चा 'दि ब्रिटिश मर्केंटाइन डिबेट' नामक अध्याय में की है। पृ. 13–56 तक उनका वर्णन इस विषय पर विशेष पठनीय है।

9. जी.एम. ट्रेवेल्यान, हिस्ट्री ऑव इंग्लैंड, लांगमेंस, ग्रीन एंड कम्पनी, लन्दन, पुनर्मुद्रण 1952, बुक–1, अध्याय–1, विशेषत: पृ. 2–5

10. वही, अध्याय–1, पृ.–2 से 3.

11. वही, पृ. 6–7.

12. (क) वही, अध्याय–1, पृ.–7 से 14. (ख) जॉन ओ. फेरेल, एन. अटरली इम्पार्शल हिस्ट्री ऑफ ब्रिटेन, ऑर 2000 ईयर्स ऑफ अपर क्लास ईडिट्स इन चार्ज, ब्लैक स्वॉन, लन्दन, 2008, अध्याय–1, पृ.–23–30. (ग) जॉन थार्न एवं अन्य, ए हिस्ट्री ऑव इंग्लैंड, एआईटीबीएस पब्लिशर्स, दिल्ली (मूल संस्करण लन्दन), अध्याय–1, पृ. 20–25. (घ) जॉफरी ब्लेने, ए शार्ट हिस्टीर ऑव दि वर्ल्ड, पेंगुइन, दिल्ली, 2000 ईस्वी, अध्याय–3, पृ. 56–58. (च) नॉर्मन डेविस, यूरोप : ए शार्ट हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड, न्यूयॉर्क, 1996, पृ. 231–232.

13. (क) जॉन ओ फेरेल : पूर्वोद्धृत, अध्याय–1, (ख) जॉन थॉर्न इत्यादि, पूर्वोद्धृत, अध्याय–1, (ग) जी.एम. ट्रेवेल्यान, हिस्ट्री ऑव इंग्लैंड, पूर्वोद्धृत बुक–1, अध्याय–1.

14. (क) जॉन ओ फेरेल : पूर्वोद्धृत, अध्याय–1, पृ. 27–30, (ख) जी.एम. ट्रेवेल्यान, पूर्वोद्धृत बुक–1, अध्याय–1. पृ.10.

15. जॉन ओ फेरेल बुक–1, पूर्वोद्धृत पृ.31–33.

16. एलेन पेगेल्स, दि ओरिजिन ऑव सेतान पेंग्विन, लन्दन, 1995 भूमिका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एवं अध्याय-2, 3.

17. जी.एम. ट्रेवेल्यान, हिस्ट्री ऑव इंग्लैंड, बुक-1, पूर्वोद्धृत अध्याय-2. पृ. 26-28 तथा जॉन ओ फेरेल : पूर्वोद्धृत, अध्याय-2, पृ. 40-43.
18. जॉन ओ फ़ेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-3, पृ.55-60.
19. वही।
20. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-2, पृ.50-62.
21. जी.एम. ट्रेवेल्यान, पूर्वोद्धृत, बुक-1, अध्याय-4. पृ. 59-60
22. वही।
23. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-4, एवं 5, पृ. 118 से 200, विशेषत: देखें , पृ. 199.
24. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-4 तथा 6.
25. वही। अध्याय-6.
26. वही।
27. वही, पृ. 228.
28. वही, पृ. 228-230
29. वही, पृ. 232.
30. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-6, पृ.234-235.
31. वही, अध्याय-6.
32. व्रही, पृ. 234-236
33. वही।
34. वही।
35. वही, अध्याय-6.
36. वही, अध्याय-6,7 एवं 8 देखें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

37. देखें, प्रो. रामेश्वर प्रसाद मिश्र एवं प्रो. केडिया : भारत हजारों वर्षों की पराधीनता : एक औपनिवेशिक भ्रमजाल, अध्याय-7, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 2010 ईस्वी.

38. देखें, प्रो. मिश्र एवं प्रो. केडिया : कभी भी पराधीन नहीं रहा है भारत, अध्याय-6, पहले पहल, भोपाल 2011 ईस्वी.

39. वही।

40. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत अध्याय-5.

41. वही, अध्याय-5.

42. वही। 43. वही। 44. वही।

45. वही। 46. वही।

47. वही, पृष्ठ 186-190.

48. वही। 49. वही, पृ. 190-191.

50. वही। 51. वही।

52. वही, अध्याय-5., 53. वही। 54. वही।

55. वही। 56. वही, अध्याय-5.

57. वही। 58. वही। 59. वही। 60. वही।

61. वही, पृष्ठ 190-195.

62. वही, पृ. 198.

63. वही, पृ. 195-198, 64. वही।

65. देखें, प्रो. केडिया : पूर्वोद्धृत रूट्स, अध्याय-1.

66. जॉन विलियम ड्रेयर: द इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट ऑव यूरोप

67. जॉन ओ फेरेल, पूर्वोद्धृत, पृ. 139-144 तथा पृ. 244-245.

68. वही, पृ. 192-193. साथ ही, प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत, रूट्स अध्याय-1 व 2.

69. वही। 70. वही। 71. वही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

72. फेरेल वही, पृ. 364-369.
73. वही, अध्याय-8.
74. वही, पृ. 190-197 तथा अध्याय-8.
75. देखें, प्रो. केडिया, पूर्वोद्धृत, अध्याय-2.
76. प्रो. केडिया, पूर्वोद्धृत, अध्याय-1.
77. वही। 78. वही, पृ. 8-9.
79. वही, पृ. 8-12.
80. वही, पृ. 10.
81. वही, अध्याय-1.
82. वही। 83. वही। 84. वही।
85. वही। 86. वही।
87. वही, साथ ही, फेरेल, अध्याय-6
88. वही। 89. वही।
90. वही। 91. वही।
92. वही। 93. वही।
94. वही। 95. वही।
96. वही। 97. वही।
98. पूर्व में सन्दर्भ आ चुका है।
99. देखें, क्रूसेड्स पर अनेक प्रसिद्ध पुस्तकें।
100. आज इस विषय पर सैकड़ों पुस्तकें उपलब्ध हैं।
उदाहणार्थ देखें (1) डेविड लेन्डेस : दि वेल्थ एंड पावर्टी ऑव नेशन्स, (2) इवान वान सर्टिमा : दे केम विफोर कोलम्बस।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-4

आंतरिक साधनों से कभी भी समृद्ध नहीं हुआ यूरोप

वस्तुत: यूरोप की समृद्धि और उसका स्वर्णयुग (यूनानी व रोमन युग) निर्भर था महत्वपूर्ण अर्थ में एशिया के साथ व्यापारिक संबंधों पर, न कि जैसा लोग समझते हैं, उसके अपने आंतरिक उद्योग, कृषि या व्यापार पर।[1] यूरोपीय देशों का भाग्य, चाहे वे प्रतापी हों या दीन, सदैव निर्भर रहा और उतरता चढ़ता रहा उनके एशियायी, विशेषत: भारत चीन के संबंधों के आधार पर और इसी से प्रभावित होता था उनका सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन। स्पष्ट है कि जब यह व्यापार डगमगाता, तब सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था एवं अन्य क्षेत्रों में भी गिरावट दिखती। भारत की सम्पदा के चर्चे यूरोपियनों के लिये एक लुभावनी वस्तु थे। यह वह लालच था जो मार्कोपोलो के किस्सों कहानियों और वार्ताओं के बाद तीव्र हो उठा था। इन सबकी प्रथम एवं सर्वोपरि स्वाभाविक परिणति थी भारत को जाने वाले वैकल्पिक समुद्री मार्ग की खोज। क्योंकि परिचित मार्गों पर तुर्क काबिज थे।

भारतीय मूल को पहचानेगा यूरोप

सत्य यह है कि यवन (हेला) प्रांत एवं रोम प्रांत समशीतोष्ण क्षेत्र हैं, वे मुख्य यूरोप (ठंडे-दलदली क्षेत्र) से बिल्कुल अलग हैं। वे वृहत्तर भारत का अंग थे। भारतीय क्षत्रियों-हूओं, शकों, द्रह्युओं, आणवों, ऐलों ने ही शेष यूरोप में भी विस्तार किया। सभी यूरोपीय क्षेत्रवासी मूलत: भारतीय क्षत्रियों एवं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैश्यों की ही संतति हैं। यह चेतना वहाँ टुकड़ों में पल रही है। 'पीलुल्स ऑव दि यूरोप' शृंखला का प्रकाशन इसका लक्षण है। 'पेगन मूवमेंट भी इसी का लक्षण है। धीरे-धीरे भारतीयों के कुछ वंशजों ने ही इस क्षेत्र में विस्तार किया। परन्तु इसाइयत ने उन्हें अपने ही पूर्वजों की स्मृति से काट दिया। ईसाइयत, इस्लाम एवं कम्युनिज्म तीनों ही अपने अनुयायियों को पूर्वजों से काटती हैं, उनकी निन्दा सिखाते हैं। ताकि वे स्वयं की नई पहचान तक केन्द्रित रहें। ज्ञान के प्रसार से यूरोप में पुन: स्मृति जग रही है। कुछ ही वर्षों में वे भारत से अपना मूल सम्बन्ध पुन: खोज लेंगे। उनके उद्धार में श्रेष्ठ भारतीय राज्य की बड़ी भूमिका होगी। श्री नरेन्द्र मोदी उसी दिशा के संकेत हैं।

खोज के नाम पर लूट

ईसाइयत ने कठोर प्रशिक्षण के द्वारा यूरोप के प्रबुद्ध लोगों को और मध्यवर्ग को ही अपने अनुचित और निंदनीय प्रयोजनों को सुंदर पदावली में प्रस्तुत कर दूसरों को धोखा दे सकने की अद्वितीय प्रवीणता दी। फलस्वरूप खोज के नाम पर और लगाव या संवेदना के नाम पर दूसरों के जीवन में अनुचित और अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप को अपना कर्त्तव्य बताते हुए उन्होंने निर्मम लूट का रास्ता बेहिचक अपनाया। तात्कालिक तौर पर वे सफल रहे, क्योंकि हजारों वर्षों के अनुभवों से संपन्न विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं के लोग मनुष्यों के द्वारा ऐसी सामूहिक कृतघ्नता की कल्पना भी नहीं कर पाए। परन्तु जैसे ही ये प्रयोजन अलग-अलग समाजों के समक्ष स्पष्ट हुए, उन्होंने अपने ढंग से विविध उपाय अपनाकर इन लोगों को पीछे हटने को विवश कर दिया। तथाकथित यूरो ईसाई साम्राज्यवाद कहीं भी 200 वर्षों से अधिक नहीं टिक पाया। तथापि विविध समाजों और देशों से हटते-हटते इन्होंने औपनिवेशिक सत्ता का हस्तांतरण उनके सबसे कमजोर और लोभी समूहों के हाथ किया, ऐसे समूह जो इनके द्वारा दी गई शिक्षा के कारण आत्मविस्मृत और आत्मविमुख होकर निरे इंद्रियसुखवादी और अहंकारी हो चुके थे। फलस्वरूप पुराने साम्राज्यवादियों के आर्थिक हित कुछ न कुछ सुरक्षित रहे आए। साथ ही, इन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि अन्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
समाज आधुनिक शस्त्र सज्जा में यूरोप और अमेरिका से सदा पीछे रहें, क्योंकि यूरोप के विभिन्न देशों की सम्पूर्ण सफलता तात्कालिक और तीव्ररूप में किए गए युद्धों से ही टिकी रह सकी है। सैन्य-बल के बिना विश्व में न्याय के पक्ष में संतुलन स्थापित नहीं हो सकेगा। अत: भारत को अपने महान योद्धा स्वरूप का पुन: स्मरण, चिंतन, मनन करना होगा।

तथ्यों का स्मरण

कुछ बातें संक्षेप में। सोने की खोज में पागल हो चुके स्पेनी लोगों ने अमेरिका में जो किया, उसकी चर्चा मात्र किसी भी सभ्य मनुष्य को शर्म से गड़ा देगी। यूरोप के सफेद चमड़ी वाले लोगों ने कैरेबियन देशों में जो कुछ किया वह वस्तुत: स्थानीय आबादी का क्रमिक विस्थापन और विलोप है। पहले तो वहां छीना-झपटी और डकैती के जरिए स्थानीय भूमि पर यूरोपीय स्वामित्व अर्जित किया गया। फिर स्थानीय लोगों से मजदूरी तक नहीं कराई गई। पहले इसके लिए बाहर से पशु लाए गए और बाद में गन्ने की खेती के लिए अफ्रीका से बड़े पैमाने पर गुलाम लाए गए। गन्ने की खेती इसके पहले यूरोप के लोगों ने न देखी थी, न सुनी थी। भारत तथा भारत के पड़ोसी देशों से उन्होंने पहली बार इसके विषय में जाना।

क्रूरता, रोग, बर्बरता का प्रसार

गन्ने की खेती से होने वाले मुनाफे के लिए अर्थात मुख्यत: चीनी के व्यापार से होने वाले मुनाफे के लिए स्पेनी लोग इस कदर उन्मद हो उठे कि उन्होंने स्थानीय लोगों से भयंकर क्रूरतापूर्वक काम लिया। स्थानीय लोगों को सदा दूर ले जाकर तम्बुओं में रखकर अलग-अलग रहते हुए मजदूरी के लिए विवश किया गया। इस प्रकार स्थानीय दम्पतियों को बलपूर्वक एक-दूसरे से अलग कर दिया गया। पति-पत्नी परस्पर मिल न सकें, इसकी पूरी व्यवस्था की गई। स्थानीय लोग कभी भी स्वयं को श्रेष्ठ कहने वाले लोगों के द्वारा ऐसे अत्याचारों की कल्पना ही नहीं कर पाते थे। वे तो उन्हें सदा दया करने वाला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

और संरक्षण करने वाला ही देखते और मानते थे।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विचित्र करुणा

यों ये यूरोपीय ईसाई लोग भी अपने ढंग की करुणा कर रहे थे क्योंकि उनकी दृष्टि में करुणा का अर्थ है दूसरों को बलपूर्वक ईसाइयत में बपतिस्मा दिलाकर दीक्षित कर उन्हें प्रभु ईशु के पवित्र प्रकाश से पवित्र करना। इस प्रक्रिया में उन पर आवश्यक अनुशासन कठोरता से लागू करना ये लोग करुणा ही मानते हैं। इस करुणा से अमेरिका और अफ्रीका के कई करोड़ लोग मर गए और शेष लोग अपनी संस्कृति, परम्परा और धर्म से रहित हो गए। इस प्रकार जिसे अक्षम्य क्रूरता और नृशंसता कहा जाता है, उसे ही ये 'ईसाई करुणा' बताते हैं।

छलघात और हिंसा के पक्ष में तर्क

इसके साथ ही इनके द्वारा लाए गए रोगाणुओं के द्वारा फैले इन्फ्लूएंजा तथा चेचक की महामारियों से लाखों लोग चपेट में आ गए। स्पेनिश पादरियों का तर्क था कि हम लोग जिनकी हत्या कर रहे हैं, वे मनुष्य नहीं हैं, वे तो अविकसित प्राणी हैं। उनकी हत्या में कोई दोष नहीं है। उनसे मित्रता साधकर विश्वास जीतकर छल करना और मार डालना किसी हिंसक पशु को मारने जैसा ही करणीय कार्य है।[2]

डेविड लेंडेस ने जोसेफी रचित 'इंडियन हेरिटेज' नामक पुस्तक के हवाले से बरतोलोम द लॉस कसास द्वारा लिखे गए 'ब्रीफ रिफ्लेक्शन ऑन द डिस्ट्रक्शन ऑव द इंडीज' के अंश उद्धृत कर बताया है कि 'वे लोग हथियारबंद आए। घोड़ों पर बैठकर, भाला और तलवार लेकर। उन्होंने अत्यंत बर्बरतापूर्वक हत्याएं कीं और अत्याचार किए। गांव के गांव और शहर के शहर उजाड़ दिए। स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों किसी को नहीं छोड़ा। गर्भवती माताओं को भी नहीं छोड़ा। ऐसी माताओं के पेट में तलवार भोंककर उनके पेट से भ्रूण निकालकर उन्हें अपने भाले की नोंक पर टांग कर घुमाते ताकि दूसरे लोग भयभीत हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
जाएं। बच्चों की टांग पकड़कर उनका सिर घुमाकर चट्टानों पर पटकते थे। अगर कोई पत्नी के लिए पानी पर कूद जाए तो उसपर भयंकर अत्याचार करते हुए उसे मार डालते। उन्होंने बहुत से फांसी के फंदे तैयार किये जिनमें से हरएक पर वे तेरह-तेरह लोगों को लटकाते और फिर उन पर आरोप यह लगाते कि इन विधर्मियों ने हमारे तारणहार जीसस की और उनके अनुयायी पादरियों की अधीनता मानने से इंकार कर दिया है। नीचे से आग लगाकर वे फंदों में झुलाते हुए अभागों को जला डालते। अक्सर जीवित लोगों को जिंदा जला देते। जिसे वे बहुत तरस खाकर जिन्दा छोड़ते, उनके वे हाथ काट डालते।'[3]

भयावह पापाचार

सोने की खोज में कैरेबियन क्षेत्र में भटकते हुए स्पेनिश लोगों ने जो उत्पात मचाये उनका वर्णन डेविड लेन्डेस ने इस प्रकार किया- 'विजेताओं के विभिन्न दलों ने चारों ओर फैलकर जहाँ-तहाँ अपने झण्डे गाड़ दिए और साथ ही अपने क्रास भी। उन्होंने यूरोप के विभिन्न कम्यूनों के अनुकरण पर विभिन्न शहरों के नामकरण किये और अनेक क्रिश्चियन देवताओं तथा संतों के नाम से एवं पवित्र वस्तुओं के नाम से इन शहरों के नाम रखे गये। वहां के स्वदेशी लोगों की आपसी लड़ाइयों का भरपूर लाभ उठाते हुए एक कबीले को दूसरे के विरुद्ध लड़ाकर लाभ उठाया। स्वदेशी लोगों के साथ लड़े, उन्हें आतंकित किया, उत्पीड़ित किया, उनकी बेटियों से बलात्कार किये और स्पेनी पुरुषों की रखैलें बना ली गईं वहां की विधवाओं से भी दुराचार किया, अनेक बहुदेवपूजक अमेरिकियों को जबरन ईसाई बना डाला। कइयों को तो ठीक मरते समय (छल-बल से) बपतिस्मा दिया गया। हर जगह ये लोग सोने की तलाश में और चाहत में रहे। सोने की उनकी भूख अन्तहीन थी। वह उनकी मूढ़ता को भी दर्शाती है।'[4] यहां डेविड लेन्डेस उसे आज 20वीं शती ईस्वी के अंतिम दिनों और 21वीं के निकट के काल-बिन्दु पर खड़े होकर मूढ़ता बता रहे हैं। परन्तु अमेरिका में यूरोपीयों का अस्तित्व ही इसी मूढ़ता (जो वस्तुतः नृशंसतम क्रूरता और पैशाचिक उन्माद था) के बल पर संभव हुआ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

उन्नत इंडियनों को छल बल से मारा

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आगे डेविड लेन्डेस बताते हैं- '16वीं शताब्दी के दूसरे दशक में यूकतान के तट पर स्पेनिश लोगों को ऐसे इण्डियन मिले जैसे उन्होंने इसके पहले कभी नहीं देखे थे। वे इण्डियन सूती वस्त्र पहने थे और पत्थरों से बने नगरों में रहते थे। उनके पास घातक अस्त्र थे- जहरीले बरछे, भाले और पैनी धारवाले नुकीले कांचों से सज्जित मुद्‌गर और गदाएं आदि। यद्यपि उन्हें लोहे या तांवे का ज्ञान शायद नहीं था परन्तु शस्त्रों का ज्ञान था और उन्हें मार डालना आसान नहीं था। जैसा कि स्पेनिश लोग अब तक आसानी से अन्य इण्डियनों को मारते आते थे, वैसा यहां संभव नहीं था। इसलिए स्पेनिश लोगों ने वहां मिठास से बातें कीं, धीरे-धीरे अपना व्यापार बढ़ाया और उन इण्डियन लोगों को फुसलाया, बहलाया। वहां उन्हें जानकारी मिली कि वहां से पश्चिम में एक और अधिक समृद्ध इलाका है जहां अकूत खजाना है। वहां के राजा से वे लोग जाकर मिले। हर भेंट स्पेनिश लोगों के लिए लाभकारी सिद्ध हुई क्योंकि वहां के शासक अतिथियों के प्रति अत्यंत उदार और दयालु सिद्ध होते थे तथा उन्हें महंगी भेंटे और नजराने दिया करते थे। स्पेनिश लोगों का कहना है कि ये भेंटे इसके लिए दी जाती थीं जिससे कि हम उनका देश छोड़ दें। स्पेनिश तथा अन्य यूरोपीय लोगों के प्रति अतिथि सत्कार की परंपरागत भावना से किया गया वह व्यवहार बहुत बड़ी भूल साबित हुआ।'[5]

परिकल्पित मान्यताएँ और यथार्थ

औद्योगिक क्रांति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने से हमें पिछड़ेपन की समस्या पर महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ मिल सकती हैं। ऐसा मुख्यत: दो कारणों से है। पहला, क्योंकि इसके साथ कुछ पूर्वकल्पित मान्यताएँ जुड़ी हुई हैं जिन्होंने एक लम्बे समय से विचित्र किस्म की मानसिकता रुग्णता, मानसिक बंधुवापन को जन्म दिया है और जिसके चलते ऐतिहासिक तथ्यों को दर किनार करने में भी कोई संकोच महसूस नहीं किया जाता। दूसरे, क्योंकि हमने अभी तक अपने साथ जो हुआ और जो हो रहा है, उसकी अन्तररंगता को देख और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
समझ पाने के लिए अभ्यस्त नहीं किया है। हमारी वर्तमान मानसिकता (ब्वदकपजपवदपदह) ने हमें अतीत में घटी घटनाओं में छिपी सत्यता की अहमियत को देखने-समझने में ही अक्षम बना दिया है और अगर कुछ विद्वान कोशिश भी करते हैं तो उनकी वैचारिक सीमाएँ उस समस्या की व्याख्या/विश्लेषण में स्पष्ट प्रतिबिम्बत होती है। वह घटना जिसे कालान्तर में औद्योगिक क्रांति का नाम दिया गया, 1760 के लगभग घटी (जैसा कि अधिकांश पाश्चात्य विद्वान मानते हैं। तत्कालीन उत्साहियों ने इसे 'निर्णायक', 'विभाजक' या इतिहास का एक महत्वपूर्ण क्रमभंग या उलट जाने की अपरिवर्तनीय प्रक्रिया के क्रम वाला सांख्यिकी रूप कहकर सम्बोधित किया है। यहाँ तक कि कई एक आधुनिक विद्वान जैसे हाब्सबाम तक ने इसको 'मानव-जीवन का सर्वाधिक आधारभूत रूपांतरण' कह डाला है: अभी तक के लिखित दस्तावेजों में संसार के इतिहास में घटी एक ऐसी घटना, जिसने मानव जीवन को मूलभूत रूप से रूपान्तरित कर दिया और कुछ समय के लिए यह घटना जिस एक ही देश के इतिहास से एकाकार हो गई, वह देश था ग्रेट ब्रिटेन।'[6]

यहाँ पर एक-एक शब्द के अर्थ और महत्व को समझना आवश्यक है- एक तो, इन शब्दों का इस्तेमाल करना क्यों उचित समझा गया है, और दूसरे, इस प्रकार के शब्दों के इस्तेमाल करने वालों की मानसिकता क्या है? निश्चय ही इसमें कई तरह की छटा देखने को मिलती है और इन उत्साहियों के वारिस/उत्तराधिकारियों ने भी इस परम्परा को स्वयम् सिद्ध मानकर, बिना किसी विश्लेषण के उसका ही अनुसरण किया है। परिणाम में उभरी एक वृत्ताकार अवधारणा जिसका केन्द्र बिन्दु थी औद्योगिक क्रांति। जिसकी छत्र-छाया में ही विकास अथवा उसे जुड़े प्रश्नों को देखा जा सकता था और जिसे एक सार्वभौमिक सत्य के रूप में स्थापित मान लिया गया अर्थात् समस्त देशों, कालों एवं संदर्भों के लिए। हम पाते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल की सारी आर्थिक बहसों (वाद-विवादों) का प्रमुख ताल्लुक इस प्रकार के प्रश्नों से है-

(क) पिछड़े देशों में औद्योगिक क्रांति को कैसे लाया जा सकता है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(ख) कौन से तत्व इसे आगे धकेल सकेंगे?

(ग) कैसे इसको अनेक स्तरों से सफलतापूर्वक आगे ढुलकाया जा सकता है ताकि यह परिपक्वता प्राप्त कर सके? इत्यादि-इत्यादि।

आर्थिक विकास के नाम पर

अधिकांश विकास सम्बन्धी मुद्दों और मतों की समस्या एक ही देखने को मिलती है (या यूँ कहें एकमात्र पहेली जिसे विकास के विचारक सुलझाने में लगे हैं) : कैसे विकासशील देशों को उन उपभोग स्तरों तक पहुँचाया जाए जिसे पश्चिम के देशों ने अपने लिए पहले ही हासिल कर लिया है।[7] उनके मस्तिष्क में सर्वोपरि घूमने वाली, जिसने सर्वाधिक दबाव बनाया, उनकी यह मान्यता है कि औद्योगिक संवृद्धि आर्थिक विकास का ही दूसरा नाम है (एक सिक्के के दो पहलू) और इसलिए कैसे पूँजी संचय करने की प्रक्रिया को बढ़ाया जाए, ब्याज की दर क्या हो, पूँजी आयात की दर क्या रखी जाए और इसका तंत्र क्या हो, विदेशी सहायता की मात्रा व स्वरूप क्या हो?

निजी बनाम राजकीय पूँजीवाद

रूस में हुई समाजवादी क्रांति के बाद भी विवाद का रूप बदल नहीं सका। अब सिर्फ एक ही असमंजस या दुविधा उठी कि यह सब व्यक्तिगत उद्यम/पूँजी के द्वारा किया जाए अथवा सरकारी पहल से योजनाबद्ध रूप में (योजनाओं से)। एक विद्वान ने वर्तमान समय में की जा रही इस वैचारिक उठापटक की नस को पकड़कर समझाते हुए कहा है- एक बात जिसे अक्सर नजरअन्दाज किया जा रहा है, वह है इन पूर्वमान्यताओं के प्रति इस प्रकार की हठधर्मिता/अन्धानुकरण अथवा अन्धभक्ति जिसने हमे 'पिछड़ेपन' की समस्या को एक विश्लेषणात्मक नजरिए से देख पाने में पूरी तरह से अक्षम कर दिया है। औद्योगिक क्रांति एक ऐसी घटना है जिसमें इंग्लैंड का उसके अतीत से स्पष्ट विच्छेद नजर आता है और इसलिए ही उसने इंग्लैण्ड/यूरोप के इतिहास में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। लेकिन जहाँ तक भारत अथवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उसमें पिछड़ेपन की समस्या का ताल्लुक है, औद्योगिक क्रांति कुछ विशेष अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान करती है। इसलिए नहीं कि उसने पश्चिम में एक अद्भुत आर्थिक विकास को सम्भव बनाया बल्कि इसलिए कि भारत देश को उसने एक सिलसिलेवार पिछड़ेपन के चक्र में उलझा दिया।

औद्योगिक क्रांति का मिथक

यदि और स्पष्टता से इसे कहा जाय तो यूँ कह लीजिए कि भारत की समस्या को समझने के लिए हमें औद्योगिक क्रांति द्वारा इस देश में पैदा की गई संस्थाओं पर नकारात्मक/विध्वंसात्मक प्रभाव का अध्ययन करना पड़ेगा, न कि यह कि इंग्लैंड के लिए उसका क्या स्तर था, या विस्तार था (हालांकि इसकी चर्चा भी निसंदेह आवश्यक है इस बात को समझने के लिए कि इस औद्योगिक क्रांति की वास्तविकता क्या है अथवा मिथक जो उससे जुड़े हुए हैं उनका यथार्थ क्या है)। अब समय आ गया है कि हम इन प्रचलित 'थिअरीज' एवं पूर्वग्रहों, पूर्वधारणाओं, पूर्वकल्पित मान्यताओं को उनके ऊपरी स्वरूप में न देखें वरन् उनकी पूर्णता में समझने का प्रयास करें: सत्य और केवल तथ्यों की कसौटी पर। इन संदर्भ में श्रीमती जॉन रॉबिन्सन द्वारा दिए गए कुछ सुझाव अति महत्वपूर्ण हैं।

अविकसित दशा

सामान्य विश्वास के विपरीत औद्योगिक क्रांति में ऐसी कोई विलक्षणता नहीं छिपी है जो साधारणतया उससे जोड़ी गई है। उसकी उत्पत्ति, स्तर या पैमाना अथवा विस्तार को लेकर यद्यपि तत्कालीन यूरोपीय आर्थिक स्तर के मापदंड से वह 'क्रांतिकारी' ही लगेगा।[7] अंग्रेजों ने तो उसे पूरी तरह ही एक क्रांतिकारी घटना मान लिया और 'विलक्षण' की संज्ञा दे डाली। उनके द्वारा शायद ऐसा किया जाना स्वाभाविक था क्योंकि एक देश जो 18वीं शताब्दी के मध्य आते-आते भी मुख्यतया कृषि प्रधान देश कहा जाता था, जहाँ के उत्तरी प्रान्तों में मात्र एक तिहाई से भी कम की जनसंख्या थी, जहाँ प्रमुख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उद्योगों के नाम पर मात्र 'ऊन' का उद्योग था, जहाँ उद्योग आदि इस्तेमाल किए जाने वाले यंत्र पूरी तरह आदिकालीन, अविकसित थे और जहाँ अग्रिम धनराशि देने के लिए कोई पूँजी थी ही नहीं, वहाँ इस प्रकार का परिवर्तन जिसे हम औद्योगिक क्रांति के नाम से जानते हैं, जिसमें समृद्धि ला पाने एवं अनन्त लाभ-वृद्धि की सम्भावनाएँ छुपी हों, स्वाभाविक तौर पर एक बहुत बड़ी घटना थी। उनके लिए तो एक छोटा सा चढ़ाव भी एक ऊँची छलांग ही था, एक 'विलक्षण विकास' की ओर बढ़ा हुआ कदम, और इसी तरह की बातें। उनकी सामान्य आय में एक छोटी सी वृद्धि भी उनके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी: उस स्तर की तुलना में जिसमें रहने के वे आदी थे। पर क्या भारत जैसे सम्पन्न देश के लिए भी इंग्लैंड का वह विकास विलक्षण है? जिसने उससे बहुत सुसंस्कृत, श्रेष्ठ, मर्यादित, सभ्य, सर्वकल्याणकारी ढंग से इससे कई गुनी समृद्धि इतिहास में पहले ही प्राप्त कर ली हो और कई बार प्राप्त की हो।

हमारी कीमत पर समृद्ध हुआ इंग्लैंड भारत के प्रति कृतज्ञता उसका कर्त्तव्य

इसके पहले कि हम एक-एक करके उन तत्वों का अवलोकन करें जो 'औद्योगिक क्रांति' के लिए जिम्मेदार थे, शायद उन घटनाओं/विकासक्रम को यहाँ समझ लेना आवश्यक है, जिसका काल है 1600 ई. यानी ईस्ट इंडिया कम्पनी के बनने से लेकर 1757 (यानी 'प्लासी') तक जो भारत में अंग्रेजों द्वारा किए गए भारतीय क्षेत्रीय विखण्डन की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम था। इनका निरूपण इस प्रकार से है:-

1. भारतीय दृष्टिकोण से, ईस्ट इंडिया कम्पनी और भारत के बीच हो रहा व्यापार नगण्य था, हालाँकि अंग्रेजों के नजरिए से यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण था। (देखें रादरमुंड का पूर्वोद्धृत 'एशियन ट्रेड एंड यूरोपियन एक्सपेंशन इन द एज ऑव मर्केंटाइलिज्म')

2. यही बात सत्य है एशिया के साथ हो रहे योरोप के व्यापार के बारे में भी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3. यह व्यापार था मुख्यतया मसालों का।[7]

4. 17वीं शताब्दी का अन्त आते-आते भारतीय कपड़ा ब्रिटेन के लिए, मसालों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। मसालों के व्यापार के अपने पुर्तगाली व डच प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा बेइज्जती के साथ बाहर निकाल दिए जाने के बाद, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीय वस्त्रों की ओर अपना ध्यान लगाया जो उसके लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ (रादरमुंड, पृष्ठ. 39) एवं अब से ईस्ट इंडिया कम्पनी का ध्यान इस बात की ओर केन्द्रित हुआ कि कैसे भारतीय वस्त्रों को ज्यादा से ज्यादा योरोप के बाजारों तक पहुँचाया जाए। यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि अरब एवं एशिया के और दूसरे व्यापारी जिनमें वेनीशिया के व्यापारी सम्मिलित हैं, भारतीय वस्त्रों का न जाने कब से सुदूर देशों के साथ व्यापार कर रहे थे। यह व्यापार नया व उत्तेजक केवल इंग्लैंड के लिए था।[8]

5. कम्पनी का व्यापार मुख्यतया इस प्रकार का था कि इन भारतीय वस्त्रों को खरीद पाने में इंग्लैंड के समाज या उपभोक्ता की आर्थिक अक्षमता के चलते, वह इन वस्त्रों को फ्रांस, जर्मनी, हॉलैंड आदि के बाजारों में बेचती थी, जहाँ इन वस्त्रों के आकर्षणवश लोग पागल हो उठे थे।

6. भारत के बने इन सामानों के एवज में ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारतीय व्यापारियों को एक बड़ी मात्र में सोना द्वारा अदायगी करनी पड़ती थी। यह बात इंग्लैंड के प्रभावशाली अभिजन वर्ग द्वारा बिल्कुल पसन्द नहीं की जाती थी क्योंकि इसका मतलब था वहाँ की कीमती चाँदी की निकासी, जो सोने के विनिमय का माध्यम थी। इसीलिए कम्पनी के व्यापारियों को न तो इंग्लैंड के अभिजन सम्मान से देखते थे, न इंग्लैंड के सामान्य जन।

7. इनका मोटा लाभांश तो गुलामों के व्यापार, समुद्री डकैती एवं भारतीय सामानों को दूसरे देशों को बेचकर ही आता था।

8. अन्ततः जब बंगाल के राजस्व का खजाना ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ लग गया तो स्थिति पूरी तरह बदलने लगी क्योंकि इतना धन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कम्पनी के अफसरों और संचालकों ने कभी देखा भी नहीं था, सोचा भी नहीं था।

9. यह पूँजी जब जमा होकर प्रचलन एवं निवेश के काम आने लगी तो 'औद्योगिक क्रांति' के लिए इसने चिनगारी का काम किया। इस प्रकार ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति भारत के एक छोटे हिस्से के राजस्व से प्राप्त आय का सीधा परिणाम थी। भारत के पास तो उससे कई गुना खजाना था ही।

10. आखिर में वह देश जिसने इस 'औद्योगिक क्रांति' की प्रसव पीड़ा को सहा, वह था भारत, जिसका नुकसान हुआ : (अ) अपने संसाधनों की निकासी से, (ब) अपनी निर्माण क्षमता एवं कपड़ा उद्योग के समाप्तप्राय हो जाने से एवं (स) अपनी अर्थ-व्यवस्था के एक दुर्भाग्यपूर्ण अधम रूपान्तरण से। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति एवं अपनी अभूतपूर्व समृद्धि के लिए ब्रिटेन भारत का ऋणी है और उसे कृतज्ञ होना चाहिए।

प्रतिस्पर्धा में अक्षम अंग्रेज व्यापारियों के पाप

परन्तु, किसी ने बहुत ही ईमानदारी से कहा है कि एक खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी का रहना इंग्लैंड के लिए असहनीय था अत: उसे खत्म कर देना ही उसने उचित समझा। स्थिति की सच्चाई तो यह थी कि -

1. भारतीय उद्यमियों को मार डालना ही ब्रिटेन के लिए सबसे जरूरी था अगर उन्हें वह लूटी हुई कीमती मुद्रा उनके अपने देश में रखनी थी जो कि भारत को उसके अति लोकप्रिय सामानों की एवज में उन्हें देना पड़ता था।

2. भारत के बाजारों को इंग्लैंड के उभरते हुए उद्योग-धंधों के लिए हड़पना था। अंग्रेजों के लिए, जो भारत के व्यापार की ओर लालच भरी नजरों से देख रहे थे, 'औद्योगिक क्रांति' नामक इस लूट के नए धंधे ने इन नई नीतियों को शुरू करने का एक प्रभावी बहाना उपलब्ध कराया।[7] इन नीतियों से इंग्लैण्ड के लिए लूट-खसोट की प्रक्रिया को आसान से आसान और सुलभ बनाते हुए भारतीय उद्योगों की कीमत पर अपनी तिजोरियाँ भरना और सरल हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया। भारत में ब्रिटेन के द्वारा एक भीषण रूप से शोषणात्मक प्रणाली लागू किया जाना ही औद्योगिक क्रांति की वह ताकत थी जिसने उसे जीवनी शक्ति प्रदान की और जिसके परिणामस्वरूप हम पाते हैं लगातार भारत से इंग्लैंड की ओर धन-सम्पदा की निकासी एवं भारतीय उद्योग-धन्धों, उद्यमशीलता, भारतीय समाज को उपलब्ध अनेकानेक तकनीकियों एवं निपुणताओं की सुव्यवस्थित बरबादी।

निरन्तर कांग्रेस-शासन में फैलाया गया झूठ

इस प्रकार हमारे लिए इस बड़ी विशिष्ट घटना औद्योगिक क्रान्ति की मूल उत्पत्ति एवं प्रगति तथा सफलता की कहानी को उसकी पूर्णता में समझना अति आवश्यक है। ब्रिटेन द्वारा इस काम में इस्तेमाल किए गए हथकंडों एवं रणनीतियों के सही स्वरूप की ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित विवेचना ही सत्य को सामने लाएगी तथा उन अनेकानेक झूठों एवं मनगढ़ंत बातों का भांडा भी फोड़ेगी, जो इन दिनों के प्रचार साहित्य में, सरकारी संरक्षण और यूरो-क्रिश्चियन शिक्षा में दीक्षित विविध समूहों के द्वारा अंगीकृत साहित्य में भरी पड़ी है। ऐसी बलात् उत्पन्न की गई प्रसव-पीड़ा भारत को किस अज्ञान या प्रमाद के कारण झेलनी पड़ी या यह केवल काल-प्रवाह ही था, इसका विश्लेषण बाद में किया जाएगा।

प्रारम्भिक पूँजी संग्रह

किसी भी तरह के आर्थिक विकास के लिए प्रमुख आवश्यकता है 'पूँजी'। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि 'जब इंग्लैंड में काफी मात्रा में पूँजी इकट्ठी हुई, तब वह घटना घटी जिसे हम 'औद्योगिक क्रांति' के नाम से जानते हैं। यह हुआ 1760 में ' टायनबी लिखते हैं - (जिन्हें औद्योगिक क्रांति पर साधिकार बोलने योग्य माना जाता है) और हॉब्सबाम एवं अन्य पाश्चात्य एवं एशियाई विद्वानों का भी यही मत है। यहाँ पर हमारा विशेष आग्रह इस बात पर है कि जहाँ ये सारे के सारे लेखक औद्योगिक क्रांति के अनेकानेक पक्षों की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्तार से चर्चा करते हैं, वे उसके एक पक्ष विशेष को बड़ी चतुराई से टाल जाते हैं, जिसका ताल्लुक है 'पूँजी संग्रह की उत्पत्ति एवं उसके स्रोतों से'। नीचे दिया गया उदाहरण उनकी इस चतुराई भरी शैली का शब्दाडाम्बरपूर्ण प्रतीकात्मक नमूना है। एक विद्वान लिखते हैं- 'हमारे लिए विचारणीय विषय यह नहीं है कि औद्योगिक क्रांति के उद्भव के लिए आर्थिक विस्फोट की सामग्री एकत्र कैसे की गई, बल्कि यह कि आखिर यह विस्फोट हुआ कैसे।'

वृद्धि की जड़ में हैं लूट, हत्याएँ, बर्बरता

अगर हम यहाँ सत्य का प्रतिपादन करने का साहस रखते हों, तो यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि समूची ऐतिहासिक जानकारी को तो 'आर्थिक सिद्धान्तीकरण' के क्षेत्र से बाहर रखा गया है। कारण यह है कि उसके फँसाव/उलझाव बहुत ही खतरनाक एवं चौंका देने वाले हैं। जैसा कि टायनबी ने ब्रिटेन में सरकारी दस्तावेजों में दर्ज तथ्यों का हवाला देते हुए शायद अनचक्के में ही लिख दिया है -'ऐतिहासिक पद्धति हमारी प्रतिष्ठित संस्थाओं की सीधी क्रमिक वृद्धि दर्शाती है परन्तु वृद्धि की प्रक्रिया में जो भीषण अन्याय किए गए, वे तो कुछ और ही तथ्य दर्शाते हैं।' इसीलिए इतिहासज्ञ टायनबी इस आकस्मिक वृद्धि के पीछे के इतिहास की चर्चा भी नहीं करना चाहते, तो यह उनका देशप्रेम, ब्रिटेन भक्ति है। परन्तु कोई भारत के अकादमिक विद्वानों से पूछने वाला मानो आज है ही नहीं कि 'श्रीमान, आप इस इतिहास को जो छिपा रहे हैं, वह किसकी भक्ति है। भारत की तो है नहीं।'

प्रसिद्ध ब्रिटिश सांसद विलियम डिग्बी ने ब्रिटिश सरकारी अभिलेखों के आधार पर लिखा है - 'इंग्लैंड की औद्योगिक श्रेष्ठता की जड़ों में हैं बंगाल और कर्नाटक के वे विराट संसाधन जो उसे इस्तेमाल के लिए उपलब्ध कराए गए। ...... प्लासी-युद्ध में विजय के पहले हमारे देश के उद्योग अत्यन्त दयनीय दशा में थे। भारत से इंग्लैंड जो दौलत लगातार पहुँची, वही इस औद्योगिक उन्नति का आधार बनी।[10]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत के धन से इंगलैंड की अभूतपूर्व तरक्की

समृद्ध भारत की लूट ने इंग्लैंड को वह प्रारम्भिक पूँजी-संचय उपलब्ध कराया जो 18वीं शती ईस्वी के मध्य का इंग्लैंड कभी सोच भी नहीं सकता था। उस युग के तथाकथित वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए गतिदायक ऊर्जा के रूप में ऐसी विराट पूँजी का मिल पाना और उसका प्रयोग कर पाना तो दूर की ही बात रह गई होती। प्लासी के युद्ध-नाटक के बाद ही 1760 ई. में ही तो 'औद्योगिक क्रांति' प्रारम्भ हो सकी। प्लासी एवं वाटरलू-संग्राम के बीच की अवधि में लगभग 100 करोड़ पौंड यानी लगभग पन्द्रह अरब रुपये भारत से लूट के जरिए हड़पे गए और इंग्लैंड हस्तांतरित किए गए अर्थात ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेवक प्रतिवर्ष 25 करोड़ रुपए भारत से लूट रहे थे और भारत को इस धन से वंचित कर रहे थे। (यह रकम उस समय के मूल्य-स्तर से सम्बद्ध है, आज उसका मूल्य कई गुना अधिक ठहरेगा। सम्भवत: लगभग 1000 गुना यानी 2,50,000 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष।)

उनकी तरक्की, हमारी कंगाली परस्पर सम्बद्ध

प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान ब्रुक्स एडम्स ने लक्षित किया है -'प्लासी युद्ध के तत्काल बाद, बंगाल की लूट शुरू हो गई और लूट का माल लंदन पहुँचने लगा। इसके आश्चर्यजनक परिणाम नजर आने लगे। सभी अधिकृत विद्वानों की इस बात पर सहमति है कि 1760 ईस्वी के बाद ही वह 'औद्योगिक क्रान्ति' शुरू हुई जिसने 19वीं शती ईस्वी को अभूतपूर्व युग बना दिया।' अभूतपूर्व किसके लिए? समृद्धि की दृष्टि से ब्रिटेन के लिए। कंगाली की दृष्टि से भारत के लिए।

कार्य-कारण सम्बन्ध

यह भी कहा गया कि भारतीय धन-सम्पदा की निकासी के आरम्भ का कारण-कार्य सम्बन्ध है ब्रिटिश उद्योगों के तेजी से उत्कर्ष से। 'यह रिश्ता आनुषंगिक या 'आकस्मिक' नहीं है अपितु इनमें परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है।' इसे ब्रुक्स एडम्स इस प्रकार स्पष्ट करते हैं- 'प्लासी की लड़ाई 1757 में लड़ी गई है। उसके बाद जिस तीव्र गति से परिवर्तन घटित हुए, वह अतुलनीय है। 1760 ई. में विमानों की उड़ान का पहला प्रयोग हुआ। भट्टियों में लकड़ी की जगह कोयला आ गया। 1764 में हरग्रीव्ज ने कताई-मशीन का आविष्कार किया। 1760 में क्राम्पटन ने 'खच्चर' की खोज कर डाली। 1785 में कार्टराइट ने पावरलूम का पेटेन्ट कराया। उससे पूर्व 1768 में वाट ने भाप-इंजिन के आविष्कार में सफलता पाई जो ऊर्जा के केन्द्रीयकरण का पूर्ण सफल प्रयोग था। इन मशीनों ने समय की गति तीव्र करने में सहायक माध्यम का काम किया। परन्तु तीव्र गति का मूल कारण ये मशीनें नहीं थीं। मूल कारण तो रहा भारत से ब्रिटेन के धन का निर्बाध आयात। भारतीय खजाने के प्रवाह ने ही गतिशील धन के रूप में इन सब आविष्कारों का पोषण किया एवं उनका व्यवहार सम्भव बनाया। अन्यथा ये आविष्कार स्वयं में तो किसी गति को जन्म दे नहीं सकते थे। उनमें से अधिकांश तो शताब्दियों तक अप्रयुक्त ही पड़े रह जाते। आविष्कारों को प्रयोग में लाने के लिए धन चाहिए। धन ही बल का वह भंडार है जो इन सब को गतिवान बनाने में समर्थ है। भारतीय धन का प्रवाह इंग्लैंड पहुँचने से पहले और उसके परिणामस्वरूप सूद के व्यापार का विस्तार होने से पहले ऐसी कोई शक्ति इंग्लैंड के पास थी नहीं। यह धन सुलभ न होता तो सारे आविष्कार धरे रह जाते। वाट ने भाप के इंजिन का प्रयोग पचास वर्षों पूर्व किया होता तो वह और उसका आविष्कार दोनों ही एक साथ यूँ ही नष्ट हो जाते।

बेजोड़ लूट से हुई बेजोड़ तरक्की

लेखक आगे कहते है- 'जबं से संसार शुरू हुआ, शायद तब से आज तक कभी भी किसी आविष्कार ने वैसा लाभ नहीं दिया, जैसा लाभ इंग्लैंड को भारत की लूट से मिला। लगभग पचास वर्षों तक ग्रेट ब्रिटेन लूट के धन के मामले में बेजोड़ रहा, उसकी होड़ में कोई भी नहीं था। 1694 ईस्वी से प्लासी-युद्ध (1757 ईस्वी) तक गति मंद रही। 1760 ईस्वी के बाद वृद्धि अत्यन्त तीव्र हो गई और इसने असाधारण एवं अस्वाभाविक स्तर प्राप्त किया।"[11]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

‘द इंडस्ट्रियल हिस्ट्री ऑव माडर्न इंग्लैंड’ के लेखक पेरीस ने नोट किया है कि प्लासी के युद्ध के तत्काल बाद ही आविष्कारों की शृंखला सामने आई। यह तथ्य इसका संकेतक है कि सामाजिक दशाएँ अब जाकर इसके लिए अनुकूल बनी थी। पहले के आविष्कारों से तो कोई लाभ नहीं उठाया जा सका था।’[12]

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1733 में ‘के’ ने अपने उड़नखटोले को पेटेन्ट कराया। 1738 में याट ने उस रोलर–स्पिनिंग मशीन को पेटेन्ट कराया जो पनचक्की से चलती थी। इनमें से किसी भी आविष्कार का वर्षों तक कोई इस्तेमाल हुआ नहीं दिखता। स्पष्ट है कि भारत से लूटी गई पूँजी से सम्पन्न बना ब्रिटेन ही आविष्कारों का लाभ उठा सकने की स्थिति में आ पाया। केवल आविष्कारों से प्रगति नहीं होती। तो फिर, भारत किसे लूटे? क्या पूरी दुनिया को? गांधीजी ने यही तो कहा था कि ब्रिटेन जैसी तरक्की के लिए तो भारत को दुनिया को कई बार लूटना होगा, हम उसे राक्षसी प्रवृत्ति मानते हैं।

इसी प्रकार ब्रिटिश औद्योगिक इतिहास के अग्रणी अधिकारी विद्वान डब्लू.कनिंघम ‘ग्रोथ आफ इंग्लिश इंडस्ट्री एंड कामर्स इन मार्डन टाइम्स’ में लिखते हैं कि ‘वैज्ञानिक आविष्कारों का युग’ किसी विशेष एवं अवर्णनीय आविष्कारक प्रतिभा का विस्फोट नहीं था, अपितु वह पूँजी का प्रचुर संचय था जिसने इन आविष्कारों का उपयोग बड़े पैमाने पर सम्भव बनाया। इस प्रकार जहाँ आर्करराइट और वाट भाग्यवान थे, विलियम ली या डोडो डडले भाग्यरहित या दुर्भाग्यशाली थे। यानी वैज्ञानिक प्रतिभाएँ सम्पन्न समाज में ही उचित महत्व पाती हैं और उनका उपयोग वहीं सम्भव है। लूट के माल के बिना सारे आविष्कार यों ही पड़े रहे जाते।[13]

महँगे उपकरणों या मूल्यवान प्रक्रियाओं का प्रचलन बड़े पैमाने पर पूँजी–निवेश की अपेक्षा रखता है। कोई व्यक्ति कितना भी ऊर्जावान हो, जब तक उसके पास पर्याप्त पूँजी न हो तथा बड़े पैमाने पर बाजार उसे सुलभ न हो, वह किसी आविष्कार या प्रक्रिया को प्रयोग में लाने की पहल ही नहीं कर सकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

18वीं शताब्दी में ऐसी अनुकूल दशाएँ बनीं इसीलिए ऐसा उपयोग सम्भव हुआ। ये अनुकूल दशाएँ भारत की लूट से बनीं।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

17वीं शताब्दी में इंग्लैंड का बैंक अपने बूते पर इतनी बड़ी पूँजी उपलब्ध करा पाने में पूरी तरह अक्षम था और 18वीं शताब्दी का मध्य आते-आते भी उसकी स्थिति कोई बहुत बेहतर नहीं थी क्योंकि बैंकों की पूँजी अभी भी बहुत नगण्य थी। अत: बाद के वर्षों में अचानक स्थिति के बदल जाने का कारण आखिर क्या हो सकता था? मार्क्स ने तो उस संदर्भ में खुलकर कह डाला कि वह पूँजी आई थी सर्वाधिक भारत की लूट से। एक दूसरे विद्वान ने इस भारतीय लूट को 'उर्वर बनाने वाला अभिकर्ता' की संज्ञा दे डाली है जिसने कि ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रांति के लिए उपयोगी भूमि तैयार की। अब हम बड़े ही इत्मीनान से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं जिसका संकेत विलियम डिग्बी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया, ए रेवलेशन फ्राम द ऑफिशियल रिकॉर्डस', में दिया है- 'आधुनिक यूरोपीय राष्ट्रों की समृद्धि का अधिकांश तो प्राचीन सभ्यताओं वाले राष्ट्रों की लूट पर आधारित है।'[14]

18वीं शती में और ब्रिटेन में ही क्यों हुई औद्योगिक क्रान्ति ?

ऊपर दिए गए विवरण इस प्रकार के तर्कों की अतार्किकता का खुलासा करते हैं जिनके अनुसार औद्योगिक क्रांति तकनीकी के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का परिणाम थी, उत्पादन की तकनीकी और नित्य खोजों के द्वारा तेज होती हुई उसकी रफ्तार अेर इनके फलस्वरूप हो रहे परिवर्तन आर्थिक संगठन या आर्थिक गतिविधियों की संरचनात्मक व्यवस्था के कारण घटित हुए। यहाँ तक कि वे विद्वान भी जिन्होंने काफी बातों के लच्छे उतारे हैं (जैसे हॉब्सबॉम) औद्योगिक क्रांति की उत्पत्ति अथवा विकास को लेकर वे भी इस संबंध में कुछ बहुत ही मूलभूत प्रश्नों के प्रति अपनी जवाबदेही को टाल रहे हैं। जैसे कि एक बुनियादी सवाल यह है कि औद्योगिक क्रांति का जन्म ब्रिटेन में ही क्यों हुआ ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरा प्रश्न यह है कि वह घटना भी १८वीं शताब्दी में ही क्यों घटी। पहले या बाद में क्यों नहीं।

इस बहुचर्चित औद्योगिक क्रांति का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू वह रहा है जिस पर प्रकाश डाला है प्रसिद्ध इतिहासकार एच.एच. विल्सन ने जो कि एक प्राच्यवेत्ता विद्वान होने के साथ भारत में रायल एशियाटिक सोसाइटी के उच्च पदाधिकारी भी रहे। उनके शब्दों में 'पेस्ले और मेन्चेस्टर की मिलें खुलते ही बन्द हो गई होतीं, भले ही आपकी ताकत मौजूद रहती। इन मिलों का चलना भारतीय वस्त्र-निर्माताओं के उत्सर्ग पर निर्भर था।' [15]

औद्योगिक क्रान्ति का दायरा

आश्चर्य होता है, किन्तु फिर भी इंग्लैंड में रुई उद्योग की शुरुआत ही इस महान घटना के पीछे की सच्चाई थी जिसे लोगों ने औद्योगिक क्रांति की शुरुआत कहकर पुकारना शुरू कर दिया।

'जो कोई भी कहता है 'औद्योगिक क्रांति', वह वस्तुत: कहता है 'कपास।' [16]

'कपास के कपड़े ही औद्योगिक क्रांति का मुख्य तत्व है।' [17]

'औद्योगिक परिवर्तन की धुरी कपास ही है।' [18]

इंग्लैंड कभी-भी रुई पैदा करने वाला देश नहीं रहा है और सामान्य लोकप्रिय धारणा के विपरीत इंग्लैंड को आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रचलित सिद्धान्त 'तुलनात्मक लागत' का लाभ भी सुलभ नहीं था। जहाँ तक रुई के कारण कपड़े बनाने का सवाल था, शताब्दियों से इंग्लैंड का पारम्परिक वस्त्र उद्योग ऊनी (न कि सूती) वस्त्रों का उद्योग रहा था। कच्ची रुई के लिए तो वह पूरी तरह से उपनिवेशों से प्राप्त माल पर ही निर्भर करता रहा था। 18वीं शती का अन्त आते-आते भी, यानी तथाकथित औद्योगिक क्रांति के शुरू होने के 40 साल बाद तक भी ऊनी वस्त्र उद्योग ही इंग्लैंड का सबसे बड़ा उद्योग रहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

18वीं शती ई. के आरम्भ तक भारत का ही कपड़ा छाया था यूरोप में

'18वीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप को जिस एकमात्र शुद्ध सूती वस्त्र-उद्योग की जानकारी थी, वह भारत का ही सूती कपड़ा उद्योग था। जिसके वस्त्र ईस्ट ट्रेडिंग यूरोपीय कम्पनियाँ भारत से खरीद कर अपने देश में एवं अन्य देशों में बेचती थीं। इन कपड़ों को अपने यहाँ बेचे जाने का प्रचंड विरोध वहाँ के ऊनी, रेशमी एवं 'लिनेन' वस्त्रों के निर्माता करते थे।'[19]

उल्लेखनीय बात यह है कि औद्योगिक क्रांति शुरू होने (1760) के 100 साल बाद तक भी सूती वस्त्र उद्योग ही वहाँ वर्णन करने लायक उद्योग था और वह भी तब जब इंग्लैंड में रुई की पैदावार तो होती ही नहीं थी। कच्ची रुई/कपास की उपलब्धता तो उसके लिए केवल उसके उपनिवेश ही सम्भव बनाते थे।

भारतीय बुनकरों को इंग्लैंड ले जाया गया

1770 के दशक से पहले हो रहे सर्वथा महत्वहीन, तकनीकी, एवं संरचनात्मक विकास पर प्रकाश डालते हुए कार्लो एम. सिपोला अपनी पुस्तक 'द इमर्जेन्स आफ इंडस्ट्रियल सोसाइटीज' में संकेत करते हैं कि इंग्लैंड में हुए तथाकथित प्रसिद्ध प्रारम्भिक वस्त्र उद्योग सम्बन्धी खोजें, उदाहरण के तौर पर 'के' द्वारा खोजी गई ढरकी या भरनी, जिसे 1730 के दशक में लोगों ने जाना है, जो 1750 एवं 1760 तक व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल में लाया गया एवं पाल की 'कार्डिंग मशीन' (जिसे 1748 में पेटेन्ट किया गया व 1760 के दशक में लोकप्रिय हो पाई), ऐसे उद्योग में लगाई जा रही थी, जिसका, देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में आधा प्रतिशत से भी कम योगदान था। जब आर्थर यंग ने 1770 में अंग्रेजों की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया तब, यह हालत थी कि उसे इंग्लैंड में चल रहे सूती वस्त्र उद्योग पर ध्यान देने जैसी कोई बात सूझी ही नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शताब्दी का अन्त होने के पहले इसका योगदान इंग्लैंड की राष्ट्रीय आय में 10 गुना से ज्यादा हो चला था और 19वीं शती के पहले दशक में यह नया सूती वस्त्र उद्योग देश की सालाना राष्ट्रीय आय में, वहाँ के ऊनी वस्त्र उद्योग से भी ज्यादा बढ़ोत्तरी दिखा रहा था। ऊनी वस्त्रोद्योग 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड का सबसे बड़ा उद्योग था। 18वीं शताब्दी के आखिरी 25 सालों में इन तकनीकी परिवर्तनों एवं खोजों का परिणाम सूती वस्त्र उद्योग में ही विशेष रूप से देखने को मिलता है और सूती वस्त्रों के निर्माण सम्बन्धी तकनीकी में ही सबसे अधिक प्रगति नजर आती है।[20]

जो तथ्य इंग्लैंड छिपाने की कोशिश करता है, परन्तु जिसके संकेत भरे पड़े हैं, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय श्रेष्ठ बुनकरों को लंदन ले जाकर वहाँ वस्त्र-तकनीक सीखी गई। साथ ही, भारत आकर भी अंग्रेज कारीगरों ने यहाँ की तकनीक सीखी। तभी जाकर वे कुछ ठीक-ठीक कपड़ा बना पाए। बेचारों ने मेहनत तो बहुत की। पर तथ्यों को छिपाते क्यों हैं?

इस्पात की तकनीक भी भारत से सीखी

यहाँ पर यह भी बताना समीचीन है कि दूसरा क्षेत्र, जिसमें 18वीं शती में हुई खोजें/आविष्कार अपना रंग दिखा रहीं थी, वह था लौह-उद्योग। यद्यपि कि वहाँ हुई प्रगति की रफ्तार वह नहीं थी जो सूती वस्त्र उद्योग में देखने को मिलती है। सूती वस्त्र उद्योग एवं उसका कृत्रिम रूप में इंग्लैंड में आरोपित किया जाना इस विषय में महत्वपूर्ण जानकारियाँ देने वाले ब्रिटेन के आर्थिक इतिहास के लेखक ब्रिग्स एवं जार्डन यह स्पष्ट रूप से खुलासा करते हैं कि 'सूती वस्त्र उद्योग का उभरना तो यहाँ अपेक्षाकृत नया ही था, उसकी नींव ही पड़ी योरोप को 'ईस्ट इंडिया काटन' से परिचित कराने के लिए।' लौह-उद्योग में ब्रिटिश प्रगति भी भारत के इस्पात-उद्योग का विस्तृत अध्ययन अंग्रेजों द्वारा किए जाने के बाद ही सम्भव हुई, जिसका वर्णन श्री धर्मपाल ने अपनी पुस्तक में विस्तार से किया है। भारत के लौह-उद्योग को अंग्रेजों ने किस रूप में कितनी हानि पहुँचाई, इसका विस्तृत अध्ययन होना अभी शेष है।'[21]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो बात छिपाई जाती है, वह यह कि अनेक श्रेष्ठ भारतीय लुहारों को इंग्लैंड ले जाया गया तथा इंग्लैंड के लुहारों को भी भारत लाकर सिखाया गया, तभी इंग्लैंड इस्पात-तकनीक में बढ़ा। इंग्लैंड की छोटी-छोटी फैक्टरियों में चोरी-छिपे घुसकर या नौकरी कर किस प्रकार जर्मन, फ्रेंच आदि चोरी-छिपे इ्पात तकनीक सीखते थे- इसके तथ्य आज सुलभ हैं। हमारे द्वारा इन सब पर शीघ्र ही एक अलग पुस्तक में विवरण प्रकाशित किए जाएँगे।

सूती वस्त्रों में क्रमश: प्रगति

ब्रिग्स एवं जार्डन आगे लिखते है -'बनाए गए सूती वस्त्र थोड़े उपयोगी थे और उनका बाजार असीमित सम्भावनाओं वाला था। कच्चा माल आसानी से सुलभ था। दक्षिणी लंकाशायर की जलवायु नम थी, वहाँ बढ़िया सूती कताई सम्भव नहीं थी। इस दृष्टि से आविष्कारों की जरूरत थी। .... कपास का आयात मुख्यत: भारत से बहुत समय से किया जा रहा था। सूती वस्त्रोद्योग इंग्लैंड में सम्भवत: छोटे पैमाने पर शुरू हुआ....क्रमश: लंकाशायर इसका केन्द्र बना।'[22] भारतीय बुनकरों एवं शिल्पियों की मदद से यह विकसित हुआ।

फिर, 'सुदूर पूर्व से छापा वस्त्रों के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया गया। केवल ऐसे आयात की (कच्चे माल के रूप में) अनुमति थी जिसका पुन: निर्यात किया जाए। इससे लंकाशायर का व्यापार फैलने में महत्वपूर्ण मदद मिली। प्रतिबंध के बाद, वे सम्भ्रान्त अंग्रेज औरतें जो सूती वस्त्रों की अभ्यस्त हो गई थीं, लंकाशायर में बने सूत और लिनेन के मिश्रित वस्त्रों को अपनाने लगीं।'[23] उदारीकरण और खुली अर्थ-व्यवस्था की आधुनिक बातें करने का साहस तब यूरोपीयों में नहीं था, क्योंकि तब वह भारत के तथा अन्य अफ्रीकी एशियाई देशों के पक्ष में जाता।

भारत में बने वस्त्रों का बहिष्कार करने की अपील

अंग्रेज वस्त्र-निर्माताओं की मदद के लिए पूर्व से छापा लगे वस्त्रों का आयात 1700 ईस्वी से प्रतिबंधित कर दिया गया। कानूना बना दिया कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केवल ब्रिटेन में बने सूती वस्त्र पहनें। तब भी, पूरी 18वीं शताब्दी में चुपके-चुपके भारतीय वस्त्रों की तस्करी जारी रही। क्योंकि उनकी प्रचंड मांग थी। 1775 ईस्वी में देशभक्त अंग्रेजों की एक सोसाइटी एडिनबरा में बनी। यह सोसाइटी लोगों से अपील करती थी कि 'उन स्त्रियों का बहिष्कार करें जो भारत में बने वस्त्र पहनती हैं। (डब्लू. डब्लू. लॉकवुड – द इकानामिक डेवलपमेंट ऑव जापान, पृ. 327, पाद टिप्पणी 11)। मांटो ने 'द इंडस्ट्रियल रिवाल्यूशन इन एटीन्थ सेन्चुरी' में (पृ.208 पर) लिखा है- 'कच्चा माल विदेश से मँगाकर इंग्लैंड में कपड़े बनाए जाते थे। 1770 ईस्वी में भारतीय वस्त्रों का पहनना प्रतिबंधित कर दिया गया, तभी इंग्लैंड में बने सूती कपड़े लोगों ने स्वीकार किए।'[24] भारत का स्वदेशी वस्त्र आंदोलन बहुत बाद में, इसी की प्रतिक्रिया में चला। इंग्लैंड ने तो 18वीं शती ई. के आरम्भ में ही भारतीय वस्त्रों का बहिष्कार और स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार शुरू कर दिया था।

भारत के शत्रुओं को भारत का मित्र बताना बौद्धिक अतिचार

एक व्यापक सिद्धान्त यह था कि इंग्लैंड को अपना सम्पूर्ण निर्मित माल बलपूर्वक भारत पर लादना है और भारत का एक भी निर्मित माल अपने यहाँ नहीं आने देना है। कपास के आयात की अनुमति कच्चे माल के तौर पर थी। वे कहते:- 'मशीनों के जरिए हम बेहतर वस्त्र तैयार कर सकते हैं, भारत से सस्ता। तुम्हारे लिए भी कपड़ा हमीं तैयार करेंगे।'[25] सौदागरों और व्यापारियों की तो नीयत ही यह रहती है। पर इसे एक दार्शनिक आवरण देने का प्रयास अनावश्यक बड़बोलापन है। इसी प्रकार, भारत के वस्त्रों पर प्रतिबंध लगाकर, अपना वस्त्र भारत में बलपूर्वक बेचने वालों और उनके समर्थकों को 'भारत का मित्र' कहना भी अतिचार है। वे वस्तुतः तो भारत के शत्रु थे, उनका आचरण भारत के शत्रु का आचरण था। समस्त भारतीय निर्मित वस्तुओं के विनाश की सलाह देना शत्रुता के सिवाय क्या है। आज भारत के भी कई लेखक उन तत्कालीन अंग्रेजों को भारत का मित्र बताते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुद का सामान जबरन बेचा

डब्लू. ई. एच. लेकी, जिसने 18वीं शताब्दी के इंग्लैंड के इतिहास पर 7 खण्डों का एक ग्रंथ लिखा है, बताते हैं कि शायद ही इंग्लैंड का बना कोई ऐसा सामान हो, जिसे व्यवहार में लाने के लिए दूसरों के सामानों पर पाबन्दियों का प्रावधान कर उसकी किलेबन्दी न की गई हो।[26]

इसी प्रकार, हमें इस संदर्भ में एच.एच. विल्सन की गवाही भी नहीं भूलनी चाहिए जिसमें वे कहते हैं –'अगर भारतीय वस्त्रों पर पाबन्दी नहीं लगाई गई होती और भारतीय माल पर प्रतिबंधक आदेश तथा भारी चुंगी का प्रावधान न होता, तो पेसले और मेन्चेस्टर की मिलें शुरू में ही बंद हो गई होती। भाप का इंजन भी उन्हें चला नहीं पाता। भारतीय वस्त्र निर्माताओं के बलिदान पर इन मिलों की गति निर्भर थी। यदि भारत समर्थ होता तो उसने इस अन्याय का बदला जरूर लिया होता। तब वह भी ब्रिटिश माल पर प्रतिबंधक चुंगी लगाता। तब, अपने उद्योगों का वह समूल उच्छेद न होने देता, उनकी रक्षा करता। ब्रिटिश माल पर भारत में कोई चुंगी नहीं था। वह भारतीयों पर जबरन लादा जा रहा था, विदेशी (ब्रिटिश) निर्माताओं ने भारी राजनैतिक अन्याय करते हुए अपने भारतीय प्रतिस्पर्धी को पहले तो नीचा दिखाया, फिर उसे जकड़कर रख दिया। समान शर्तें होतीं तो भारतीय माल के सामने ब्रिटिश माल टिक ही नहीं सकता था। वैश्वीकरण तब भारत के पक्ष में जाता।'[27]

माल श्रेष्ठ नहीं था, अत्याचार से थोपा गया

एक दूसरे महत्वपूर्ण ब्रिटिश अधिकारी डॉ. मार्टिन भी अपनी यही राय देने से नहीं चूकते। वे कहते हैं कि यद्यपि ब्रिटिश सामानों को– 'अकसर ब्रिटिश लोगों की उत्कृष्ट निर्माण क्षमताओं के नमूने के रूप में देखा जाता है किन्तु सच्चाई यह है कि सब कुछ अंग्रेजों के अत्याचार का ज्यादा ज्वलन्त उदाहरण है, ब्रिटिश सामानों की उत्कृष्टता का कम। 'भारत में अपनी भयंकर कर-व्यवस्था थोपकर कैसे उसे गरीबी की ओर खदेड़ा है'– इस पर कई अध्ययन हुए हैं।[28]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उद्योगनीति नहीं युद्धनीति

और आखिर में हॉब्सबॉम का कथन देखें– 'हमारी औद्योगिक क्रान्ति के पीछे निहित है उपनिवेशों पर ध्यान केन्द्रित कर तथा समुद्रपारीय अविकसित बाजारों पर कब्जा कर, वहाँ एकाधिपत्य जमाने की युद्धनीति, जिसके तहत वहाँ किसी अन्य को प्रवेश नहीं करने दिया गया।'[29] स्पष्ट है कि ऐसे प्रामाणिक तथ्यों एवं अधिकारी विद्वानों के अभिमत के सामने वह बहुप्रचारित 'परमप्रिय' मिथक कहीं टिक नहीं पाता कि औद्योगिक क्रान्ति के मूल में वैज्ञानिक आविष्कार है। यह मिथक परीक्षण में ध्वस्त हो जाता है।

क्रूरता और छल ही थे असली ताकत

इतने सारे खुले तथ्यों एवं उस संदर्भ में बहुत से अंग्रेजों की राय के समक्ष ऐसे भ्रम किसी भी गम्भीर विश्लेषण की कसौटी पर खरे उतर पाने में पूरी तरह अक्षम हैं। सार यह कि यह सब कुछ हमें बताता है कि वह असली ताकत कौन-सी थी जिसके चलते ब्रिटेन के आर्थिक तंत्र का इतना चमत्कारिक रूपान्तरण हुआ वह भी इतने थोड़े समय में। इन तथ्यों के आलोक में हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि ब्रिटेन की तथाकथित सर्वोच्चता का भ्रम वास्तव में इसलिए फैलाया गया ताकि भारत से इसके सम्बन्धों में इन कलंकित पहलुओं को छुपाया जा सके। जैसे- (1) ब्रिटेन के सामानों को खपाने के लिए भारतीय उद्यम एवं उद्योगों को खत्म करना, (2) ब्रिटिश सामानों के विक्रय को बढ़ावा देने के लिए भारत में दो तरफा भेदभावपूर्ण कर-व्यवस्था को थोप डालना, (3) भारत को मुख्य रूप से एक कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था वाले देश के रूप में रूपान्तरित कर डालना, (4) उसे इंग्लैंड के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला बना देना आदि। अनेकानेक अनैतिक नियम-कानूनों को भारतीय उत्पादों पर लाद कर यह सब सिर्फ इसलिए किया गया कि अपने रास्ते से उस शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी को हटाया जा सके जिससे बराबर के स्तर पर इंग्लैंड के लिए व्यापार कर पाना मुश्किल हो रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन घोर पक्षपातपूर्ण नियम-कानूनों का प्रभाव दोनों देशों के आयात-निर्यात ढाँचे पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है-

(1) 1840 की संसदीय कमेटी के सामने जी.जी. लार्पेन्टे (ईस्ट इंडिया एसोसिएशन के अध्यक्ष) ने ब्रिटेन से भारत को निर्यात के आँकड़ों का खुलासा किया। 1814 में 818, 208 गज सूती कपड़ा भारत को निर्यात किया गया, 1821 में 1 करोड़ 91 लाख 38 हजार 726 गज, 4 करोड़ 28 लाख 22 हजार 77 गज और 1835 में 5 करोड़ 17 लाख 77 हजार 277 गज। यदि इसको और आसान करके समझा जाए तो 1814 से 1835 के बीच भारत को ब्रिटिश सूती कपड़े का निर्यात 8 लाख गज से बढ़कर 5 करोड़ 20 लाख गज के लगभग यानी 65 गुना बढ़ गया।[30]

अत: अब यह दोहराने की शायद आवश्यकता नहीं है कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति की सफलता को बड़े ही कृत्रिम रूप से सुनिश्चित किया गया है यानी एक बड़े देश की फलती-फूलती अर्थव्यवस्था को एक छोटी आदिमकालीन अर्थव्यवस्था की चरणदासी बनाकर। भारत वर्ष की पूरी व्यवस्था को ही ब्रिटेन के व्यापारी एवं नवजात उद्यमी वर्गों की अन्तहीन भोग क्षुधा एवं धन-तृष्णा को शान्त करने के लिए पूरी तरह से उलट-पलट दिया गया। इतने सारे साक्ष्यों की उपस्थिति में हमें इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए कि भारत ने औद्योगिक क्रांति के बीज बोए जबकि इंग्लैंड ने उसकी तैयार फसल को काटा।

1850 के बाद की ब्रिटिश नीति पर एक नोट

भारत को लगभग 'पिछड़ेपन' की ओर ठेलते हुए ब्रिटेन में विकास की गति को तीव्र से तीव्रतर करने की पुरानी प्रक्रिया अभी भी बन्द नहीं हुई थी क्योंकि अगर ऐसा न हुआ होता तो संसार का इतिहास कुछ और ही होता। सामान्यतया जो माना जाता है, उसके ठीक विपरीत 1850 के दशक तक भी ब्रिटेन के उद्योग-धन्धे आत्मनिर्भर नहीं थे। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक वे परनिर्भर थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आर्थिक समृद्धि आ जाने पर भी पुरानी ही प्रक्रिया बदस्तूर चलती रही। इस विषय पर अधिकांश साहित्य हमें यही जानकारी देता है कि 1850 तक ब्रिटेन के अधिकतम उद्योग पूरी प्रगति के दौर से गुजर रहे थे, ब्रिटेन अब तक संसार के लिए एक बड़ा कारखाना बन चुका था।

किन्तु फिर यहाँ कहना पड़ेगा कि इन उद्दण्ड दावों की सच्चाई पुन: खुल जाएगी अगर हम ब्रिटिश शासन द्वारा अपनाई कराधान नीतियों के मात्र कुछ (ज्यादा न सही) उदाहरण उठा लें।

भारतीय उद्योग को बढ़ावा देना भारत के हित में नहीं है ?

प्रथम उदाहरण: 1857 ई.के बाद के वर्षो में ब्रिटिश सरकार ने अपने को बीहड़ आंतरिक समस्याओं में उलझा हुआ पाया और उससे निजात पाने के लिए ब्रिटिश सूती वस्त्रों के आयात पर 10 प्रतिशत (1859) एवं सूती धागों पर 5 प्रतिशत की दर से कर लगा दिया किन्तु 1862 तक आते-आते यानी सिर्फ 3 साल में इसको घटा कर क्रमश: 5 और 3.5 प्रतिशत कर दिया। यह सारी व्यवस्था भारत में अंग्रेजी सरकार की आर्थिक उलझनों को राजस्व बढ़ाकर, दूर करने के लिए की जा रही थी। न कि भारत के सूती वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए जैसा कि कई विद्वान मान बैठे।

किन्तु सर्वाधिक विलक्षण बात यह रही कि इंग्लैंड के तथाकथित 'विशाल' लंकाशायर के व्यापार इतनी मामूली सी ड्यूटी भी अपने सामानों पर बर्दाशत नहीं कर सके और उन्होंने वहाँ इस बात का शोर मचाना शुरू किया कि यह ड्यूटी उनके व्यापार के लिए एक बहुत बड़ा अंकुश था और यह कि भारत के सूती वस्त्र उद्योग के लिए यह एक सुरक्षा का काम कर रही है और करेगी। इस पूरे शोर-शराबे का मतलब मात्र यह था कि लंकाशायर का व्यापार बड़े खतरे में है। सौभाग्यवश, उनके लिए उसी समय इंग्लैंड के चुनाव होने वाले थे जिनमें लंकाशायर के वोट बैंक का प्रभाव किसी भी सरकार के बनने-बिगड़ने में एक अहम् भूमिका अदा कर सकता था। अपनी इस ताकत का अहसास रखते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुए, मेन्चेस्टर चेम्बर ऑफ कामर्स ने तत्कालीन भारत सचिव को 31 जनवरी, 1874 को एक आवेदन पेश किया- उन्हें इस बात के प्रति जागरुक कराने के उद्देश्य से कि (अ) भारत की ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाई गई ड्यूटी उनके सूती एवं खुरदरे कपड़ों के व्यापार के लिए बहुत बड़ी बाधा है। (ब) इस प्रकार की ड्यूटी भारत के सूती वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देगी व इस काबिल बना देगी कि वह इंग्लैंड से आयातित सामानों के साथ खुली प्रतिद्वन्द्विता कर सकें। (स) उस तरह की सुरक्षा भारत व ब्रिटेन दोनों के ही फायदे में नहीं है। (द) भारत की जनता खासतौर पर गरीब जनता इस प्रकार की नीति से बड़े ही कष्ट में आ जाएगी और आखिरी बात यह कि (इ) भारतीयों का स्वास्थ्य, खुशहाली व ऐशो-आराम सभी कुछ ब्रिटिश सरकार की इस नीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे।[31] भारत के वस्त्र-उद्योग को बढ़ावा देना भारत के हित में नहीं है, ऐसा बेशर्म कथन किस प्रकार के लोग कर सकते हैं, सहज समझा जा सकता है।

इसी तरह से मेन्चेस्टर चेम्बर ऑफ कामर्स ने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि ब्रिटिश सामानों पर भारत में जो आयात कर लगाया गया है उसे तत्काल वापस लिया जाए। सच्चाई यह है कि वे सब भारत में सूती मिलों के खुलने की नई सम्भावना से आतंकित हो उठे।[32]

यहाँ पर ध्यान देने योग्य यह है कि उस समय के ब्रिटिश वायसराय (1876) लार्ड नार्थ ब्रुक को तत्काल इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया गया - इसी मुद्दे पर क्योंकि वह व उसकी काउन्सिल सूती धागों और सूती वस्त्रों पर लगाई गई चुंगी एवं शुल्क हटाने के लिए तैयार नहीं थे। काउन्सिल का इस विषय पर स्पष्ट अभिमत था कि मात्र 5 फीसदी की ड्यूटी (जो कि ब्रिटिश सामानों के आयात पर उनके मूल्य के अनुरूप लगाई गई है) किसी भी मापदंड से भारतीय उद्यमियों के लिए सुरक्षा कवच नहीं प्रदान करती और ऐसी ड्यूटी को हटा लेना बिल्कुल वांछनीय नहीं है जिससे भारत में असन्तोष भड़क सकता है और जिससे ब्रिटिश भारतीय सरकार को 8,00,000 पौंड का राजस्व मिल रहा हो।[33]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लार्ड नार्थ ब्रुक के इस्तीफे के बाद भारत में जो कुछ हुआ, वह स्वयं में एक टिप्पणी है। लार्ड नार्थब्रुक के बाद भारत का वाइसराय बनाकर लिट्टन को भेजा गया जिसने लंकाशायर के आदेशों का भारत में अक्षरश: पालन किया।

भयंकर भेदभाव को ही फ्री ट्रेड कहना

ऊपर दी गई चर्चा से दो बिन्दु स्पष्ट उभर कर आते हैं -

1. ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग की सफलता, उस पक्षपातपूर्ण शुल्क व्यवस्था पर टिकी थी, जिसका प्रत्यक्ष शिकार और कोई नहीं बल्कि भारत था। उस समय जब इंग्लैंड अपने देश में बड़े-बड़े उद्योगों के होने का दम्भ भर रहा था, सारी दुनिया को वस्त्र पहनाने का दावा कर रहा था, 'मुक्त-व्यापार' का डंका पीट रहा था (और यह सब तब जबकि वह लगातार भारत के पुरातन कपड़ा-उद्योग व उद्यम का गला घोंटता चला जा रहा था। ब्रिटेन का उद्यमी वर्ग, अपने व्यापार के सुरक्षित रूप में चल पाने के लिए, 'कर के रूप में सुरक्षा कवच' पर आश्रित था, और ऐसी स्थिति में एक छोटी-सी तुच्छ 5 प्रतिशत एवं 3.5 प्रतिशत की दर से लगाई गई ड्यूटी भी उसको नागवार गुजरी, वह भी इस हद तक कि इंग्लैंड के 'काटन गॉरमेन्ट्स' के शीर्ष व्यापारियों ने इसको अपने जीवन-मरण का मुद्दा बना डाला और डिजरायली की सरकार ने जो कि 1874 के चुनावों में चुनी गई, उसे राष्ट्रीय राजनीति का एक मुद्दा बनाने की घोषणा की।

2. भारत की औद्योगिक प्रगति के प्रति ब्रिटिश राजनीतिज्ञों एवं उद्यमी वर्ग के भयंकर रूप से आक्रमक नजरिए को यह कतई गवारा नहीं था कि भारत में किसी भी तरह उद्योग-धन्धों का प्रचलन हो। भारत में कपड़ा मिलों के उद्योग आने से ब्रिटिश उद्यमी वर्ग इतना अधिक सतर्क हो गया कि उन्होंने भारत सचिव को इस विषय पर लगातार दरख्वास्त देनी शुरू की, इस बात की अपील करते हुए कि भारत में उनके विकास को रोका जाए। यहाँ तक कि ब्रिटेन की सर्वोच्च राजनीतिक संस्था ने एक प्रस्ताव पारित कर डाला-' भारत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरकार को निर्देशित करते हुए कि इस टैक्स को तत्काल बढ़ा दिया जाए। दलील यह दी गई कि इस तरह के टैक्स ब्रिटेन की 'तर्कसंगत व्यापारिक नीति' के विपरीत हैं। क्योंकि वह भारतीय उद्योगों को बढ़ावा दे रहे हैं।[34]

भारत की विपदा का लाभ उठाकर उसे और दबाया

इस तरह से ब्रिटिश कॉटन उद्यमियों के आक्रामक एवं विद्वेषपूर्ण प्रचार तंत्र को जब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की मदद उपलब्ध हो गई, तब तो निम्नलिखित परिणाम निकलने ही थे-

(1) ब्रिटेन के मोटे एवं खुरदुदे सूती कपड़े तथा कपास के सूत इत्यादि पर लगी आयात ड्यूटियाँ तुरन्त वापस ले ली गई और यह उस समय किया गया जब भारतीयों के लिए वह वर्ष 'अकालों, युद्धों एवं भयंकर करों के आशातीत दबाव' का वर्ष था। वस्तुत: उन दिनों दक्षिणी भारत 1877 के मद्रास इलाके में फैले अकाल से उबर नहीं पाया था और उत्तर भारत में 1878 का अकाल फैला था। साथ ही अफगानिस्तान के मोर्चे पर युद्ध चल रहा था और बजट घाटे का था।

(2) इसी की जगह एक नई 5 प्रतिशत ड्यूटी थोपी गई एक विशिष्ट प्रकार के कपास के धागों के आयात पर जिनका उपयोग भारत में बढ़िया वस्त्र बनाने के लिए भारतीय कॉटन मिलें करती थी। इस प्रकार, एक ओर तो उन्होंने मोटे ब्रिटिश कॉटन पर लगाई गई आयात ड्यूटी को हटवा दिया - यह कहते हुए कि वह ब्रिटेन की 'तर्क संगत व्यापारिक नीति' के विरुद्ध है, दूसरी ओर भारत के नवजात सूती वस्त्र उद्योग का गला घोंटना शुरू कर दिया - इस डर से कि कहीं वह भविष्य का एक प्रतिद्वन्द्वी अंग्रेजों के खिलाफ न खड़ा जो जाए। इस 'तर्क संगत व्यापारिक नीति' में शायद 'प्रतिद्वन्द्विता' नाम की चीज अतार्किक मानी जाती थी। कहने का तात्पर्य यहाँ यह है कि 'स्वतंत्र प्रतिद्वन्द्विता' के नाम पर इन्होंने 'प्रतिद्वन्द्विता' की सारी सम्भावनाओं को खत्म करने का ही उपक्रम किया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय उद्योग क्षमता को नष्ट करने के लिए

इस भेदभावपूर्ण 'कर व्यवस्था' की कहानी यहीं पर खत्म नहीं होती है। नार्थब्रुक के इस्तीफे के 20 साल बाद, इंग्लैंड के 'काटन गॉरमेन्ट्स' के दिग्गजों ने एक बार फिर हल्ला-गुल्ला मचाना शुरू किया - 'टैरिफ' के प्रश्न पर और इस बार उनका मुद्दा था भारत के खिलाफ एक ऐसा छद्म आर्थिक हथियार लागू करने का जो द्विपक्षीय था यानी न केवल ब्रिटिश उद्योगों की मदद करे बल्कि उसके बरक्स भारतीय उद्योग क्षमता को नष्ट भी करे।

(1) 1894 में आर्थिक समस्या से परेशान भारत सरकार ने (बढ़ते हुए युद्ध-खर्चों, इंग्लैंड लगातार भेजे जा रहे होम चार्ज आदि के कारण) फिर एक बार एक नया टैरिफ एक्ट पास कर 'आयात शुल्क' लगाने का प्रावधान किया। आयातित कपास धागों एवं सूती कपड़े पर उनके मूल्य के अनुसार 5 प्रतिशत ड्यूटी लगाए जाने का ऑर्डर पास किया।[35]

(2) किन्तु इस बार भारतीय ब्रिटिश सरकार ने स्वयं ही ब्रिटेन के उद्योगपतियों को प्रसन्न रखने की व्यवस्था कर डाली- भारतीय मिलों में तैयार किए जा रहे धागों पर 5 प्रतिशत उत्पादन शुल्क थोप कर (क्योंकि उन्हें यह डर था कि भविष्य में कहीं ब्रिटेन के लिए यह मिलें सरदर्द न बन बैठें)।

(3) किन्तु ब्रिटेन के उद्योगपति इससे संतुष्ट न हुए। इन्होंने 21 जनवरी 1895 को हाउस ऑफ कामन्स में इस विषय पर चर्चा फिर से शुरू की जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक निर्देश जारी किया गया कि यदि भारत की ब्रिटिश सरकार के लिए यह मजबूरी बन जाए कि खराब होती अर्थव्यवस्था को सुधारने हेतु उन्हें आयात-ड्यूटी को बनाए रखना पड़े तो 'यह आवश्यक है कि वे ऐसी दरें सुनिश्चित करें जिनसे इंग्लैंड का 'कॉटन मैगनेट्स' को दिया हुआ वचन भंग न होने पाए।'[36]

इन सभी बातों का परिणाम खतरनाक ही था। हाउस ऑफ कामन्स की मध्यस्थता के कारण, 1896 में भारतीय शुल्क संशोधन बिल पास किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
गया। जॉन राबिन्सन के अनुसार -' आर्थिक अन्याय के एक उदाहरण के तौर पर 1896 का यह एक्ट आधुनिक समय में किसी भी सभ्य देश के इतिहास में अन्याय का अभूतपूर्व एवं अद्वितीय दृष्टान्त है। इस एक्ट के द्वारा सारे भारत में निर्मित/बुने हुए माल पर उत्पादन कर थोप दिया गया, जो लंकाशायर से प्रतिद्वन्द्विता कर सकते थे, उन पर भी और वे भी जिनके प्रतिद्वन्द्वता कर पाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इससे भारतीय मिलों को एक ऐसे बोझ तले दबा दिया गया जिसकी तुलना में योरोप की किसी भी मिल का सम्पूर्ण भारतीय वस्त्र उद्योग को नहीं गिनाया जा सका। भारत का मोटे से मोटा कपड़ा भी लंकाशायर की प्रतिद्वन्द्विता के दायरे से बाहर था। इसे उत्पादन शुल्क का निशाना बनाया गया।' [37]

इस प्रकार, भारत की पुन: उभरती हुई मिलों व उद्योगों पर भी अन्यायपूर्ण उत्पाद शुल्क थोप कर भारतीय कपास उद्योग की स्वत: विकसित हो पाने वाली क्षमता का नाश कर दिया गया। परिणाम वही हुआ जिसकी अपेक्षा की गई थी। भारत में सूती वस्त्रों के व्यापार में गिरावट, मशीन एवं मिलों की माँग का कम होना और इंग्लैंड से सूती कपड़े के सामानों के आयात में बढ़ोत्तरी जिसकी कीमतें तीन साल के अंदर 2 करोड़ 30 लाख रुपये से बढ़कर 2 करोड़ 70 लाख रुपये के ऊपर पहुँच गई।

वैज्ञानिक प्रगति की झूठी दुहाई

एक स्वाभाविक जिज्ञासा मन में उठती है कि अगर 'विकसित देशों' की औद्योगिक श्रेष्ठता व आर्थिक समृद्धि का श्रेय उनकी उच्च तकनीकी, संगठनात्मक गुणों, उद्यमशीलता, बैंक व्यवस्था अथवा इसकी अर्थ सम्बन्धी सहूलियतों, उनके श्रम का ज्यादा लचीला एवं उत्पादनशील होना, उनकी प्रगतिशील अर्थव्यवस्था व कार्यकुशल आर्थिक प्रक्रियाएँ इत्यादि को है, तो उनको इतनी पक्षतापूर्ण, अमानवीय व अन्यायपूर्ण कर व्यवस्था की जरूरत क्यों पड़ी? उन्हें किसी देश को आर्थिक रूप से दबाने के लिए अपनी राजनीतिक ताकत का इस्तेमाल क्यों करना पड़ा? वे खुले तौर पर बराबरी की प्रतिद्वन्द्विता करने को तैयार क्यों नहीं हुए?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रिटिश सरकार द्वारा 20वीं शताब्दी में इस्तेमाल किए गए शोषण के हथकंडों का स्वरूप कुछ भिन्न था, किन्तु भारत के लिए ज्यादा घातक रहा। अब इस्तेमाल में लाए जा रहे तरीके एवं नीतियों (जैसे कि 1947 के बाद के समय में) को एक नई संज्ञा से नवाजा गया है।

होड़ में टिक नहीं पाया ब्रिटेन

ब्रिटेन, जिसने यह प्रवृत्ति 19वीं शताब्दी में शुरू की थी, बहुत जल्दी बाकी पश्चिमी देशों का अगुआ बन गया। क्योंकि फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, कनाडा व बाकी देशों ने भी इस नीति का अनुसरण करना शुरू कर दिया। इस बात की ओर संकेत किया गया कि 'जैसे ही औद्योगिक क्रांति जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका में 1870 के बाद विकसित हुई, वैसे ही कर की ऊँची दरें भी वहाँ लागू होती दिखने लगी। जिसका परिणाम हुआ ब्रिटिश सामानों का उन बाजारों से बाहर निकाला जाना। इसके दर्शन होते हैं 1878 एवं 1903 में जर्मनी द्वारा लगाए कर, 1892 में फ्रांस द्वारा लगाए गए शुल्कों तथा 1890 में मैक किनले टैरिफ और 1897 में डिंग्ले टेरिफ संयुक्त राज्य अमेरिका में लगाया गया। ऊपर कही गई बात को इस तथ्य से भी बल मिलता है कि जैसे ही फ्रांस, जर्मनी व अमेरिका ने अपने विशाल उद्योगों को विकसित किया- कच्चे माल एवं अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु इनका आपसी कलह, प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्विता एवं बाजारों पर अधिकार जमाने की होड़ तीव्र से तीव्रतर हो गई। नोएल्स बताते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन इस प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाया, बाजार का फैलाव रुका तो बेरोजगारी का संकट खड़ा हो गया। आबादी के एक हिस्से को भोजन की व्यवस्था हो पाना भी कठिन होने लगा (दि इकानॉमिक डेवलपमेंट ऑव द ब्रिटिश ओवरसीज एम्पायर, पृ. 104)।

1870 तक तो जर्मन एवं अमेरिकी उद्योग धन्धे खुलकर संसार के बाजारों में ब्रिटेन को चुनौती दे रहे थे। उन्होंने रक्षात्मक नीतियाँ एक हथियार के तौर पर अपनाना शुरू किया और जो कर आदि इस उद्देश्य से लगाए, उनकी दरें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी काफी ऊँची थी।[38] फ्रांस के एवं अन्य देशों के भी उद्योग/उद्यमी इसी प्रकार की नीति का सहारा ले रहे थे।[39] अब तो यह डंके की चोट पर कहा जा सकता है कि हर वह देश जिन्होंने सफलतापूर्वक अपनी अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण किया, ऐसा कर सके टैरिफ की दीवारों द्वारा अपने उद्योगों की सुरक्षा करके।[40] उन उद्योगों को सुरक्षा की आवश्यकता न केवल अपने विकास के प्रारम्भिक चरणों में रही, अपितु पूरी तरह से औद्योगिक हो जाने के भी लगभग 100 साल बाद तक जिसे उन्होंने आयातों पर प्रतिबन्ध लगाकर एवं ऊँची टैरिफ दरों से सम्भव बनाया।'[41]

टैरिफ सुरक्षा की नीतियाँ

'स्टरलिंग क्षेत्र, डॉलर क्षेत्र, फ्रैंक क्षेत्र, जापानी समृद्धि क्षेत्र व यूरोपियन आर्थिक समुदाय के क्षेत्र वगैरह सभी आधुनिक दृष्टान्त इन विशिष्ट एवं सुरक्षित व्यापारिक समझौतों के नमूने हैं।[42] यहाँ तक कि जापान, सोवियत संघ एवं पूर्वी यूरोप ने भी अपने को इन प्रबल सुरक्षात्मक टैरिफ द्वारा ही विकसित किया है। चीन भी इसे अपनाने की प्रक्रिया में ही आगे बढ़ सका है।

विशेष बात इस संदर्भ में यह है कि इन देशों ने यह टैरिफ की सुरक्षा न केवल अपने समकक्ष विकसित देशों के खिलाफ लगा रखी है बल्कि ज्यादा आक्रामक रूप में उन राष्ट्रों के खिलाफ जो गरीब हैं। हमें केवल अंकटाड आदि की कार्यवाहियों के आलेखों, दस्तावेजों में झाँकने की जरूरत है इस बीहड़ टैरिफ लड़ाई की झलक पाने के लिए, जिसे विश्व में विकसित देशों ने अथवा औद्योगिक सूरमाओं ने छेड़ा हुआ है। हालांकि अंकटाड के द्वारा इस बात की समय-समय पर कोशिश की गई है कि अमीर देशों द्वारा लगाए गए करों का बोझा गरीब देशों के औद्योगिक उत्पादों को कम से कम झेलना पड़े और उन्हें थोड़ी रियायत भी मिल जाए। पर इस दिशा में कुछ विशेष परिणाम निकले हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

एक स्वाभाविक-सा प्रश्न यह खड़ा होता हैं कि अगर यह देश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तकनीकी तौर पर इतने आगे हैं और व्यापारिक स्तर पर उत्पादनशीलता के कारण इनकी अर्थव्यवस्थाएँ ठोस हैं तो फिर इस कदर कड़ी टैरिफ सुरक्षा क्यों? अगर प्रतिद्वन्द्विता से कार्यकुशलता बढ़ती है तो –'प्रतिद्वन्द्विता' को खत्म करने के उपक्रम क्यों? अगर 'मुक्त–व्यापार' से ही संसार के संसाधनों का उत्तम उपयोग होना है तो इन देशों का सुरक्षित बाजारों एवं व्यापारिक मुनाफों के लिए समझौते क्यों? क्यों सारी विदेशी नीति एवं कूटनीतिक चालें ज्यादा से ज्यादा लुभावनी व्यापारिक शर्तें पाने के लिए ही की जा रही हैं। अगर बेहतर व सस्ते सामान स्वयं अपने में ही, बाजार से महँगे व तकनीकी तौर पर निम्न स्तर के सामानों को बाहर कर देने की क्षमता रखते हैं तो फिर इस विषम, विद्वेषपूर्ण, अन्य के प्रति आक्रामक टैरिफ सुरक्षातंत्र का जाल क्यों?

इंग्लैंड की झलकियाँ औद्योगिक क्रान्ति के बाद

इसके पहले कि हम इस लेख को समाप्त करें, हम पाठकों का ध्यान कुछ और महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर खींचना चाहेंगे जिनका सम्बन्ध औद्योगिक क्रांति से है और जो विशेष महत्व के हैं–

हम जब औद्योगिक क्रान्ति के बारे में बात करते हैं तो सामान्यतया एक ऐसे समाज एवं अर्थव्यवस्था का चित्र दिमाग में बनता है जो अभी तक चली आने वाले पारम्परिक समाज एवं अर्थव्यवस्थाओं से बिल्कुल भिन्न होगी, इस मायने में कि (1) उत्पादन बिल्कुल आधुनिक, संगठित क्षेत्र में हो रहा होगा जो बहुत ही जटिल किस्म की मशीनों से लैस होंगे। (2) जहाँ का आर्थिक तंत्र एवं पूँजी बाजार काफी विकसित होंगे। (3) माँग व आपूर्ति का संतुलन बिल्कुल सही होगा। (4) बाजारी ताकतें एवं मूल्य निर्धारण तंत्र दोनों ही संसाधनों के अच्छे से अच्छे रूप में विनियोजन एवं भरपूर उपयोग को निर्धारित करते होंगे। (5) प्रौद्योगिकी का स्तर बहुत उँचा होगा। (6) उत्पादनों में काफी विभिन्नताएँ एवं परिष्कृति होंगी, इत्यादि।

किन्तु अगर हम औद्योगिक क्रांति की विशेष बारीकियों को विस्तार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से देखें तो यह सारे दिमागी चित्र टूटते हुए पाएँगे। इस किस्म के अति महत्वपूर्ण किन्तु दुर्भाग्यवश उपेक्षित तथ्यों को प्रकाश में लाना अतिआवश्यक है क्योंकि इसकी आवश्यकता न केवल उपयोगी तुलनाएँ करने के लिए हैं बल्कि विश्लेषणात्मक पैनेपन के लिए भी।

अगर कोई भी मॉडल अथवा सिद्धान्त सच्चाई की कसौटी पर नहीं आंका जाएगा तो वह निरर्थक ही कहा जाएगा। सिद्धान्त को न केवल लगातार आलोचनाओं का सामना करते हुए अपनी तार्किक निरंतरता रखनी चाहिए, वरन तुलनात्मक कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए। अगर कोई सिद्धांत यथार्थ से निरपेक्ष होकर प्रतिपादित किया जाता है तो उसका प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। गुन्नार मिर्डल बिल्कुल सही लिखते हैं – 'निरंतर सच्चाई की पृष्ठभूमि में ही सिद्धान्तों का आकलन किया जाना चाहिए ताकि सच्चाई के अनुरूप सिद्धान्त को ढाला जा सके। तुलना और परीक्षण तथा परिष्कार की दोनों ही प्रक्रियाएँ साथ चलती हैं। जैसे-जैसे हमारे निरीक्षण के आधार पर जुटाये हुए आंकड़ों का आकार बढ़ता जाता है, हमारे मूल सिद्धान्तों की पुनर्रचना की जाती है। ताकि उन तमाम आँकड़ों के प्रयोजन को पाने में सक्षम हो सकें। यही सारे विज्ञानों का सार है। यह सदा अपनी पूर्वकल्पित अवधारणाओं से शुरू होता है किन्तु ज्ञान को विस्तार देते हुए प्रामाणिकता के लिए न केवल व्यावहारिक आधार पर खरा उतरना होता है, बल्कि निरंतर अपना रूपांतरण उस सच्चाई के अनुरूप अधिकाधिक करते चलना होता है जो सदैव ही विज्ञानों के अध्ययन का विषय रहती है।

यांत्रिकीकरण के स्तर

आधुनिक मापदंडों से सोचने पर तो लगता है कि औद्योगिक क्रांति में बहुत ही अधिक उत्पादन प्रक्रियाएँ सम्मिलित होंगी जिनमें पुरातन यन्त्र, औजार आदि का कोई स्थान नहीं रहा होगा। किन्तु यदि इस संदर्भ में हम तथ्यों की ओर ध्यान दें तो जो दृश्य उभरता है- पाश्चात्य विद्वानों द्वारा औद्योगिक क्रांति पर किए गए तथ्यपरक अनेकानेक शोधों से- तो निराशा ही हाथ लगती है। देखें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नीचे दिए गए विवरणों को जो इंग्लैंड द्वारा प्रयोग में लाए जा रहे तत्कालीन यांत्रिकी स्तरों द्वारा पहले सौ सालों में यानी 19वीं सदी के मध्य तक भी प्रयोग में लाए जा रहे थे जो औद्योगिक क्रांति का चरम काल माना गया है- ये विवरण यांत्रिकीकरण के स्तर का आभास देते हैं।

(1) 18वीं शताब्दी के मध्य तक मशीनरी वहाँ के उद्योग-धंधों में एक अल्पप्रयुक्त तथ्य ही रहा।

(2) 19वीं शताब्दी के द्वितीय चरण तक या मध्य तक, एक भी उद्योग का वहाँ पूरी तरह से यांत्रिकीकरण नहीं हुआ था।

(3) हमें 20वीं शती ईस्वी के मध्य तक तकनीकी के विकास का इन्तजार करना पड़ा अर्थात 1950 तक (विस्तृत जानकारी के लिए देखें ई. जे. हॉब्सबॉम) ताकि कारखानों में इस्तेमाल की जा रही उत्पादन प्रक्रियाओं का कम से कम आधा यांत्रिकीकरण तो किया जा सके। (जिसका सपना वहाँ के भाप सम्बन्धी आविष्कारों ने कितने संतोष के साथ 19वीं शताब्दी में देखा होगा।)

(4) रेलवे आदि के आने के पहले वहाँ शायद कभी-कभार गैस यंत्र या रासायनिक संयंत्र (जिनको कि एक आधुनिक उत्पादन इंजीनियर सिर्फ कौतूहल की दृष्टि से ही देखना चाहेगा) के अतिरिक्त कोई भी आधुनिक उद्यम नहीं था।[43]

कपास उद्योग

कपास जिसको कि औद्योगिक क्रांति का सर्वप्रमुख कारक या आधार माना गया है, जिससे औद्योगिक क्रान्ति की अगुवाई में सर्वाधिक तेजी से तकनीकी परिवर्तन हो गए, ऐसा एक के बाद एक विद्वान यह तर्क देते हैं (और हमारे उस पर विश्वास करने की भी अपेक्षा रखते हैं) कि वास्तव में इंग्लैंड की तकनीकी श्रेष्ठता ही वह कारण है जिसके पहले भारत का सूती वस्त्र उद्योग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अपनी अंतिम साँसें भरते हुए इतिश्री को प्राप्त हुआ। 'जैनी, फ्रेम एवं म्यूल' उनकी तथाकथित क्रान्तिकारी खोजें थी। आइए देखें, इस विषय पर ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञ क्या कहते हैं।

जैनी- एक साधारण सी हाथ मशीन थी जो कटाई को सुगम बनाती थी। उससे कई चकरियों को एक साथ चलाया जा सकता था।

फ्रेम : फ्रेम रोलर्स का इस्तेमाल करके मोटे एवं फूहड़ सूती धागों को मोड़ा जाता था। इससे जो धागा तैयार होता था उसके बारे में कहा जाता है कि उसे बनाने के लिए किसी खास कौशल की जरूरत थी ही नहीं और जिस मशीन का पहले इस्तेमाल किया गया वह तो साधारण से बढ़ई या लोहार भी बना सकते थे।

म्यूल- म्यूल का नाम ऐसे पड़ा कि वह जैनी एवं फ्रेम के बीच की चीज थी (अंग्रेजी शब्द म्यूल का अर्थ हो गया गधे-घोड़े के बीच का खच्चर)। इसके माध्यम से कुछ बेहतर तरीके के सूती वस्त्र बना पाना उनके लिए सम्भव हो पाया। इतने भोंड़े औजारों को भी 'क्रांतिकारी तकनीकी' कह दिया गया क्योंकि औद्योगिक क्रांति होने के पहले इंग्लैंड की जो दशा थी, उसमें तैयार कपड़ा मोटा, भद्दा हुआ करता था जिसको सिल पाना व धो पाना बहुत मुश्किल था।[14] अतः ऐसी दशा में छोटे से छोटा सुधार भी उनके हिसाब से एक बड़ा कदम था।

मशीन उद्योग

पहले की मशीनें ज्यादातर हाथ से ही बनी हुआ करती थीं और हर मशीन अपने में ही कला का एक नमूना समझी जाती थी। फ्रांस के साथ हुए युद्धों के समय भी लगभग सभी मशीनें बनाने का काम बहुत ही सरल औजारों - जैसे हथौड़ी, रुखानी या रेती आदि अनगढ़ यंत्रों और बरमा आदि- से किया जाता था। अगली पीढ़ी में कुछ मशीन बनाने वाले औजार तैयार किए गए जैसे कि प्लानिंग मशीन, पंचिंग (छेद करनी वाली), व्हील-कटिंग मशीन, मॉडल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का स्लाइड रेस्ट, नेसमिथ का स्टीम हैमर वगैरह। यह कुछ वे खोजें थीं, जिन्होंने अभियांत्रिकी उद्योग का रूपान्तरण करने का काम किया और लोहों के पुल, रेलवे की गाड़ियाँ, भाप इंजन, भाप जहाज इत्यादि को शुरू कर पाने के लिए रास्ता तैयार किया।

एक और उद्योग, जिसका औद्योगिक क्रांति में विशेष महत्व था, वह है 'खनन उद्योग', जिसमें विशेष सफलता पाने के लिए इंग्लैंड की बहुत प्रशंसा की जाती है। आइए देखें इस विषय पर साक्ष्य क्या कहते हैं। 'कोयले का वास्तविक उत्पादन पहले की ही तरह आदिकालीन रहा। एक बैठा हुआ आदमी जो कि किसी छोटे से औजार से भूमिगत रास्ते को खुरचे या तोड़े, यही हल्की खुदाई इस उद्योग की आधारशिला थी। कई जिलों में तो बहुत ही छिछले स्तर की खुदाई ही 1840 तक जारी रही। साउथ वेल्स की बहुत सी खदान तो पत्थर की खुली खोह से ही मिलती-जुलती लगती थी और बहुत ही छिछले छेदनुमा कुएँ के मुँह जैसी होती थी जिनका व्यास मात्र 4-5 फुट तक ही होता था। दरहम के दक्षिणी हिस्सों की खदानों में ये आम बात थी।

खोज करने वाले

वे लोग जिनका नाम जूवनेटर्स (यानी खोज करने वाले) की श्रेणी में रखा गया है, वे भी कोई 'तकनीकी बुद्धिकौशल वाले नहीं होकर बड़े ही साधारण से व्यावहारिक लोग' थे जो व्यापार करते हुए, अपने साधारण/सामान्य ज्ञान से प्रयास एवं भूल के तरीकों से हर उस समस्या को सुलझाने का प्रयास करते थे जो उनके सामने समय-समय पर आती रहती थी। एडमण्ड आर्कराइट एक पादरी थे जिनके पास तकनीकी ज्ञान के नाम से कुछ भी नहीं था। कुछ 'खोजी' लोग लोहार थे व कुछ बढ़ई। यहाँ तक कि आर्कराइट तो एक नाई था और यह भी कि वह वास्तव में कताई मशीन का खोजने वाला भी नहीं था। उस पर तो, कुछ कम भाग्यशाली लोगों के विचारों को हड़प लेने का आरोप है और 1785 में तो उसे संसद द्वारा उसके पेटेन्टों से भी बेदखल कर दिया गया। अत: यूँ कहा जाए कि खोजें इंग्लैंड में उद्योग-धन्धों की बढ़ोत्तरी का कारण नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बल्कि उसका परिणाम थीं तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोहे एवं वस्त्रादि के उद्योगों में तो की गई खोजों में कुछ भी विशेष नहीं था। वे तो इसलिए सम्भव हो पाई क्योंकि उस समय विशेष में उनकी मांग ने जोर पकड़ा। यह खोज पहले इसलिए नहीं हुई क्योंकि उस समय के तरीके तत्कालीन माँग की आपूर्ति के लिहाज से उचित व ठीक समझे गए।

प्रश्न जो कि बारम्बार परेशान करता है, वह यह है कि इतने साधारण से परिवर्तनों के बावजूद भी उसे लोगों ने उद्योगों में हुई क्रान्ति कैसे मान लिया। शायद जवाब नीचे मिल जाए।

औद्योगीकरण से पहले के इंग्लैंड के कुछ प्रासंगिक तथ्य

हमने 18वीं शती ईस्वी के भारत पर थोड़ा विचार प्रारंभ में किया है। औद्योगिक क्रांति के अवसर पर इंग्लैंड की दशा के ऊपर एक नजर डालना, कुछ आवश्यक संकेतों को दे पाने में हमारे लिए लाभकारी हो सकता है। यह रुचिकर तथ्य है कि इस तथाकथित औद्योगिक क्रांति की विलक्षणता को सिद्ध करने के लिए कुछ मशहूर विद्वानों ने स्वयं ही उससे पूर्व के इंग्लैंड के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराई हैं। जो बौद्धिक दृष्टि से विशिष्ट सूचना मानी जा सकती हैं।

बीती शताब्दियों के कृषि एवं व्यापारिक क्रांतियों के बावजूद इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था 'सहमी हुई' थी। यह कहना ठीक ही होगा कि 18वीं शताब्दी में पूर्वार्द्ध में लोगों के पास विकास की उम्मीद रख पाने का कोई कारण नहीं है। उदाहरण के तौर पर 1740 के कारणों में कुछ लोग वर्तमान आर्थिक स्थिति को समझाने के लिए लिखते हुए उन आकलनों का प्रयोग करते दिखते हैं जो सर विलियम पेट्टी या ग्रेगरी किंग के समय के हैं। यानी आधी शताब्दी से भी ज्यादा पहले के आर्थिक विकास का साक्ष्य उन्हें इतना कम मिल पाया कि उन्होंने 1740 के दशक की स्थिति पर विचार कर पाने के लिए भी उन गणनाओं को ही उठाना मुनासिब समझा जो 1670 या 1600 के बाद के दशकों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के लिए किए गए थे। आगे 'उस पूर्व औद्योगिक समुदाय का मूलतः रुका हुआ स्वरूप उनके सामाजिक व संस्थागत जड़े हुए ढाँचे में स्पष्ट परिलक्षित था।'

जनसंख्या, नगरीकरण एवं व्यावसायिक संरचना

इस काल में ब्रिटेन में लन्दन के बाहर कोई शहर ऐसा नहीं था जिसकी जनसंख्या 30,000 नागरिकों से ज्यादा हो और मात्र तीन (नारविक, ब्रिस्टल एवं बरमिंघम) ऐसे नगर थे जहाँ 10,000 से कुछ ज्यादा लोग हों। स्काटलैंड के अन्दर एडिनबर्ग में 5,000 की आबादी थी और ग्लासगो का विस्तार भी मात्र उतना ही था जितना बरमिंघम का।[45]

18वीं शती के मध्य तक शहर शायद जनसंख्या की अपेक्षा कुछ तेजी से विकसित हुए। लेकिन यह सम्भव नहीं लगता कि 16 प्रतिशत से ज्यादा ब्रिटिश लोग शहरों में रह रहे थे। 19वीं शताब्दी आते-आते यह संख्या शायद 25 प्रतिशत तक जाती दिखती है। यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था मुख्य तौर पर कृषि प्रधान थी, जनसंख्या अधिकांश गाँवों में रहने वाली और उत्पादन की विशेष इकाई परिवार तक ही सीमित थी।[46]

अधिकांश वे लोग जो ऊनी अथवा सूती माल बनाने के धन्धे में लगे थे, अपने-अपने घरों में ही काम कर रहे थे। सूती वस्त्र उद्योग में, उदाहरण के तौर पर, औरतें व बच्चे ही कच्चे कपास को उठाने, साफ करने और कताई का काम करते थे। लोहागिरी एवं दूसरी धातुओं के कारीगर साधारणतया शेड्स में काम किया करते थे जो उनकी झोपड़ियों से सटे होते थे। जब एक लेखक ने 18वीं शती के शुरुआत में यह जोड़ने की कोशिश की कि ब्रिटिश ऊन उद्योग में उदाहरण के तौर पर तकरीबन 10 लाख ब्रिटिश कार्यरत हैं, तो यह अतिशयोक्ति नहीं कर रहा होगा (जैसा कि साधारणतया मान लिया गया होगा)। क्योंकि अगर हर आदमी, जो किसानों के लिए गैरसीजन के दौरान, बुनने का कार्य और शेष समय कृषि द्वारा अपना जीविकोपार्जन कर रहा था, अगर हर औरत यदाकदा ऊन की कताई कर रही थी और हर बच्चा भी इस काम में हाथ बँटाकर अपने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माँ-बाप की मदद कर रहा था तो इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश जनसंख्या के दस में से एक व्यक्ति तो निश्चित तौर पर ऊन के उद्योग से सम्बन्ध रखता ही था।

एक ऐसे क्षेत्र में जो इतना कम संगठित हो जितना कि इंग्लैंड, शायद किसी भी देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच पाने में कई दशक लग जाते थे। ऐसे देश के अन्दर एक सफल उदाहरण की ताकत ज्यादा आसानी से अभिव्यक्त हो सकी और जैनी बहुत ही तेजी के साथ एक झोपड़ी से दूसरी झोपड़ी तक पहुँच गई।[47]

यह है तत्कालीन इंग्लैंड जहाँ एक राज्य या जागीर से दूसरी जागीर या राज्य तक पहुँचना दुर्गम था, संचार व्यवस्था कमजोर थी और जीवन-स्तर दयनीय था। जहाँ सर्वसाधारण का दैनिक सामान्य जीवन भी अत्यन्त कठिन था।

18वीं शती ईस्वी का इंग्लैंड एक राष्ट्र नहीं था। वहाँ अनेक राज्य थे, जो आपस में युद्धरत थे। अनेक समूह थे जो भयंकर युद्धरत थे। प्रोटेस्टेट ईसाई कैथोलिक ईसाइयों के खून के प्यासे थे और कैथोलिक उनके। स्त्रियों की बड़ी संख्या 'डायनें' करार देकर चर्च पुरोहितों की अगुआई में जिंदा जलाई जातीं, खौलते कड़ाह में उबाली जातीं, कांटेदार कुर्सियों में यंत्रणा देकर जलाशयों में डुबा दी जातीं। बहुदेववादियों की पैगन कहकर जिंदा जलाया जाता। यह सब हजारों की तादाद में किया जाता। कोई पुलिस नहीं। कोई स्टैंडिंग आर्मी नहीं। अलग-अलग जागीरदारों द्वारा रखे गए भाड़े के सैनिक। आबादी का बहुलांश भीषण गरीबों में डूबा।

18वीं शती ईस्वी के इस इंग्लैंड के बरक्स 18वीं शती ईस्वी का भारत स्मरणीय है। यह वह भारत है जहाँ 17वीं शती ईस्वी से मराठों का वैभवशाली राज्य था। दिल्ली का तथाकथित सुल्तान भी वस्तुत: मराठों के संरक्षण में रह रहा था। राजपूताने के वैभवशाली राज्य थे। महान साहित्य की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
देश की विविध भाषाओं में विपुलता थी। अत्यन्त समृद्ध स्थल सेना और नौसेना थी। शाक्त, शैव, वैष्णव, वेदान्त, अनुयायी, सांख्य-योग अनुयायी, अद्वैत की अनेक धाराओं के अनुयायी, सगुण उपासक, निर्गुण उपासक आदि शताधिक सम्प्रदाय सार्वभौम वैश्विक नियमों-सत्य, ऋत एवं धर्म से अनुशासित सुंदर जीवन जी रहे थे। काव्य, कला, वास्तु, स्थापत्य, मंदिर, मूर्तियाँ, संगीत, नृत्य, सभी में अत्यंत उत्कर्ष प्राप्त था। व्यापार- वैभव की चर्चा प्रारम्भ में ही विस्तार से हो चुकी है। निश्चय ही हिन्दू-मुस्लिम टकराव भी यहाँ शताब्दियों से चल रहा था, पर उस पर नियंत्रण लगभग पा लिया गया था। शिक्षा कितनी व्यापक थी, यह स्वयं तत्कालीन अंग्रेजों के संग्रहीत आंकड़ों से प्रमाणित है, जिसकी पुनर्प्रस्तुति श्री धर्मपाल ने की है। यही है 18वीं शती ईस्वी के भारत की समृद्धि वैभव एवं वीरता की सच्चाई। जाहिर है, ऐसे भारत को जीतने की हैसियत इंग्लैंड में थी ही नहीं। कम्पनी के लोग व्यापारी थे, राजा या राजपुरुष नहीं। छल-विग्रह से थोड़े समय वे कुछ राजाओं और नवाबों को अपने पक्ष में फुसलाकर सफल होते दिखे। इसमें केवल उनका कौशल ही कारण नहीं था, हिन्दू राजाओं और हिन्दू से मुसलमान बने कतिपय पापाचारी नवाबों के मध्य चल रहा लम्बा टकराव मुख्य कारण था, इसके अतिरिक्त मानवीय ईर्ष्या द्वेष, आपसी कलह, धर्मभावना का विलोप एवं विकृति तथा कम्पनी के लोगों के द्वारा भारतीय राजाओं और नवाबों के भीतर भरे गए लालच के कारण उन लोगों का एक झूठी उम्मीद से कम्पनी को बहुत अधिक सहायता देना तथा सफल बनने में सहयोग करना दूसरे कारण थे। एक व्यापक अर्थ में यह कालप्रवाह का परिणाम था। क्योंकि जहाँ तक फूट, ईर्ष्या द्वेष, टकराव, चरित्रहीनता, अनीति, छल आदि की बात है, हम देख चुके हैं कि इंग्लैंड इन दुर्गुणों में भारत से कई गुना आगे था। जबकि विद्या, विवेक, शक्ति और वीरता में भारत के सामने उसकी कोई हैसियत ही नहीं थी। भारत पर आक्रमण कर सके ऐसी कोई हैसियत इंग्लैंड की आज तक कभी भी नहीं थी। कतिपय भारतीय राजाओं और राजपुरुषों की सहायता और सेवा का स्वांग करते हुए छलपूर्वक कुछ हथिया ले इतनी ही उसकी कुल हैसियत थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1857 ईस्वी में ब्रिटिश राज्य ने छलपूर्वक हस्तक्षेप कर आधे भारत में भारतीय राजाओं के सहयोग से प्रभुता स्थापित करने में सफलता पा ली, परन्तु भारतीय समाज ने जब उन्हें छली और साम्प्रदायिक पाया तो 90 वर्षों में ही उखाड़ फेंका। जिन भारतीय सैनिकों को यह भ्रम देकर कि भारतीय राजाओं की सहायता के लिए वे 'सीक्योरिटी सर्विस' चला रहे हैं, अंग्रेजों ने राज्य को छलपूर्वक हड़पा था, उन्हीं सैनिकों में सत्य की चेतना फैलते ही, डरकर वे भाग खड़े हुए और अपने अनुकूल समूह को सत्ता का हस्तांतरण कर चले गए। 200 वर्षों में तिल-तिलकर जो पाया था, 90 वर्षों में उसे गंवा कर चले गए।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. दीतमार रादरमुंड : पूर्वोद्धृत।
2. डेविड लेन्डेस : दि वेल्थ एंड पावर्टी ऑव नेशन्स।
एबेक्स, लन्दन, 2000, अध्याय-5
3. वही।
4. वही।
5. वही।
6. हॉब्सबाम : पूर्वोद्धृत।
7. रादरमुंड : पूर्व उल्लिखित सन्दर्भ।
8. पूर्व अध्याय में विवेचित ।
9. पूर्व विवेचित
10. विलियम डिगबी : प्रास्परस ब्रिटिश इंडियन पृ. 300
11. केडिया : पूर्वोद्धृत, अध्याय 2 में उद्धृत।
12. वही, रूट्स।
13. वही, रूट्स।
14. देखें, वही, रूट्स।
15. देखें, वही, रूट्स।
16. देखें, वही, रूट्स।
17. देखें, वही, रूट्स।
18. देखें, वही, रूट्स।
19. देखें, वही, रूट्स।
20. देखें, वही, रूट्स।
21. से 47 : ये सभी सन्दर्भ विस्तार से प्रो. केडिया एवं ए.सिन्हा की रूट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट में किए हैं। जिज्ञासु पाठक मूल पुस्तक देख सकते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-5

एशियाई और यूरोपीय व्यापार की प्रकृति में मूलभूत अंतर

अधिक मूलभूत बात यह स्मरण करना है कि एशियाई व्यापार की प्रकृति भिन्न प्रकार की थी और नये आ रहे यूरोपीयों की व्यापारिक प्रवृत्ति भिन्न प्रकार की थी। पहले लगातार एशिया से यूरोप की ओर इकतरफा माल जा रहा था। यूरोपीयों ने कुल व्यापार-प्रवाह को नियंत्रित कर कुछ लाभप्रद स्थिति में आने की चेष्टा की। इसके लिए पहले तो यूरोपीयों ने 'समुद्री डकैती' को संस्थाबद्ध रूप दिया। इसके लिए वे 'समद्री मार्ग में माल-ढुलाई की अनुमति के पत्रों' की बिक्री करते थे। इसी के साथ होर्मुज आरै मलक्का जैसे व्यापारिक रणनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण केन्द्रों पर सीमा शुल्क-केन्द्र बनाये गये, जिससे कि बड़े पैमाने पर 'सुरक्षा-भाड़ा' की वसूली हो सके।[1]

मुक्त व्यापार बनाम बंधुआ व्यापार

यूरोपीय शासक इस तरह के बँधुआ बनाकर रखे गये व्यापार के हिमायती थे। एशियाई शासक व्यापार को इस तरह बँधुआ बनाने के हिमायती नहीं थे।[2] वे मुक्त व्यापार के हिमायती थे। यही एशियाई एवं यूरोपीय व्यापार की प्रकृति में, आपूर्ति और माँग की संरचना में मूलभूत एवं महत्वपूर्ण अंतर था जो 'राज्यसत्ता के स्वामियों के स्वार्थों एवं हितों से सम्बन्धित' मुद्‌दा है। सार यह है कि यूरोप एशियाई वस्तुओं के आपूर्ति मार्ग पर प्रभावशाली एकाधिपत्यपूर्ण नियंत्रण स्थापित करने में जुटा था। इस प्रकार, 'व्यापार को नियंत्रित करने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और उससे सुरक्षा-भाड़ा वसूल करने का विचार केवल तभी उभरा, जब यूरोपीयों ने व्यापार-तंत्र पर कब्जा जमाना शुरू किया। बाद के सभी उपक्रमों का मॉडल-भूमध्यसागर में नियंत्रित व्यापार का 'वेनेशियन पैटर्न' ही रहा। पुर्तगीजों ने इसी मॉडल की नकल कर उसे अधिक बड़े पैमाने पर हिन्द महासागर में लागू किया। फिर डचों ने उनका अनुसरण किया और उनको भी पीछे धकेल दिया। वे भारी प्रतिबंधों एवं नियंत्रण वाले तथा आधुनिक प्रकार के बंधुआ व्यापार की जरूरतें पूरी करने में समर्थ बने।[3]

व्यापारिक रिश्तों को भी एक प्रकार का युद्ध मानते थे यूरोपीय सौदागर

इस बंधक बनाकर रखे गये व्यापार को तत्कालीन यूरोपीय सत्ता-प्रतिस्पर्धा के सन्दर्भ में देखना उचित होगा। यह सत्ता-स्पर्धा हिन्द महासागरीय व्यापार में अपने-अपने हिस्से को लेकर थी। यूरोपीय सौदागरों की समझ यह थी कि व्यापारिक लाभ एक केक की तरह हैं, जिसमें किसी एक पार्टी (पक्ष) का हिस्सा दूसरे के हिस्से की कीमत पर ही सम्भव है। इसीलिए एशियाई व्यापार तक पहुँच में सहभागिता उन्हें सहन नहीं थी, क्योंकि अकेले ही वे लाभ पर एकाधिकार चाहते थे (काली मिर्च-पीपरामूल के व्यापार पर पुर्तगालियों का एकाधिपत्य इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है)। यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य आये दिन छिड़ने वाले सामंती किस्म के युद्ध तथा धन की लगातार जरूरत ने उनका 'ऐसा मन-मस्तिष्क बना दिया कि वे व्यापारिक रिश्तों को भी युद्ध का ही एक अन्य प्रकार समझने-मानने लगे।[4] एक उल्लेख यह भी मिलता है 'प्राचीन कार्थेज साम्राज्य की ही भाँति वेनिस का राज्य भी किसी जलमार्गीय व्यापारिक मार्ग की जानकारी औरों को देने वाले को मृत्युदंड देता था। नक्शों या मार्गों के चार्टों को कहीं बाहर भेजना या बेचना मृत्युदंड योग्य अपराध था।'[5]

लगभग 100 वर्षों तक पुर्तगाली लोग भारत के लिए व्यापार मार्ग की अपनी 'खोज' को 'टॉप सीक्रेट' बनाये रखने में सफल रहे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस मानसिकता से अनेक दिलचस्प नियमनों एवं प्रतिबन्धों की रचना की गई। जैसा कि पोप का आश्वासन था कि भारत तथा अन्य एशियाई देशों के साथ केवल पुर्तगाल ही व्यापार कर सकेगा, अन्य यूरोपीय राष्ट्र नहीं। ऐसे और भी रोचक ब्यौरे विलियम हंटर की पुस्तक-'ए हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' में मिल जाएँगे।[5]

अंतरराष्ट्रीय कानूनों की जड़ में है डकैती और लूट

समुद्री डकैती का पेशा उनके लिए इतना लाभकारी था कि उसे त्यागना किसी भी यूरोपीय देश के लिए मुश्किल था। अत: एक यूरोपीय राष्ट्र की पाबन्दियों के बीच से अपना रास्ता बनाने के लिए दूसरे यूरोपीय राष्ट्र ने तरह-तरह की युक्तियाँ एवं रणनीतियाँ रचीं। फलस्वरूप- 'व्यापारियों को राजकीय संरक्षण' के नाम पर विविध यूरोपीय राज्यों में समुद्री डकैतों को अपना-अपना समर्थन देने की होड़ मच गई।[6] समुद्री डकैतों को सहारा देकर एशियाई व्यापार को प्रतिबंधित करने तथा उससे अधिकाधिक टैक्स वसूल करने की ये व्यवस्थाएँ एवं प्रथाएँ ही बाद में नियम बन गए, जिनमें से आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून का जन्म हुआ है। समुद्री डकैती को यूरोपीय पदावली में 'वैध जब्ती' या 'उचित पुरस्कार' कहा जाने लगा। अंतर्राष्ट्रीय कानून के ये बहुप्रचलित पद हैं।[7]

फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी की समुद्री यात्राओं का हवाला देते हुए फर्बर बताते हैं- '1703 ई. में जो कुछ किया जा सकता था, वह यह कि एक जहाज राजा का भेज दिया गया और एक कम्पनी का। इस आशा में कि इनाम बटोरा जा सकेगा। एक वर्ष बाद, (1704 ई. में) एडमिरल डे पेलियरस चार जहाजों का काफिला लेकर पूर्व के लिए चला। इन अभियानों से कम्पनी के लिए 18,90,000 लीवर इनामी धन के रूप में मिले। परन्तु राजा और जहाजी कप्तान के बीच दावों को लेकर विवाद हो गया। जिससे इस धन का बँटवारा 1719 तक (यानी 15 वर्षों तक) रुका रहा।[8]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डाकू, लुटेरे और दस्यु शासकीय सेवक बनाये गये

समुद्री डकैत, लुटेरे तथा जलदस्यु-गण अक्सर राज्य द्वारा नौकरी में रखे जाते थे, ताकि वे राष्ट्र-राज्य की रक्षा करें। स्पेनिश नौसेना की हार में जलदस्युओं ड्रेक और हॉकिन्स की उल्लेखनीय भूमिका की चर्चा हो चुकी है। इस तरह भारत के राजाओं और यूरोपीय राजाओं के बीच स्वदेशी व्यापार के सन्दर्भ में मूलभूत अंतर यह है कि भारत में मुक्त व्यापार को सुदूर समुद्रों में सुरक्षित रखना राज्य स्वधर्म यानी राजधर्म मानता था तथा शक्तिशाली राज्य समुद्री डकैतों एवं जलदस्युओं को पकड़कर मृत्युदंड देता था। जबकि यूरोपीय राज्य डकैतों एवं जलदस्युओं को सक्रिय करने की पहल स्वयं करते थे तथा उनके प्रोत्साहन में भरपूर रुचि रखते थे। साथ ही, सफल समर्थ समुद्री डाकुओं एवं जलदस्युओं को 'नाइटहुड' तथा 'सर' की उपाधियाँ देकर समादृत करते थे। किसी भी पारम्परिक भारतीय जागीरदार की पत्नी ने कभी भी किसी डाकू या तस्कर से कमीशन नहीं खाया होगा। परन्तु यूरोपीय देशों की तथाकथित महारानियाँ ऐसा कमीशन खाती थीं। तथ्य यह है कि 18वीं शताब्दी ईस्वी तक अनेक सम्पन्न भारतीय जागीरदारों की पत्नियों की सम्पदा तत्कालीन ब्रिटिश महारानी से बहुत अधिक थी।

स्वर्ण की अंतहीन लालसा

दो अंग्रेज इतिहासकारों, टॉमसन एवं गैरेट, ने ब्रिटिश लोगों की मानसिकता पर यह बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है 'अंग्रेज़ों के मन-मस्तिष्क को सोने की चाहत की पागल लालसा ने जकड़ लिया था कि बंगाल का पूरा खून चूसकर उसे सुखाकर भी वह शांत नहीं हुआ। यह वैसा ही अभूतपूर्व उन्माद था जिसने एक जमाने में कोर्ट्स एवं पिजारो के समय के स्पेन-वासियों के दिमाग को जकड़ लिया था।'[7]

भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रसार की कहानी ब्रिटिश मस्तिष्क के बारे में ऊपर कही गई बात का एक खूबसूरत पुष्टीकरण है। भारत में उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सफलता के कारणों को जानने के लिए यह महत्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध कराती है। इसके पहले कि हम उन तरीकों की चर्चा करें, जिनका ब्रिटिश लोगों ने भारत के खजानों से अपने 'भाग्य का निर्माण' करने के कथित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहारा लिया, संक्षेप में इस बात का पुन: अवलोकन यहाँ कर लेना विवेक सम्मत होगा कि कम्पनी द्वारा भारत में किए जा रहे व्यापार का स्वरूप वस्तुत: क्या था उस ऐतिहासिक घटना के पहले जिसे हम '1757 में हुई प्लासी की घटना के नाम से जानते हैं।' ईस्ट इंडिया कम्पनी की कार्यशैली या उसके स्वरूप को समझ पाना इसके बाद पाठकों के लिए कतई एक पहेली नही रह पाएगा।

बर्बर पशु

अपने राजा जेम्स प्रथम से एक पत्र लेकर 1608 में कतिपय ब्रिटिश नाविक भारत में दाखिल हुए। मुगल सम्राट से उन्होंने इस बात की गुजारिश की कि भारतीयों के साथ व्यापार करने के लिए उन्हें फैक्टरी (कारखाना) स्थापित करने की अनुमति दी जाए। इन लोगों ने अपने पांव जमाने का काम बहुत धीरे-धीरे शुरु किया। मुगल शासकों से बहुत ही छोटी-छोटी सहूलियतें हासिल करते हुए। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का पहले का इतिहास इस प्रकार के दृष्टान्त से भरा पड़ा है जब उसमें फिरंगियों ने किसी सीमा तक गिड़गिड़ा कर भारतीय शासकों को इस बात का बारंबार आश्वास दिया कि भारत में उनके इरादे नेक हैं और यह तब जकि अपनी झगड़ालू प्रवृत्ति एवं गन्दी हरकतों के लिए वे पहले से ही काफी बदनाम हो चुके थे। तत्कालीन कुछ प्रेक्षण जो कि यूरोपियों एवं भारतीयों ने उन ब्रिटिश दुकानदारों के तौर तरीकों पर दिए थे, उनको उनके सही स्वरूप में हमारे सामने पेश करते हैं। उदाहरण के तौर पर, एक ब्रिटिश इतिहासकार ने बताया है कि कैसे इन लोगों ने व्यापार करने में, शालीनता के सभी मानकों को तोड़ दिया। अपने बन्धुओं के साथ भी उनका व्यवहार अभद्र ही था। इन लोगों के लिए दूसरों के सामान को छीन लेना, लूटपाट करना, समुद्र में दूसरे व्यापारियों के जहाजों को बरबाद कर देना उस खेल (यानी व्यापार) के बड़े ही सामान्य से नियम थे। इतिहासकार एच.एच.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विल्सन ने बताया है कि कैसे शुरू से ही ये लोग निकृष्ट तरीकों को अपनाते रहे। अगर इन्होंने किसी को भी अपने इस 'विशिष्ट किस्म के व्यापार' पर रोक-टोक या टोका-टाकी करते देखा तो वे घटिया पन पर फौरन उतर आते थे। उनके लिए ये कार्य बहुत ही आसान थे:- 'कोड़े की मार से या भूखे रखकर उन सबको मार डालना जिनसे वे छुटकारा पाना चाहते थे। निजी व्यापारियों का कत्ल कर देना' इत्यादि।[10]

अंतहीन हिंसा और बेईमानी

भारतीयों के साथ उनके व्यवहार की ओर इशारा करते हुए एक अंग्रेज़ पादरी ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है-

'हिंसा एवं बेईमानी की अन्तहीन करतूतें। जिनके कारण हिन्दू एवं मुसलमान इन अंग्रेज़ों को जंगली जानवरों का झुँड, मानते थे, उनसे भी भयानक जिनको ये अपने साथ लाए थे, जो कि भैंसे की तरह लड़ेंगे, अपने बाप को भी बेईमानी से मार डालेंगे, खुले तौर पर मारधाड़ के कारनामे करेंगे और थोड़े से रुपयों के बदले दूसरों का माल उड़ा देंगे।'[11]

भारतीयों में ईसाइयत के प्रति तिरस्कार का कारण

वह कहता है- इसलिए भारतीयों ने ईसाइयत को बड़ा ही नीचा दर्जा दिया। बंगाल का गवर्नर शाइस्ता ख़ान इन लोगों को कहता था, 'निम्न स्तर के झगड़ालू एवं गन्दे दुकानदारों की कम्पनी।'[12] इस पर सी.ई. विल्सन ने यह टिप्पणी की है:-

'हमारी महान आधुनिक हस्तियाँ इस बात से इंकार नहीं करेंगी कि उस कुलीन व्यक्ति (शाइस्ता ख़ान) के पास इस बात को कहने के लिए ठोस आधार थे। कम्पनी के नौकरों की सामाजिक व नैतिक छाप, जो उन्होंने बंगाल में छोड़ी, निःसंदेह अति शोचनीय एवं निम्नस्तरीय थी। अलीवर्दी ख़ान, जो कि एक काबिल प्रशासक और बंगाल का मजबूत शासक था- बंगाल में अंग्रेज़ों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की मौजूदगी के विनाशकारी परिणामों को (अगर इन्हें और वहाँ रहने दिया गया तो) पहले ही भाँप चुका था। अत: उसने अंग्रेज़ों व अन्य योरोपियनों को पूरी तरह कुचल देने की ठान ली ताकि उसके सूबे को बरबाद होने से बचाया जा सके। सौभाग्यवश, इसके पहले कि वह अपने इस निश्चय की तामील कर पाता, उसकी मृत्यु हो गई। बंगाल के अन्य नवाबों ने भी कई अवसरों पर इन अंग्रेज़ों पर अंकुश लगाने का प्रयास किया था और इसी तरह सिराजुद्दौला (जो दुर्भाग्यवश अंग्रेज़ों द्वारा किए गए विश्वासघात का शिकार हुआ) ने भी कड़ाई के साथ इनकी गड़बड़ियों को रोकने की तैयारी की थी। अन्तत: इन लोगों से परेशान होकर उसने इन्हें बंगाल से खदेड़ दिया।

अपमान सहकर, झुककर भी धंधा जारी

सिराजुद्दौला द्वारा भगाए जाने से घबराकर हॉलवेज ने अपनी कम्पनी के डायरेक्टरों को 30 नवम्बर 1756 को यह पत्र लिखा जिसके जरिए अपनी हीन दशा बखानी और साथ ही कम्पनी के स्वाभिमान को ललकारा भी 'इतनी प्राणघातक और लज्जास्पद हार किसी भी राष्ट्र ने लिखित इतिहास में नहीं झेली है।'

किन्तु भारत के साथ व्यापार इन अंग्रेज़ 'सज्जनों' के लिए बहुत अधिक कीमती था: अपने सम्मान की अपेक्षा या इन असम्मानजनक अनुभवों की तुलना में, सो वे जमे रहे। मन में कोई ग्लानि या पाप बोध पाले बिना।

वस्तुत: शुरु से ही उन्होंने व्यापार को लूट खसोट से परे नहीं रखा (या यूँ कहें कि 'व्यापार' शब्द उनके लिए 'लूटखसोट' का ही पर्याय था)। लूट ही पूँजी निवेश कही गई। ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापारियों की संस्था नहीं थी बल्कि दस्युओं की कम्पनी थी, जिन्हें एडम्स व कुछ उच्च विद्वानों ने 'समुद्री डकैत' अथवा 'जल दस्यु' कहना ज्यादा मुनासिब समझा। हमारे पास प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्स द्वारा कही वह बात भी उपलब्ध है (इसके बावजूद कि वह भी साम्राज्यवाद का प्रबल समर्थक रहा) जो उसने इस विषय पर कही है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लूट को ही निवेश कहा

'ड्रेक द्वारा गोल्डन हिंद में लेकर लाई गई लूट (जिसकी कीमत तकरीबन 600,000 पौंड थी) को एक प्रकार से ब्रिटिश विदेशी निवेश का मूल एवं स्त्रोत माना जा सकता है। एलिजाबेथ ने इस लूट से प्राप्त रकम से ही अपना सारा विदेशी कर्ज चुकता किया, और बचे हुए हिस्से में से (लगभग 42,000 पौंड) एक अंश को लीवेन्ट कम्पनी में निवेश किया। लीवेन्ट कम्पनी के मुनाफें से ईस्ट इंडिया कम्पनी को आकार दिया गया। जिसके मुनाफें ने 17वीं एवं 18वीं शताब्दी के दौरान विकसित इंग्लैण्ड के विदेशी सम्बन्धों की आधारशिला कायम की।' [13]

कंगाल, भूखे इंग्लैंड के लिए इतना ही धन अकल्पनीय था

1580 में किया गया 42,000 पौंड का निवेश 1700 ई. आते-आते 2,50,000 पौंड का हो गया जिस पर 6.5 प्रतिशत की दर से सालाना ब्याज आने लगा। जिसका मूल-धन हर वर्ष पुन: निवेश में इस्तेमाल किया जाने लगा। यह 25 लाख पाउण्ड ईस्ट इंडिया कम्पनी, रॉयल अफ्रीकन कम्पनी एवं हड्सन ने कम्पनी की कुल पूँजी का मूल्य था।[14] इंग्लैण्ड जैसे एक बहुत छोटे से एवं गरीब देश के लिए इतने विस्मयकारी धन का स्त्रोत बहुत ज्यादा था। इसलिए उन्हें इस कामधेनु से चिपके रहना ही सर्वाधिक उचित लगा। पाप शंकाएँ या अन्त:करण की समस्या वैसे उनके सामने कभी भी थी ही नहीं। कंगाल, भूखे इंग्लैंड के लिए इतना ही धन अकल्पनीय था।

आवारा बेरोजगार छोकरे ही आए भारत

क्लाइव जिसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है, उसी दस्यु-परम्परा या लुटेरों के स्टॉक का अंग था, जिसके ड्रेक, हॉकिन्स, रोल, ब्लेक अथवा क्रामवेल थे। क्लाइव एक किसी छोटे किसान का लड़का था जिनके पूर्वजों ने नार्मन विजय के दौर में थोड़ी जमीन आदि हथिया रखी थी और जिस पर से जब उन्हें निकाल फेंका गया तो वे समुद्र पर अपनी आजीविका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu.

के लिए निर्भर हो गए, वहाँ लड़े, लूट की और हर समुद्र एवं महाद्वीप पर सफलता का झंडा गाड़ा। जोखिम उठाने वाले इन अंग्रेज़ों की लम्बी कतार में कोई भी इतना बड़ा न हो पाया, जितना क्लाइव। उसका जन्म 1725 में हुआ था और बचपन से ही उसने उन गुणों को दर्शाया जो लड़ाई के मैदान में किसी को महत्वपूर्ण बना देते हैं। लड़ना उसके लिए आनन्द का विषय था और उसका मिज़ाज इतना उग्र था कि कोई उसे नियंत्रित न रख पाता था। आखिर में 18 वर्ष की उम्र आते-आते उसके पिता ने खुशी-खुशी ईस्ट इंडिया कम्पनी में एक मामूली क्लर्क के पद पर क्लाइव को कार्य करने के लिए इंग्लैण्ड से मद्रास भेज दिया, और फिर न केवल वहाँ के बहुत गरम मौसम को जिसने उसके स्वास्थ्य को खराब किया, बल्कि गरीबी, असहायता, उपेक्षा, बेचारगी और अकेलेपन को झेलते क्लाइव ने दो बार आत्महत्या करने का प्रयास किया।[15] इस तरह का आदमी था क्लाइव। आवारा बेरोजगार छोकरों का रोजी-रोटी ती तलाश में आना जिन लोगों को साम्राज्यवाद नजर आता है, वे उसके दलाल ही हो सकते हैं।

कंपनी के मूल सिद्धांत

अब कम्पनी के विषय में कुछ शब्द: 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' 'अपने मूल स्त्रोत में मौजूद नीचता और कमीनगी से भरे 'सिद्धान्तों' को ही अपने आगे के ऑपरेशन्स में विस्तार देती रही: अपनी सिविल पॉलिसी में भी और अपनी बड़ी उपलब्धियों में भी वह लुटेरों और दस्युओं के दुराचार और लुच्चई भरी नीचता से ही परिचालित रही।[16] जाहिर है, अगर भारतवासियों से बड़ी मात्रा में धन सम्पदा लूटनी थी, तो ताकत का इस्तेमाल तो सुनियोजित ढंग से ही करना था।[17] जैसी एक यह कम्पनी थी, ऐसी ही अनेक लुटेरी कम्पनियाँ स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस आदि हर देश में बनी।

इस तरह हम पाते हैं कि ब्रिटिश व्यापारियों ने कर्नाटक में लड़ी गई लड़ाईयों में ऐसी ही हरकतें स्थानीय मुखिया लोगों के विरुद्ध की। अन्य यूरोपीय कम्पनियों के साथ अपने प्रभाव के विस्तार के मामले में होड़ करते हुए भी इसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरह की करतूत की और जिस मुगल शासन ने कृपा पूर्वक उन्हें व्यापार करने की इजाज़त दी थी, उसकी ही जड़ों को कमजोर करते हुये बंगाल में उनकी प्रभुता उखाड़ फेंकने की नीयत से वे ही घटिया हरकतें की जो कि मानों उनके वंश या स्त्रोत के मूल में ही निहित थीं। इसी प्रकार बदकिस्मती के मारे बंगाल के जीवन में जिस प्लासी की लड़ाई ने निर्णायक मोड़ ला दिया और जिसके कारण अनाथ से हो रहे बंगाल में कम्पनी को राजनीतिक प्रभुता जमाने का अवसर मिल गया, वह प्लासी की लड़ाई अपने कारकों में इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी जितनी कि अपने परिणाम में सिद्ध हुई। कैसे। हुआ यह कि बंगाल की लूट ने ही पहले तो इंग्लैण्ड को औद्योगिक समृद्धि दी, फिर यह लूट ही सम्पूर्ण यूरोप की औद्योगिक क्रांति की नींव बनी। प्लासी के युद्ध और बंगाल को लूटने के साथ भारत में विदेशियों द्वारा लूट का जो सिलसिला शुरु किया, उसने भारत के लोगों में कंगाली और हीनता बढ़ाई। यूरोपीय शक्तियों ने बाद में अनेक देशों में उपनिवेश स्थापित किये और सभी जगह वहाँ के मूल निवासियों को गरीब और कंगाल बनाया।

नीचतापूर्ण षडयंत्र

जब बंगाल का नया नवाब सिराजुद्दौला अंग्रेज़ों से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ तब क्लाइव नीचतापूर्ण षडयंत्र पर उतर आया। वस्तुतः प्लासी में जो घटना घटी, उसे किसी भी तरह न तो युद्ध कहा जा सकता और न ही लड़ाई। स्वयं क्लाइव ने उसके बारे में लिखा है कि 'वह लड़ाई छलघात, धोखेबाजी, प्रवंचना, कुतर्क, कपटप्रबंध, साजिश, 'पॉलिटिक्स' और 'गॉड'- न जाने क्या-क्या था।"[18] यहाँ उन घटनाओं के विस्तार में जाना उचित न होगा जो प्लासी की इस घटना के बाद बंगाल में घटित हुई। तब भी इससे ब्रिटेन की जीत के तरीकों और उसके सही स्वरूप तथा इस जीत के लिये अपनाये जाने वाले उपयों के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उनसे यह पता भी चल जाता है कि आखिर भारतीय शासक जो अंग्रेजों की तुलना में हर प्रकार से सुसज्जित थे, आखिर इन अंग्रेज़ों की कूटनीति, वस्तुतः जिसे चालाकी और विश्वासघात कहना ज्यादा उचित होगा, का मुकाबला क्यों नहीं कर पा रहे थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कामों का विवरण विस्तार से अभिलेखों के रूप में विद्यमान है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे लिये यह जानना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि आखिर बंगाल ही क्यों अंग्रेज़ों के हत्थे चढ़ गया और पश्चिमी समुद्र तट के राज्य क्यों उनके कब्जे में नहीं आये। जबकि समुद्री रास्ते से तो वे इंग्लैण्ड के ज्यादा नजदीक थे।

मराठों की विशाल नौसेना

संभवत: इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि भारत का पश्चिमी समुद्र तट मराठों की विशाल नौसेना के आधिपत्य में था। मराठों की यह नौसेना अपने समय में विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली समुद्रीसत्ता मानी जाती थी। भारत के पूर्वी तट को भी कोई खतरा हो सकता है, इसका पूर्वानुमान लगाया नहीं जा सकता था। अत: उधर ध्यान नहीं दिया गया और अंग्रेज़ों ने सुरक्षित पूर्वी तट को मायने प्रभाव विस्तार के लिये चुना।

उर्वर और धनी बंगाल

दूसरा कारण यह है कि बंगाल उन दिनों अत्यंत विस्तृत, उर्वर, आबादी की बहुलता वाला और धन समृद्ध प्रांत था। एक ब्रिटिश सज्जन कर्नल हिल ने बंगाल के बारे में यह बताया है कि बंगाल के जरिये एक ही झटके में असीमित सम्पदा प्राप्त की जा सकती है। यह संपदा इतनी अधिक हो सकती है कि वह ब्राजील और पेरु की खदानों से मिलने वाली संपदा के समतुल्य होगी।[19]

धन बरसने लगा। क्लाइव द्वारा हड़पे गये मुनाफे के विषय में उसमें विशेषत: यह लिखा है–'यह आराम से कहा जा सकता है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी भी अंग्रेज़ ने शून्य से आरम्भ कर मात्र 34 वर्ष की उम्र में इतनी ज्यादा सम्पत्ति संचित नहीं की है, जितनी क्लाइव ने की।'[20]

एक अंग्रेज़ सैनिक द्वारा पूर्व के खजाने के प्रथम आँखों देखे वर्णन का उल्लेख करते हुये मैकाले लिखता है–'क्लाइव के सम्पत्ति संग्रह की कोई सीमा ही नहीं थी बंगाल का खजाना उसके लिये खुला था। सिक्कों के विशाल ढेर उसने लूट में संचित किये। क्लाइव सोने और चांदी के ढेरों के बीच चल रहा था। उसने मानिक व हीरों के मुकुट पहने और मनमाने ढंग से खुद को समृद्ध बनाता रहा।[21]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आठ वर्षों में छः अरब पौंड लूटे

किन्तु क्लाइव ने स्वयं के लिए अथवा अपनी कम्पनी सरकार के लिए जो भी लूट का माल बटोरा वह सब उस थोक डकैती और लूटमार की तुलना में कदाचित अति एवं तुच्छ कहा जाएगा जिसका सिलसिला शुरु हुआ बंगाल से क्लाइव के चले जाने के बाद। 'जब बंगाल एक निरीह बेसहारा शिकार की भांति लालची अंग्रेज अफसरों के झुंड की हवस या शिकार हुआ।'[22] बारम्बार छल पूर्वक बंगाल में एक के बाद एक नवाबों को गद्दी पर बैठाया और उतारा जाने लगा और हर बार उन सभी से बड़ी मात्रा में धन ऐंठा गया। अर्थात् हर एक अवसर को मानो मनचाहा फल देने वाले कल्पवृक्ष को झकझोरने के सुअवसर के रूप में देखा गया। प्लासी की घटना के बाद जब पहली बार मीर जाफर को प्लासी का नवाब बनाया गया, तब अंग्रेज़ अफसरों और सैनिक टुकड़ी ने उनसे बारह लाख अड़तीस हज़ार पाँच सौ पचहत्तर पौंड वसूले, जिसमें 31,500 पौंड अकेले क्लाइव ने धर लिए। इस बोनस के अतिरिक्त मीर जाफर ने फिरंगियों को बंगाल की एक धनसमुद्र जागीर दी जिससे क्लाइव प्रतिवर्ष 27,000 पौंड राजस्व बटोरता था। फिर जब मीर कासिम को 1760 में प्लासी का नवाब बनाया गया तो उसने अंग्रेज़ अफसरों को 2 लाख 269 पौंड नजराने में भेंट किए जिसमें से वॉन रिटॉर्ट ने 58,333 पौंड धर लिए। फिर मीर जाफर को दुबारा प्लासी का नवाब 1763 में बनाया गया जिसके एवज में 5 लाख 165 पौंड रकम वसूली गई। फिर 1765 में उसकी जगह निजामउद्दौला को गद्दी पर बिठाया गया, 665 पौंड की रकम मुआवजे के रूप में अंग्रेज़ों ने वसूली। (देखें रमेश चन्द्र दत्त कृत 'भारत का आर्थिक इतिहास' खंड-1, पृष्ठ 22)। इस प्रकार से क्लाइव जो कि एक निर्धन क्लर्क के रूप में भारत आया था 32 वर्ष की आयु में इंग्लैण्ड लौटा ऐसी सम्पदा लेकर जिसका सालाना ब्याज 40,000 पौंड से भी अधिक बैठता था, (अपने रिश्तेदारों को 50,000 पौंड तक पहले ही दे दिए जाने के बाद)।[23] इस प्रकार से वह ब्रिटिश राजा की प्रजा के कुछ सबसे अमीर लोगों की श्रेणी में आ बैठा। एक साधारण से आकलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तकरीबन 6 अरब पौंड (जो रकम बंगाल की समस्त वार्षिक राजस्व से चार गुना ज्यादा थी) 1757 से 1765 के बीच 8 वर्षों की अल्प

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवधि में बंगाल के बाहर खींच ली गई। इसी प्रकार से, उपहारों एवं नकद के रूप में जमीदारों, नवाबों, के मातहत अफसरों, भारतीय व्यापारियों से निचोड़ी गई धनराशि कम्पनी के उन गैर जिम्मेदार, दरिन्दगी पर आमादा कर्मचारियों द्वारा वसूली गई, जिनका 'एकमात्र ध्येय था भारतीयों से जल्द से जल्द असीमित धन/रकम की वसूली कर डालना ताकि उसे घर वापस जाकर दिखाया जा सके।[24]

पूरे यूरोप की कुल सोना-चाँदी से ज्यादा धन लूटा बंगाल से

एडम्स ब्रुक्स आगे लिखते हैं-

'इस प्रकार से कोलकाता में विपुल धन संग्रह किया गया जबकि तीन करोड़ इन्सान कंगाली के निकृष्ट जीवन की ओर ढकेले जा रहे थे।21 क्लाइव ने स्वयं लिखा है कि संवेदनशीलता अथवा जनहित की भावना की एक भी चिंगारी इन कम्पनी के अधिकारियों-कर्मचारियों में शेष नहीं थी। उनकी मानवीय संवेदना मर चुकी थी' उस अकूत सम्पदा की लालसा से उपजी दावाग्नि में [25] 'ये खजाने जो कि शताब्दियों से भारत के लोगों की मेहनत का अर्जन थे, अंग्रेज़ों ने धर दबोचे और लन्दन ले गए उसी तरह जैसे कि रोमन लोग ग्रीस एवं पौन्टस को लूटकर लूट का माल इटली ले गए थे।[26]

'इन खज़ानों का वास्तविक मूल्य क्या रहा होगा, शायद आज इसका अन्दाज लगा पाना हमारे लिए मुश्किल होगा। फिर भी इसका धुँधला सा अन्दाज हम उस वर्णन को पढ़कर लगा सकते हैं जिसे अमरीकी विद्वान एडम्स ब्रुक्स ने लिखा है-[27] 'ब्रिटिश लोगों द्वारा की गई लूट के संदर्भ में खजाने का वास्तविक मूल्य क्या था, कोई आदमी इसका अन्दाज नहीं लगा सकता। पर फिर भी वह अवश्य ही कई-कई अरब-पौण्ड्स रहा होगा। एक बड़ी रकम जो निश्चय ही समस्त यूरोपीयों के सोने चांदी की कुल कीमत से कई गुना ज्यादा है।[28]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत बना इंग्लैंड के लिए कामधेनु

इस लूटपाट का परिणाम इंग्लैण्ड के लिए उतना ही लाभकारी था, जितना कि बंगाल के लिए अनर्थकारी। यही वह सम्पदा थी जिसने ब्रिटेन को पहले ऐसे योरोपीय देश के रूप में स्थापित होने के योग्य बनाया जो अपने पास वस्त्रोद्योग क्षेत्र होने का दावा कर सके। ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए भारत पौराणिक 'कामधेनु' सिद्ध हुआ। लूट से संचित इस अमूल्य सम्पदा ने ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा झेली जा रही कई बीहड़ समस्याओं को भी सुलझा दिया।

एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री एल.सी.ए. नोवेल्स ने पूरी बात को बड़े ही सुलझे ढंग से सामने रखा है। वह समझाती हैं कि कम्पनी के भारतीय व्यापार की पूरी समीक्षा ही इस बात को लेकर थी कि भारत से माल उठाने के लिए, उसे भारतीयों को सोने-चांदी में कीमत का भुगतान करना पड़ता था। क्योंकि भारतीय व्यापारी सोने-चाँदी को ही वास्तविक सम्पदा मानता था। हमें यहाँ याद रखना होगा कि उस समय इंग्लैण्ड के पास भारत को देने के लिए तैयार माल/सामानों के रूप में ऐसा कुछ भी नहीं था जो भारत में बने सामानों की गुणवत्ता या तकनीकी से तुलना कर सके। उद्योग के नाम पर उसके पास एकमात्र ऊन का ही कारोबार था जिसमें भारत को कोई रूचि नहीं थी। इसीलिए भारत अपने सामानों की कीमत केवल सोने या चांदी में ही वसूला करता था। प्रारम्भ से ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के साहसी नुमाइन्दे इस बात को लेकर काफी परेशान रहे कि आखिरकार वह क्या व्यवस्था हो सकती है जिसमें भारतीय सामानों के बदले बहुत ही बेमानी या कुछ भी रकम अदा न करनी पड़े। इसके लिए उन्होंने जो पहला तरीका निकाला वह था व्यापार की एक छलपूर्ण घुमावदार व्यवस्था को विकसित करना जो घूम फिरकर सारा लाभ स्वयं ही सोख लें। खासतौर पर अफ्रीका व अमेरिका में विकसित की गई औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा निचोड़े जा रहे धन से भारत में अपने खर्चों को चलाना प्रारम्भ में उनकी विवशता थी क्योंकि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत में अभी तक प्रत्यक्ष रूप से लूटपाट कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाया था।[29] नोवेल्स ने शायद नब्ज पर हाथ रख दिया, जब वे लिखती हैं कि 'भारत के साथ अंग्रेज़ों का व्यापार वस्तुतः किसी ऐसी चीज की तलाश का हिस्सा था जिसे भारत के व्यापारी कम्पनी से लेना स्वीकार करें। वह चांदी जो अंग्रेज़ों ने गुलामों को वेस्टइंडीज और स्पेनिश अमेरिका में बेचकर कमायी थी, इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण थीं।

निवेश

बंगाल की लूटखसोट द्वारा ही समस्त ब्रिटिश व्यापार संभव हो सका। अंग्रेज़ों को अब यह आवश्यकता न रही कि वे इंग्लैण्ड से जहाजों द्वारा सोना-चांदी मंगवाएँ भारतीय सामानों को खरीदने के लिए। उलटे, हमारा अपना सोना ही इस्तेमाल किया जाने लगा हमारे ही यहाँ बने सामान को खरीदने के लिए और वह भी उन शर्तों पर जो अंग्रेज़ों ने थोपी (इस पर और चर्चा आगे जाकर की जाएगी)। यह प्रत्यक्ष शोषण था, बर्बर और खुली लूटखसोट थी किन्तु अंग्रेज़ों ने इस सरासर लूट और शोषण को बड़ी ही मक्कारी से भारत में किया जा रहा निवेश बताया। इस कला में पाश्चात्य देश, जैसे-जैसे समय बीतता बया अधिकाधिक पारंगत होते गए।

भारत में अपने क्रियाकलापों के वास्तविक स्वरूप को छुपाने के उद्देश्य से इन लोगों ने नए शब्दों का प्रचार/शुरू किया और इस प्रकार से वास्तविकता को जनसाधारण के लिए समझ पाना ज्यादा से ज्यादा दूभर बना दिया गया। एक सामान्य पाठक शायद इस विषय पर लिखे साहित्य को पढ़कर बड़ी आसानी से भुलावे में आ जाएगा और इस प्रकार से सच्चाई से कोसों दूर चला जाएगा। इन भ्रामक शब्दजालों के जरिए।

एल.स्क्रैफ्टन क्लाइव की काउंसिल का एक सदस्य था उसने बताया है कि कैसे प्लासी की घटना के सिर्फ 3 साल के अन्दर अंग्रेज़ों ने भारत के साथ अपना सारा व्यापार संचालित किया। उसने बताया है कि कैसे इंग्लैण्ड

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत का माल पूरी तरह मुफ्त में इंग्लैण्ड जाता रहा इंग्लैण्ड का रत्ती भर सोना इसके एवज में नहीं दिया गया है। इन गौरवपूर्ण सफलताओं ने ब्रिटेन को तकरीबन 30 करोड़ पौण्ड की धनराशि उपलब्ध कराई और कायदे से देखा जाए तो बंगाल के सूबे से प्राप्त सारी की सारी धनराशि इंग्लैण्ड में ही जाकर केन्द्रित हुई। इतना बड़ा धन कम्पनी के हाथ लगा उसके अपने शेयरों से और उस धन से जितना बिल/रसीदों के रूप में कलकत्ता के खजाने में भुगतान किया गया कि भारत के साथ सारा का सारा व्यापार तीन सालों तक इंग्लैंड से एक भी औंस का सोना भारत भेजे बिना ही हो गया।[30]

हाउस ऑफ कॉमन्स की 1783 की चयन समिति ने इस व्यवस्था के बारे में टिप्पणी की 'कई वर्षों से बंगाल के राजस्व का एक विशेष हिस्सा अलग रख दिया जाता रहा है भारत निर्मित सामानों को खरीद कर इंग्लैण्ड भेजने के उद्देश्य से और इसी को निवेश (इन्वेस्टमेंट) का नाम दिया जाता रहा है।

भारत की गरीबी के इस एक बहुत बड़े कारण को सामान्यतया उसकी समृद्धि एवं धन के लक्षण की तर ह दिखाया गया। भारत के साथ इस तरह के व्यापार को जो कि उसके लिए प्राणघातक या भ्रामक रूप में प्रस्तुत किया गया। जब इस प्रकार के कारोबार पर विचार किया जाता है जो इंग्लैण्ड और बंगाल के वाणिज्य में चलाया जा रहा था, तब 'निवेश' की इस तथाकथित व्यवस्था (जिसे बंगाल के राजस्व से ही चलाया जा रहा था) के विध्वंसात्मक परिणाम खुलकर सामने आ जाते है। यह समूचा व्यापार जहाँ तक कम्पनी का ताल्लुक है, लेन-देन के रूप में किया गया आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि एक ऐसा कारोबार है जिसमें सिर्फ एक तरफ लेना ही शामिल है बिना कुछ वापस किए अथवा बिना किसी अदायगी के।[31]

भूमि राजस्वः

अभी तक हमने बहुतों में से मात्र उन कुछ तरीकों की ही विवेचना की है जिनका ब्रिटिश लोगों ने बंगाल के खजाने को प्रत्यक्ष रूप से लूंटने के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए इस्तेमाल किया। अब हम लूट की उस विधि की विवेचना करेंगे जो कि अप्रत्यक्ष एवं परिष्कृत था: भारत की धन सम्पदा को लूट ले जाने के लिए जिसे अंग्रेज़ों ने लागू किया और यही वह संदर्भ है जिसकी पृष्ठभूमि में 1765 में कम्पनी को दिए गए दीवानी के अधिकार के महत्व को समझा जाना है।

बक्सर की घटना के बाद अंग्रेज़ व्यापारियों ने मुगल सम्राट को नज़राना भेंटकर बंगाल के कुछ समृद्ध जिलों में राजस्व जमा करने का अधिकार इस तरह से छलपूर्वक छीन लिया। यह जमा की हुई धनराशि नियमों के अनुसार, बंगाल के खज़ाने में जानी चाहिए थी किन्तु जैसा ब्रिटिश व्यवहार एवं क्रियाकलाप हमेशा से रहा, इन सरकारी नियम कायदों की धज्जियाँ उड़ा दी गई।

धनी बंगाल को कंगाल बना डाला

इस तरह से एक नया कुरुप दौर शुरु हुआ जिसने बंगाल के तत्कालीन दुख भरे जीवन में एक नया ही अध्याय जोड़ा। अब किसानों की बारी थी कि वे इन अंग्रेज़ व्यापारियों की हवस का शिकार हों। मानों अब शेष जीवन में दोबारा समृद्धि उनके भाग्य में नहीं लिखी थी। एक समय में जो बंगाल अपनी धन सम्पदा के लिए जाना जाता था, वह आज गरीबी से जोड़ा जाता है इसकी जड़ें इसी औपनिवेशिक शोषण में हैं। यह स्वतंत्र भारत के लिए शर्म की बात है कि अंग्रेज़ों के समय की भू-राजस्व व्यवस्था अभी तक बरकरार बनी हुई है- अपने समस्त उन्हीं मूल सिद्धान्तों के साथ। इस विषय में बलराज मेहता वॉल्फ लेडेजिंएकी, के.एन.राज, पी.आर.दुबाशी, पी.टी. जॉर्ज आदि अर्थशास्त्रियों ने विशद विवेचना की है। अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफइण्डिया' में श्री नेहरू ने एक सटीक टिप्पणी की है 'एक खास बात जो अलग दिखती है, वह यह कि भारत के जो हिस्से अंग्रेज़ों के अधीन ज्यादा समय तक रहे थे। वे उतने ही ज्यादा गरीब हैं। वास्तव में एक ऐसी सारिणी बनायी जा सकती है इस बात को इंगित करने के लिए कि भारत की बढ़ती हुई गरीबी एवं ब्रिटिश शासन के लम्बे कार्यकाल का आपसी सम्बन्ध क्या है।' [32]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह दुख की बात है कि नेहरु जैसा व्यक्ति जिसको भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्रिटेन की इस दादागिरी भरी काली भूमिका की इतनी स्पष्ट समझ थी, जिसके पास विद्वत्ता भी थी एवं एक प्रखर विचारधारा भी और जिस को भारतीय जनता का ऐसा समर्थन प्राप्त था, वह भी भारतीय किसानों को इस अतिशोषणापरक भूमि राजस्व व्यवस्था के शिकंजों से मुक्त करवा पाने में असफल रहा। यही शायद हर उन देशों के लिएसत्य है जो पहले योरोपीय देशों के उपनिवेश रह चुके थे।

अंग्रेज़ यहाँ धन की लिप्सा से आए थे। प्लासी के बाद मिली राजनीतिक सफलता की मिठास को एक बार चख लेने के बाद उनकी भूख ने हवास का रूप ले लिया। भूमि राजस्व असीमित, अमर्यादित, बेरोक लाभों को प्राप्त करने का एक स्त्रोत था, जिसके मुकाबले पहले की सारी आमदनी फीकी लग रही थी। बंगाल को पूरी ब्रिटिश हुकूमत झेलने का पहले अनुभव हुआ। भारत में ब्रिटिश आधिपत्य वाला यह पहला इलाका था जो 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज़ों के कब्जे में आ गया। भारत के कुछ अन्य हिस्सों में से वे इसके बाद धीरे-धीरे ऐसे ही छल-प्रपंच से बटे। शेष भारत में देशी राजाओं से उन्हें संधिया करनी पड़ी। बंगाल का अंग्रेज़ी शासन पूर्णतया लूट खसोट से शुरु हुआ था। एक ऐसी भूमि राजस्व व्यवस्था द्वारा यह लूट की गई जो न केवल जीवित बल्कि मृतक किसानों की भी आखिर बंद तक खून चूस लेने में विश्वास करती थी।[33]

बहुत से विद्वानों का मत है कि अंग्रेज़ों के लिए भारत जैसे बड़े देश के बड़े हिस्से को विजित कर पाना असम्भव था अगर उन्होंने भारत के किसानों को गरीब बनाकर खत्म न किया होता। बंगाल के भारतीय शासकों के शासनकाल के आखिरी वर्षों (1764-65) में जो भूमि राजस्व इकट्ठा किया गया था, वह कुल लगभग 817000 पौंड था। कम्पनी के प्रशासन के प्रथम वर्ष में (1765-66) बंगाल से इकट्ठा किया गया राजस्व घटकर 1470000 पौंड हो गया और 1771-72 आते-आते यह राजस्व राशि तीन गुनी बढ़ा डाली गई 23 लाख 41 हजार पौंड प्रतिवर्ष वसूले जाने लगे। आगे आने वाले वर्षों में यह राशि ऊपर ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
चढ़ती चली गई। 1775-76 में आंकड़े हो गए वे 2,188000 पौंड और जब कार्नवालिस ने अपने प्रसिद्ध 'स्थाई बन्दोबस्त' के द्वारा इस रकम को स्थाई बना दिया तब इसको निश्चित किया गया 3400000 पौंड पर अर्थात भारतीय शासन की राजस्व परम्परा से साढ़े चार गुना ज्यादा राजस्व अंग्रेज़ों ने वसूला इतिहासकार थामसन एवं गैरेट ने कहा है- '1857 के पहले के कर निर्धारण का इतिहास एक ऐसे 'आर्थिक भाड़े' को वसूलने की नाकाम कोशिशों का इतिहास है जिसे अक्सर 'शुद्ध उत्पाद' बता दिया जाता था।'

बंगाल के किसानों के खेतों से राजस्व वसूली नीलामी किया जाना एक ऐसी कोशिश थी जिसका उद्देश्य था 'शुद्ध उत्पाद' का अधिक से अधिक हिस्सा खींच लेना। इस व्यवस्था के नाकाम हो जाने पर, स्थाई बन्दोबस्त की लुटेरी मद्रास और मुम्बई प्रेसिडेंसी में राजस्व का जो निर्धारण किया गया वह खेतों के 'शुद्ध उत्पाद' का चतुर्थ पंचमांश अर्थात 80 प्रतिशत था।[34] इस प्रकार किसान की मजदूरी, बीज, सिंचाई आदि की लागत भी उसके पास नहीं रहने दी जाती थी, किसी लाभ की तो वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। ब्रिटिश सिस्टम ने भारत में खेती को एक घाटे का सौदा या निरंतर हानि पहुँचाने वाला कारोबार बना दिया और किसाना को ऐसी हानि निरंतर सहने को विवश नागरिक बना डाला गया।

बाद की व्यवस्थाएँ, जिन्हें रैयतवारी व्यवस्था की महालवारी व्यवस्था के नाम से चलाया गया, लालच का और भी नीचतापूर्ण नमूना थी जिन्हें भारत के किसानों के लिए ब्रिटिश लगाव आदि छलपूर्ण विशेषताओं से विभूषित करके प्रचलन में लाया गया। इनके द्वारा अब भारतीय किसान के साथ सीधा करार किया गया। इस बात का प्रचार करते हुए कि यही भारत की पारम्परिक व्यवस्था थी और यह स्थाई न होकर अस्थाई थी। ताकि समय-समय पर इसक पुनर्मूल्यांकन संभव हो सके। इस नई व्यवस्था के साथ अंग्रेज़ों ने सारी माल-मलाई सीधे किसान से ही उठानी शुरू कर दी किसी बिचौलिए जमीदारों को भी कुछ अंश देने की मजबूरी से छुटकारा पाते हुए और साथ ही हर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्ष पुनर्मूल्यांकन की व्यवस्था के नाम पर राजस्व की रकम बढ़ाते जाने की सुविधा बनाए रखी। नृशंस लूट का यह अनोखा दृष्टांत था भारत में।

एक मोटे आकलन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 1801 ईस्वी तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा ऐंठी गई रकम (जिसे भू-राजस्व के नाम से वसूला गया था) 42 लाख पौंड थी जिसे फिर हम लगातार बढ़ते हुए पाते हैं। मुख्य तौर पर कम्पनी के अधीन और नए क्षेत्रों के आ जाने से एवं पुनर्मूल्यांकन की व्यवस्था द्वारा 1857-58 में यह रकम 1 करोड़ 35 लाख पौंड हो गई। भारत में विक्टोरिया के शासन आने के बाद यह कुछ और ऊपर जाकर 1 करोड़ 25 लाख पौंड तक पहुँच गयी- 1900-01 आते-आते। फिर 1911-12 में सीधे 2 करोड़ पौंड व 1936-37 में यह रकम हो गई 2 करोड़ 39 लाख पौंड।

तब भी विश्व का सबसे धनी देश भारत ही था

यहाँ एक अर्थशास्त्री के नाते यह तथ्य स्पष्ट कर देना मेरा कर्त्तव्य है कि भारत की जो लूट अंग्रेजों ने की, वह भयंकर थी और उनके लिए वह समृद्धि का आधार बनी। परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं है कि सम्पूर्ण भारत उस लूट से कंगाल हो गया। सत्य यह है कि सम्पूर्ण 19वीं शताब्दी ईस्वी में भी भारत विश्व का सबसे धनी देश बना रहा। विश्व में सर्वाधिक स्वर्ण भण्डार आज भी भारत में ही है, यद्यपि शासन व्यवस्था कम्युनिस्ट ढाँचे से प्रेरित होने के कारण सारा धन सरकार दबा सकती है, हथिया सकती है और वह भी राष्ट्रहित के नाम पर, इस तथ्य को जानने के कारण भारत के लोग अपने पास की स्वर्ण सम्पदा घोषित नहीं करना चाहेंगे। यदि भारत में शासन परम्परागत निरन्तरता में हो जाए और लोगों की सम्पत्ति की रक्षा भारतीय राज्य अपना कर्त्तव्य घोषित करे, तभी लोग अपनी स्वर्ण सम्पदा का सही विवरण दे सकेंगे। इस विषय में एंगस मेडिसन की पुस्तक 'दि वर्ल्ड इकॉनॉमी' में प्रसारित यह बात सही नहीं है कि 18वीं शताब्दी से चीन भारत से आगे निकल गया। उससे पहले विश्व में भारत ही सिरमौर था, यह तो मेडिसन भी मानते ही हैं।

•••

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. दीतमार रादरमुंड: एशियन ट्रेड एंड यूरोपियन एक्सपेंशन-इन दि एज ऑव मर्केंटालिज्म, पूर्वोद्धृत, अध्याय 4, पृष्ठ 19 (दिल्ली, 1981).
2. वही, अध्याय 2, पृष्ठ 12.
3. वही।
4. वही, साथ ही पृष्ठ 18,19
5. विलियम डब्लू हण्टर: ए हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इंडिया, दो भागों में, लांगमैन, लंदन, 1912 एवं 1919 ईस्वी
6. दीतमार रादरमुंड: अध्याय 4.
7. प्रो. केडिया एवं ए. सिन्हा: रूट्स, पूर्वोद्धृत अध्याय 1.
8. वही, अध्याय 1 एवं 2 देखें।
9. डेविड लेन्डेस: दि वेल्थ एवं पावर्टी ऑव नेशन्स, अध्याय 5, - 'ब्लैक गोल्ड' पृष्ठ 73-74, अबेकस, लंदन 2000।
10. विशेषत: देखे, डेविड लेंडेस: पूर्वोद्धृत में अध्याय 10, 'फॉर लव आव गेन'।
11. वही। साथ ही प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत।
12. वही।
13. प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत अध्याय 2.
14. वही।
15. डेविड लन्डेस: पूर्वोद्धृत, अध्याय 11, पृष्ठ 166-167.
16. देखें, के.एन. चौधुरी:- दि ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑव एशिया एंड दि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी 1600-1760, अध्याय 6, 7 एवं एवं 9 केम्ब्रिज,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लंदन, 1985.

17. वही।

18. एच. फर्वर: जॉन कम्पनी एट वर्क, अ. 7-8, लंदन, 1951.

19. प्रो. केडिया एवं ए. सिन्हा: पूर्वोद्धृत अध्याय 3.

20. वही, पृष्ठ 90-94.

21. वही।

22. वही।

23. वही।

24. वही।

25. वही,।

26. वही, अध्याय 4 एवं 5

27. वही।

28. वही।

29. वही।

30. वही।

31. वही।

32. जवाहर लाल नेहरू:- ए डिस्कवरी ऑव इंडिया (प्रो. केडिया: पृष्ठ 96 पर उद्धृत)

33. प्रो. केडिया आदि:- पूर्वोद्धृत, अध्याय 4, पृष्ठ 97.

34. वही पृष्ठ 98.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-6

भारतीय अर्थव्यवस्था का विखण्डन इंग्लैंड का आधुनिकीकरण

जैसा कि पूर्व में उल्लेख हो चुका है, ब्रिटिश भारत के इतिहास में 1813 ई. का चार्टर एक्ट एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। उसने ब्रिटिश संसद के एक कानून के जरिये समस्त ब्रिटेनवासियों के लिए भारत के द्वार खोल दिये। अब भारत केवल ईस्ट इंण्डिया कंपनी का कार्यक्षेत्र नहीं रह गया था, अपितु समस्त ब्रिटिश यह सुविधा पा गये थे कि वे भारत आकर फलें फूलें। अंग्रेज भारत आकर बसने लगे और अपनी जरूरतों के मुताबिक इसे उपनिवेश बना लिया। इसे ही वे भारत का तथाकथित 'आधुनिकीकरण' कहते हैं। यह आधुनिकीकरण उन अंग्रेजों की जरूरत बन गया और भारतीयों को इसे स्वीकार करना मजबूरी हो गया। इसे ही भारत की अर्थव्यवस्था में एक क्रान्ति अर्थात जबरदस्त उथल-पुथल कहा गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पूर्ववर्ती व्यवस्था पूरी तरह बदल दी गयी। भारत के शोषण के तरीकों में रूपान्तरण किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके सेवक भारत का शोषण मूर्खतापूर्ण ढंग से और अविचारित ढंग सं बलपूर्वक कर रहे ते, इस प्रकार के शोषण का आधार ही नष्ट कर रहे थे।[1] अब ऐसे कदम उठाये गये जिससे कि भारत के शोषण का वैज्ञानिक आधार तैयार हो सके और यह शोषण सम्पूर्ण ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग के हित में किया जासके। उन्होंने औद्योगिक पूंजी के जरिये शोषण के नये स्तर का पथ प्रशस्त किया। यह नया रास्ता पहले के अस्त-व्यस्त लूटपाट के तरीके की तुलना में भारत की अर्थव्यवस्था को अधिक गहराई से और नियोजित ढंग से ध्वस्त करता था।[2]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1813 ई. तक इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हो गया था। इस परिवर्तन का मुख्य आधार था भारत से इंग्लैंड का संबंध। इसके बाद के दशकों में यानी उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी में इंग्लैंड के उद्योगों के लिए भारत के कच्चे माल की जरूरत लगातार बढ़ती गयी, क्योंकि इंग्लैंड के पास अपने नये उद्योंगों के लिए कच्चा माल था ही नहीं। इसके साथ ही इंग्लैंड के लिए 'सुरक्षित बाजार' उपलब्ध कराया गया, जहां कि चुंगी की दरों की आड़ में इंग्लैंड अपना माल सुरक्षित ढंग से बेच सके। इन्हीं दोनों जरूरतों के कारण रेल लाइनों का जाल बिछाया गया। साथ ही व्यावसायिक उपयोग की फसलों को प्रोत्साहन दिया गया।

तब से भारत के विदेश व्यापार की संरचना आधारभूत रूप से बदल गयी। यह वही समय था, जब रिकॉर्डो आदि अत्यन्त सम्मानित क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त तथा अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन के सिद्धान्तों को गढ़ा और प्रचारित किया। (देखें, रिकॉर्डो तथा साथ ही पाल हेरिसन की पुस्तक- 'इनसाइड दि थर्ड वर्ल्ड', जिसमें वे कहते हैं कि उपनिवेशवादी शक्तियों ने विश्व के वर्तमान विभाजन की नींव रखी, जिसमें एक ओर औद्योगिक राष्ट्र हैं और दूसरी ओर उनके लिए लकड़हारे और पनिहारे का काम करने वाले समाज एवं राष्ट्र हैं। पाल हेरिसन की इस पुस्तक में इस विषय में विस्तार से लिखा गया है।)

संक्षेप में, इन दोनों सिद्धांतों ने यह प्रतिपादित किया कि कोई भी देश उन वस्तुओं का निर्यात करता है, जिसमें उसे तुलनात्मक लागत का लाभ प्राप्त होता है। कुछ दशकों के बाद इसमें यह जोड़ दिया गया कि क्योंकि इंग्लैंड निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है और भारत कृषि उत्पादों का निर्यात करता है, इसलिए इन दोनो देशों को अपने-अपने क्षेत्रों में विशेषज्ञता वर्जित करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित कदम होगा। जिन लोगों ने अर्थशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है, उनके लिए यह एक आश्चर्यजनक जानकारी होगी कि ये दोनों ही सिद्धान्त आज भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभावी एवं निर्णायक स्थिति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रखते हैं। यद्यपि इसमें तर्कों के स्तर पर काफी परिष्कार लाया गया है और उसमें कुछ गणित भी जोड़ दी गयी है।

भारत की उन्नति चाहने वालों की निन्दा

1911 में भी हम पाते हैं कि हमारे प्रिय अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स भारत के शिक्षित वर्ग की निन्दा कर रहे हैं, जो वर्ग उनके अनुसार 'अपने देश के औद्योगिकीकरण के प्रति तीव्र देशभक्तिपूर्व आवेग रखता है।' क्योंकि कीन्स के मत से 'ऐसा कोई परिवर्तन न तो वांछित है और न ही निकट भविष्य में संभव है।'[3]

कुतर्कों की ढिठाई

कीन्स का मानना था कि विशेषज्ञता 'एक अपरिवर्तनीय ऐतिहासिक प्रक्रिया' का अंग है। कीन्स चाहते थे कि अन्य लोग भी इसी में विश्वास करें. उन्होंने लिखा- 'चाहे जलवायु की दशाओं के कारण हो अथवा लोगों की आदतों और रुझानों के कारण परन्तु यह एक ऐसा तथ्य है जिस पर लोग आसानी से विश्वास नहीं करेंगे कि भारत अपने द्वारा निर्यात किये गये कच्चे माल के बदले में पश्चिम से जो वस्तुएं प्राप्त करता है, उनकी तुलना में यदि वह अपनी पूंजी और अपने किसानों के उपयोग की दिशा बदलता है तो वह अधिक समृद्ध नहीं हो पायेगा। अगर भारत इन वस्तुओं को जिन्हें वह पश्चिम से आयातित करता है, स्वयं बनाने लगेगा और अपनी पूंजी तथा अपने किसानों का उपयोग इन चीजों के उत्पादन में करने लगेगा बनिस्बत अभी के तरह अपना कच्चा माल पश्चिम को निर्यात कर वहां से बनी-बनायी चीजों का आयात करने के, तो इससे भारत को कोई ज्यादा समृद्धि नहीं मिलने वाली है।'[4] (इस विषय में देखें गुन्नार मिर्डल)

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया इसी परिवेश में प्रारम्भ हुई। इसे ध्यान में रखकर ही आधुनिकीकरण का प्रयोजन भलीभांति समझा जा सकता है। अब यह आवश्यक हो गया कि 'भारत को पश्चिम के व्यापारिक प्रवेश के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए पूरी तरह खोल दिया जाये। इसके लिए सड़कों और रेलमार्गों का एक संजाल बिछाना आवश्यक था। सिंचाई की ओर ध्यान देना भी आवश्यक था। बिजली, तार और एक केन्द्रीय डाक व्यवस्था की स्थापना भी आवश्यक थी।

भारत को गरीब बनाए रखने के लिए थोपी गई अंग्रेजी शिक्षा

अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ में एक सीमित रूप में फैलायी गयी। उसका उद्‌देश्य था ब्रिटिश व्यवस्था केलिए बाबुओं और अदीनस्थों की आपूर्ति सुनिश्चित करना। इसके साथ ही यूरोपीय किस्म की बैंक व्यवस्था भी प्रविष्ट कराय ीगयी।इस प्रकार शोषण की जरूरत ने अब एक निश्चित शक्ल अख्तियार कर ली। यह प्रक्रिया एक तरफा थी और औद्योगिक विकास को जकड़ने वाली ही थी। इस प्रक्रिया का उद्‌देश्य था विदेशी व्यापार के बलपूर्ण प्रवेश की व्यावसायिक जरूरतों के अनुसार नीतियां बनाते हुए ऐसी प्रक्रिया को बढ़ावा देना, जो भारत के लोगों के लिए अत्यधिक विपन्नता का कारण बने।[5]

एल.सी.ए. नोविल्स अपनी पूर्वोद्‌धृत पुस्तक 'दि इकॉनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ ब्रिटिश ओवरसीज एम्पायर' में पृ.- 42 पर लिखते हैं- 'वस्तुत: ब्रिटिश साम्राज्य एक विशेषज्ञता सम्पन्न केन्द्र वाली एक विराट कृषि इकाई है। श्रम के इस विभाजन ने औपनिवेशिक विकास में मदद की है और ब्रिटिश विकास सम्भव बनाया है तथा ब्रिटिश विकास और औपनिवेशक विकास, दोनों के लिए ऐसा करना लाभदायक रहा है।'

इस अध्याय में हम तीन अलग-अलग स्तरों पर विचार करेंगे, जिनमें से प्रत्येक ब्रिटिश आर्थिक विकास की एक-एक दशा का प्रतिनिधित्व करता है। भारत का अल्पविकास इनमें से प्रत्येक से समानुपातिक रूप से जुड़ा हुआ है। स्पष्टता और समझ की दृष्टि से इस अध्याय को हम तीन उपशीर्षकों में विभक्त कर रहे हैं- प्लाण्टेशन अर्थव्यवस्था, रेलवे और औद्योकीकरण। औद्योगीकरण मुख्यत: 1914 के प्रथम विश्व युद्ध के बाद युद्ध की दशाओं के सन्दर्भ में प्रारम्भ हुआ। उसके पहले औद्योकीकरण के जो प्रयास हुए, वे भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की ही पूर्ति के उद्देश्य से संचालित थे।

(क) प्लाण्टेशन अर्थव्यवस्था

इंग्लैंड के कपास उद्योग के विस्तार में यह निहित था कि भारत से कच्चे माल के रूप में कपास का निर्यात इंग्लैंड को ज्यादा से ज्यादा मात्रा में किया जाये। भारत के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका और इजिप्ट से भी इंग्लैंड कपास मंगाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में गृह युद्ध का प्रारम्भ होने पर अमेरिकी कपास की आपूर्ति बाधित हुई और उससे मेनटेस्टर के लोगों को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। नॉएल्स ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 131 में यह स्पष्ट किया है कि भारत में कपास के उत्पादन में वृद्धि मुख्यत: 1848, 1852, 1857 आरै 1863 की ब्रिटिश रिपोर्टों के आधार पर की गयी।

ओ गॉड, सूरत में कपास उद्योग न पनपने दें

लंकाशायर में जब कपास का अकाल आ पड़ा तब जगह-जगह सूती मिल मालिकों ने सभायें कर जीसस से प्रार्थना की कि वे उन्हें ताजे कपास की पूर्ति के संबंध के बारे में विशेष ध्यान दें। ऐसी ही एक प्रार्थना सभा में यह कहते सुना गया- 'ओ गॉड, ओ लार्ड, कृपया सूरत में कपास उद्योग न पनपने दें।'

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड के लिए 'प्रतिस्पर्धा मुक्त विश्व' का स्वर्णिम युग बीत चुका था। अब वह संसार के विभिन्न हिस्सों से कच्चे माल तथा दूसरी जरूरतों की सुरक्षित आपूर्ति पर भरोसा नहीं रख सकता था। अन्य यूरोपीय देश भी उपनिवेश बनाने की प्रतिस्पर्धा में आगे आ गये थे और उपनिवेशों के शोषण के जरिये उनमें से प्रत्येक देश अपने-अपने औद्योगीकरण के लिए होड़ में जुटा था। इससे इंग्लैंड की हालत नाजुक हो गयी। उसका आत्मविश्वास हिल गया और भारत पर उसने अपनी जकड़बंदी और सख्त कर दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी प्रकार इंग्लैंड का समुद्रपारीय व्यापार बढ़ने के साथ-साथ उसे सामान की पैंकिंग के लिए आवश्यक जूट की जरूरत भी बढ़ रही थी। जूट ही पैकिंग के लिए सर्वाधिक आदर्श था। इसी तरह चाय और कॉफी तथा चीनी का चलन इसी दौर में इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों में बढ़ा- सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में।[6] एशिया से ही इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों ने चाय, चीनी और कॉफी के बारे में जानकारी प्राप्त की। शीघ्र ही ये चीजें यूरोप में घरेलू उपभोग का अंग बन गयीं। अंत: इनकी मांग तीव्रता से बढ़ने लगी। चाय और कॉफी के बाजार का विस्तार होता गया और चीनी की मांग भी उसी तुलना में बढ़ती गयी। इसके कारण काली मिर्च की खपत पर भी असर पड़ा। के.एन. चौधरी, रादरमुण्ड आदि लेखकों ने इस तथ्य पर विस्तार से प्रकार डाला है कि भारत ही इन यूरोपीय देशों के लिए चीनी का मुख्य आपूर्तिकर्ता देश था। समुचित मात्रा में इन चीजों को पाना कठिन होता गया और इसके लिए यूरोपीय देशों में गला काट होड़ मच गयी।

ऐसी स्थिति में यूरोप के लोग एक आत्मसन्तुष्ट और आत्मसमर्थ साम्राज्य का सपना देखने लगे। ये प्रश्न उठाये जाने लगे कि क्या 'इंग्लैंड को विदेशी राष्ट्रों से स्वतंत्र रखकर गतिशील रख पाना संभव है? क्या वह अपने अधीनस्थ उपनिवेशों से पर्याप्त आपूर्ति प्राप्त कर सकता है? भारत की चाय धीरे-धीरे चीनी चाय की जगह लेने लगी। सवाल उठाया गया कि क्या भारत कॉफी की भी सम्पूर्ण जरूरत पूरी कर सकेगा। गुलामों की मुक्ति के दौर में वेस्टइँडीज में गन्ने की खेती में गिरावट आती गयी। तब प्रश्न उठाया गया कि क्या ग्रेट ब्रिटेन की खपत के लिए जरूरी चीनी की आपूर्ति भारत से हो पायेगी? लंकाशायर के करघों के लिए जब अमेरिकी कपास कम पड़ने लगी तो सवाल उठाया गया कि क्या भारत अपेक्षित कच्चे माल की पूर्ति कर पायेगा? इस विषय पर संसदीय समितियों ने विस्तार से जांच की।[7]

शोषण की नयी नीति 1833ई. के उस ब्रिटिश निर्णय से सामने आयी जिसमें अंग्रेजों को अनुमति दी गयी थी कि वे भारत आकर यहां जमीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राप्त कर सकते हैं और चाय के बागान स्थापित कर सकते हैं तथा नील की खेती कर सकते हैं। ये दोनों ही खेतियां या बागवानियां वस्तुत: एक प्रकार की 'गुलाम प्रथा' पर ही आधारित थीं। शुरू में जो लोग बागवानी करने लाये गये वे वस्तुत: अमेरिका और वेस्टइंडीज में गुलामों का व्यापार करने वाले लोग ही थे। गुलामों के इस व्यापार के लिए उन्हें ब्रिटिश शासन से पूर्ण अनुमति एवं सहयोग प्राप्त था। बुकनान अपनी पुस्तक 'डेवलपमेंट ऑफ कैपिटलिस्ट इंटरप्राइज इन इण्डिया' में लिखते हैं- 'वेस्टइंडीज से अनुभवी प्लाण्टर लाये गये।-- ये प्लाण्टर थोड़े उजड्ड किस्म के थे। इनमें से कई अमेरिका में गुलामों की तिजारत करते थे तथा वहां बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण विचारों और व्यवहार के अभ्यस्त थे।[८]'

अंतहीन क्रूरताएँ

1867 में असम में इन प्लाण्टर्स की भरती के तरीकों पर विचार करते हुए नोएल्स ने लिखा है कि- 'मिथ्या प्रतिनिधित्य, भ्रष्टाचार और दमन का उपयोग कर ठेकेदार लोग खेतीहर मजदूरों की या चाय के उद्यानों में काम करने वाले श्रमिकों की भरती करते थे। बूढ़े और बच्चे, हट्टे-कट्टे और कमजोर, गूंगे और बहरे सभी तरह के लोग इस काम के लिए जुटे जाते थे। यहाँ तक कि बेहद बीमार, संक्रामक रोगों से ग्रस्त और मरणासन्न श्रमिकों को भी जबरन काम में जोता जाता है। यह कहा जा सकता है कि गुलामों के व्यापार की जो भयंकर हानियाँ हैं, वे सब भी 1961-62 ईस्वी में असम और कछार के इलाकों में किये जाने वाले कुली-व्यापा के सामने फीकी पड़ जाती है।[९]'

ऐसा किसी एक इलाके में नहीं हुआ। बल्कि सभी जगह अंग्रेज लोग ऐसी ही क्रूरता के साथ कुलियों की भर्ती करते थे। यह उनकी श्रमिक भर्ती नीति का सामान्य अंग थी। 'गुलामों से संबंधित कानून' जो ब्रिटिश सरकार में प्लाण्टर्स के लाभ के लिए लागू किये थे, के अनुसार सीधे और भोले-भाले स्त्री-पुरुषों से एक अनुबंध पत्र पर अंगूठा लगवा लिये जाते थे और फिर उसमें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वर्णित शर्तों के अनुसार असम के चाय-बागानों में काम करने के लिए मजबूर किया जाता था। अगर वे कभी-भी मुक्त होने की कोशिश करें, तो उन्हें बंदी बना लिया जाता था, कठोर दण्ड दिया जाता था और फिर उनके मालिकों के पास वापिस ला छोड़ा जाता था। दण्डात्मक विधानों के अन्तर्गत काम करना उनकी मजबूरी थी। बंगाल की फौजी अदालतों में ऐसे अनेक मुकदमे आये जिनमें छल, धोखाधड़ी, बल प्रयोग और अपहरण के अनेक प्रकरण इन कुली मजदूरों को प्राप्त करने के सिलसिले में सामने आये थे। कुलियों को प्राप्त करना और उन्हें गुलाम कानूनों के जरिये रोक रखना कानूनन जायज था और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार भारत में नगदी फसलों की खेती या प्लाण्टेशन उद्योग के प्रोत्साहन के लिए अंग्रेजों की मदद कर रही थी। अपने हित के लिए लूट, धोखाधड़ी और छल कभी कुछ उनकी दृष्टि में जायज था और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार भारत में नगदी फसलों की खेती या प्लाण्टेशन उद्योग के प्रोत्साहन के लिए अंग्रेजों की मदद कर रही थी।

इसके साथ ही 1858 ईस्वी में हाउस ऑफ कामन्स की एक उच्चस्तरीय समिति गठित की गयी, जिसका उद्देश्य था- 'यूरोपीय उपनिवेशीकरण और भारत में औपनिवेशिक बस्तियों के प्रोत्साहन के लिए तथा इस विषय में प्रगति और भविष्य की सम्भावनाओं की दृष्टि से एशिया में ब्रिटिश व्यापार के विस्तार के बारे में उपाय सुझाना।'[10]

'भारत में प्लाण्टेशन उद्योग के प्रोत्साहन के लिए ब्रिटिश मूल के लोगों को यह सुविधाएँ मुहैया कराई गईं।

(1) अत्यन्त उदार शर्तों और बहुत कम ब्याज दर पर बढ़ी मात्रा में धनराशि सुलभ करायी गयी।

(2) भूमि के बड़े-बड़े क्षेत्र दीर्घकालिक अवधि के लिए लीज पर दिये गये।

(3) अन्य वित्तीय एवं संरचनात्मक सुविधाएं भी प्रदान की गयीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(4) इन प्रयोजनों के लिए अत्यन्त उपयुक्त दण्डात्मक विधान लागू किये गये।

1858 में गठित संसदीय समिति के समक्ष गवाहों ने विस्तार से बयान दिये और बताया कि उन्हें क्या सुविधाएं दी गयी हैं। उदाहरण के लिए, लार्ड केनिंग ने अंग्रेजों के लिए भारत में जमीन प्राप्त करना आसान बना दिया। उन्होंने उम्मीद की कि अंग्रेज बड़े पैमाने पर भारत में बस रहे हैं और असम तथा नीलगिरि सहित भारत के अधिकांश इलाकों में चाय बागान का कारोबार करेंगे और अपनी कॉलोनियां बनाकर रहेंगे। इसी प्रकार नील की खेती करने वाले बी वेस्टइंडीज से लाकर बिहार में बसाये गये। इन्हें ही निलहे जमींदार कहा गया। जिनसे गांधी जी को टकराना पड़ा था।

अपने आधिपत्य वाले इलाकों में अंग्रेजों ने नयी-नयी नगदी फसलों तथा व्यापार के लिए उपयोगी फसलों को प्रोत्साहन दिया औरअनेक नयी फसलें चलन में लाये। इसे ही आधुनिकीकरण तथा विकास कहा गया। इसका परिणाम भारत के उत्पादन तंत्र पर विनाशकारी सिद्ध हुआ और भारत की मूलबूत जरूरतों में कटौती करनी पड़ी, ताकि पश्चिमी देशों की जरूरतें पूरी हो सकें। बहुधा, इसका परिणाम सम्पूर्ण पर्यावरण और पारिस्थितिकी के व्यापक विनाश में हुआ।

अपने उपनिवेशों में ऐसी सुविधा केवल भारत में ही नहीं अन्य हिस्सों में भी दी गयी थी। श्रीलंका भी ऐसा ही एक अंग्रेजों का प्रिय उष्णकटिबंधीय क्षेत्र बना (एल.सी.ए. नोइल्स, पेज-123)।

नोएल्स आगे बतातीं हैं कि जमीन की होड़ कुछ उसी तरह मची जैसे कि सोने की खदानों के लिए मचती। केवल 1838 में 10,401 एकड़ जमीन प्लाण्टेशन उद्योग में लगे लोगों को बेच दी गयी। 1841 में 78,685 एकड़ खेतों से उनके किसानों को वंचित कर दिया गया। (पृ.124)

'गवर्नर और उनकी काउंसिल, सेना, जज, पादरीगण और सीलोन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के प्रशासकों का आधा हिस्सा पहाड़ी इलाकों में बस गया और वहां सर्वाधिक महत्वपूर्ण जमीन पर कब्जा कर लिया, इंग्लैंड से पूंजीपति वहाँ आकर कारोबार करने लगे। (ट्रोपीकल एग्रीकल्चर, पृ-.181)'

यूक्लिप्टस की खेती ने बुरे प्रभाव डाले। इन दिनों वन में पेड़ों के नाम पर ज्यादातर यूक्लिप्टस ही लगाये जा रहे हैं। इनके विनाशकारी प्रभाव को जानने के लिए किसी भी अच्छी पत्रिका के पन्ने पलटना काफी है। जिन इलाकों में बड़े पैमाने पर नारियल की खेती होती थी, वहाँ भी परती जमीन के सुदार के नाम पर यही सब किया गया। यह कुप्रबन्ध का उदाहरण है। इससे कॉलगेट पॉमोलिव कम्पनी को तो लाभ हुआ, परन्तु स्वाधीन भारत की सरकार और भारतीय समाज को कोई लाभ नहीं हुआ। हालांकि सरकारी मदद अभी भी वनों में वृक्षारोपण तथा ऊसल भूमि सुधार के नाम पर इन्हीं कामों के लिए मिलती है। इसके कारण किसान अपनी जमीन से वंचित होते जा रहे हैं और यह नये काम करने वाले लोग उन जमीनों को प्राप्त करते जा रहे हैं।

अंग्रेजों ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गन्ना, कॉफी चाय और कपास के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए कॉफी जांच पड़ताल की। यूरोपीय लोगों को बुलाकर चाय, तम्बाकू, कॉफी, गन्ना, नील, जूट, कपास, अफीम और तिलहन आदि नगदी फसलों को बड़े पैमाने पर उगवाने के लिए कहा गया। यह सब खुलकर बड़ी-बड़ी संसदीय समितियों की सहायता से किया गया। उदाहरण के लिए 1848 में हाउस ऑफ कॉमन्स की एक चयन समिति गयी, जिसने 'महारानी के पूर्वी और पश्चिमी भारतीय आधिपत्य वाले इलाकों तथा मॉरीशस में गन्ना और कॉफी की खेती के बारे में' व्यापक छानबीन की। आवश्यक दशाओं और सम्भावनाओं का पता लगाया। कमेटी ने जो गवाहियां लीं उनको बाद में दो हजार पन्नों में मुद्रित किया गया।[11]

चाय

चाय एक और अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। इसके व्यापार के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कपास-समिति ने ही सुझाव दिए। वह चयन समिति उसी वर्ष बनायी गयी- भारत में कपास उत्पादन में वृद्धि के बारे में जाँच के लिए। इसके अध्यक्ष थे जॉन ब्राइट। इस कमेटी ने चाय के बारे में भी गम्भीर छानबीन की। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि जो अंग्रेज असम और कुंमायूं केपहाड़ी इलाकों में बसेंगे और चाय की खेती मे जुटेंगे, उन्हें शासन की ओर से चाय के पौधे लगाने के आर्डर मिला करेंगे। इन लोगों को चीन भी भेजा गया। जहाँ से वे चाय के बीज लाये और चाय की खेती सीखकर आये तथा चाय के कारोबार के विशेषज्ञों को भी भारत लाये। यह सभी काम भारतीय धन से ही किया गया, ब्रिटिश धन से नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड में चाय की खपत के आकड़े यहाँ दृष्टव्य हैं-

सन	पौण्ड (मूल्य)
1800	20,358,827
1835	36,574,004
1864	88,500, 000
1885	182,408.830

भारत से इंग्लैण्ड में आयातित चाय 1864 में 27,96,000 पौण्ड थी। 1886 में यह 7,65,85,000 पौण्ड हो गयी। 121888 में भारत से आयातित चाय की मात्रा चीन से आयात्ति चाय से ज्यादा हो गयी। इंग्लैण्ड ने 1920-21 में भारत से 29,20,00,000 पौण्ड चाय मँगायी, सीलोन से 11,30,00,000 पौण्ड और चीन से 4,60,00,000 पौण्ड।[12]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अफीम

चीन के साथ चाय के व्यापार से एक दुर्भाग्यशाली प्रभाव पड़ा। अंग्रेजो को चीन से सौदा लेते समय मसाले और नगदी धन देना पड़ा था। जिसके कारण व्यापार में घाटा हो रहा था। 1792 ईस्वी में 13,00,000 पौण्ड का घाटा हुआ, जबकि 1897 ईस्वी में 1,05,00,000 पौण्ड से भी ज्यादा का घाटा हुआ।

इस प्रवाह को रोकने के लिए अंग्रेजो ने चीन में अफीम को बलपूर्वक प्रवेश कराया। पहले तो तस्करी के जरिये चीन में अफीम पहुँचायी क्योंकि चीन के बादशाह ने 1729 में चीन में अफीम का आयात प्रतिबंधित कर दिया था। तस्करी से ले जायी गयी अफीम छिपे तौर पर वहाँ बेची गयी और फिर उस रकम से वहाँ से चाय खरीदी गयी।

1750 में केवल 400 पेटी अफीम ही बेची गयी थी। 1810 में 4500 पेटियाँ बेची गयी। मार्च 1801 में कम्पनी के निदेशक मण्डल ने भारत के गवर्नर जनरल को लिखा था कि अफीम के उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि केन्टन को कीमती मसालों को जहाजों में लादकर कारोबार किया जा सके।

1803-31 में 19,000 पेटियाँ अफीम की बेची गयीं। 1838-39 में पेटियों की संख्या बढ़कर चालीस हजार हो गयी। जिसके कारण चीन से धन भारत और ब्रिटेन पहुँचने लगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चीन में यह अफीम भारत से लायी गयी थी। भारत में इसकी खेती को बढ़ावा दिया गया था। व्यापार की यह एक महत्वपूर्ण वस्तु थी। इस व्यापार पर राज्य का एकाधिकार था और यह राजस्व का मूल्यवान स्रोत थी। देशी व्यापार मुख्यतः अफीम से भरे जहाज उतरने दिये जायें। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नशे का धन्धा बढ़ाने का बीज कहा जा सकता है। व्यापार के नाम पर क्या-क्या धन्धे किये जा सकते हैं, इसका यह उदाहरण है।[13]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जूट

जूट के उत्पादन को लगातार बढ़ावा दिया गया, ताकि रूसी फ्लेक्स का स्थान जूट ले सके। व्यापार बढ़ाने के साथ-साथ इंग्लैंड में जूट की माँग बढ़ने लगी। 1846 में मुक्त व्यापार का कारोबार बढ़ा और उसी के साथ बढ़ी अनाज के बोरों की माँग। इसके लिए जूट का बड़े पैमाने पर उत्पादन अनिवार्य हो गया। 1850 में कताई की मशीनें आ गयी और स्कॉटलैण्ड में जूट के बोरे तैयार करने का काम काफी बढ़ा। क्रीमिया के साथ छिड़े युद्ध में बोरों और थैलों की माँग बढ़ी। 1857 में कलकत्ते में जूट मिलें स्थापित हुई। बोरों की माँग तेजी से बढ़ने में गेहूँ आटा और दालों के निर्यात के कारोबार में प्रेरक का काम किया। 1870 के बाद जूट का कारोबार बढ़ा और 1883 में 60,00,000 स्टर्लिग के बोरों का कारोबार हुआ। ग्रेट ब्रिटेन में उत्पादन शुरू होने के पचास वर्षों बाद स्कॉटलैण्ड प्रतिसप्ताह 73,600 सी. वाट जूट की खपट करने लगा। भारत के कारखानों में भी जूट बड़े पैमाने पर हो रहा था, जिनमे से ज्यादातर का प्रबन्ध स्कॉचमैन से लेकर डुण्डी तक के हाथों में था। जब फर्श पर बिछाने वाली चटाई और लिनोलियम प्रचलन में आ गये, तब जूट के उत्पादन को एक नया आयाम मिला। क्योंकि इनके अस्तर के रूप में जूट को ही फैलाया जाता था।

अठारहवी शताब्दी में अग्रेंजों ने इस बात की ओर ध्यान दिया कि बाल्टिक देशों और रुस पर उनकी निर्भरता घटती चली जाये। संयुक्त राज्य अमेरिका से आपूर्ति का प्रबन्ध भी सफल नहीं रहा। ऐसी स्थिति में रूसी सन् (हेम्प) के ठोस विकल्प के रुप में भारतीय जूट सामने आया।[14]

कपास

कच्चे माल में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण था कपास। ब्रिटेन को कपास की सबसे ज्यादा जरूरत थी। मेजर जनरल ब्रिग्स ने बताया है कि भारत ही सम्पूर्ण विश्व के लिये अपेक्षित कपास पर्याप्त मात्रा में पैदा करने में समर्थ था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कपास के उत्पाद को बढ़ाने और उत्पादन क्षेत्र को विस्तृत करने के सघन प्रयास अंग्रेजों ने किये ताकि ब्रिटेन के हाथ में रूई के रूप में कच्चा माल भी रहे और ब्रिटेन अपने यहाँ इस रूई से जो कपड़े तैयार करे, उनकी खपत का बाजार भी भारत तथा अन्या देशों में कायम रहे और इस प्रकार ब्रिटेन पूरी तरह आत्मनिर्भर रहे। 1848 में जॉन ब्राइट की अध्यक्षता में एक संसदीय समिति बनी। इसने इस मामले पर गम्भीर विचार किया। उसका विषय था संयुक्त राज्य अमेरिका से रूई की आपूर्ति में जो सम्भावित कमी है; क्या उसकी पूर्ति भारत में कपास उत्पादक इलाको की बढ़ोत्तरी से हो सकती है। वेस्टइण्डीज और ब्रिडिश गायनाा नटाल और आस्ट्रेलिया के गवर्नर्स से भी इस बारे में पूछा गया कि क्या उनके इलाके में कपास का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है ग्लासगों से मेनचेस्टर तक के व्यापारियों ने संसद को याचिकाएँ भेजी जिसमे कहा गया था कि ब्रिटेन के बेरोजगार आस्टेलिया और नटाल भेजे जायें जहाँ वे कपास उपजाये।

यह अलग बात है कि अमेरिकन प्लाण्टर मिस्टर मर्सर जिन्हें कपास की खेती के लिए भारत लाया गया था, 1845-46 में सरकार को लिखते है प्रायोगिक फार्म सरकार के लिए एक बेकार का बोझ ही है भारत में अमेरिकी पद्धति उपयोगी नहीं सिद्ध होगी। भारत के देशी लोगों को अपने यहाँ की मिटटी और जलवायु का बहुत अधिक ज्ञान है औरवे उस ज्ञान के बल पर बेहतर कपास पैदा कर सकते हैं जो कि किसी भी यूरोपियन द्वारा पैदा किये गये कपास से सस्ता भी पड़ेगा। (बॉम्बे सरकार का सरकुलर, 28 जनवरी, 1847, चयन समिति की रिपोर्ट, पृ.-135)

इस मामले में सर्वाधिक रोचक यह है कि हाउस कॉमन्स की चयन समिति ने बहुत सारे साक्ष्य लिये और भारत में भूमि के मूल्यांकन से संबंधित ढेरों सवाल पूछे। पहली बार अफवाह फैली कि जमीन का मूल्यांकन कर दाम घटाया जाएगा और जमीन का पट्टा नये सिरे से निर्धारित करने की पहल की जायेगी। समिति ने सहानुभूति के साथ भारतीय किसानों की दीन-दशा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्ष्य की, 'जो पूरी तरह पूंजी रहित था और इनके पास ऐसे कोई साधन भी नहीं हैं, जो केवल पूंजी से मिल सकते हैं आैर जिनके जरिये उद्योग का विस्तार तथा उन्नति सम्भव है।[15]

इस सहानुभूति का कारण बाद में स्पष्ट हुआ। कमेटी ने नोट किया कि 'कपास की बेहतर खेती के मार्ग का अवरोध सबसे ज्यादा तो जमीन पर लगने वाला टैक्स है और साथ ही सड़कों और साधनों की कमी भी कारण है।[16]' यह सुझाव मेनचेस्टर चेम्बर ऑफ कॉमर्स की ओर से आये थे, परन्तु प्रचारित यह किया गया कि भारत के गरीब किसानों के बारे में ब्रिटेन को चिन्ता है। अन्त में, थॉमस बेजली की यह गवाही उल्लेखनीय है-

'भारत में विशाल क्षेत्र उपलब्ध है और यहाँ की आबादी ब्रिटिश उत्पादन का सबसे बड़ा हिस्सा खपत करने में समर्थ है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या अपने मिट्टी की उपज से वे लोग भारत में होने वाले हमारे व्यापार की रकम देने की हैसियत में हैं।[17]'

1836 में बंगाल में कपास के आयात पर लगी सब प्रकार की चुंगी ब्रिटेन की पहल पर समाप्त कर दी गयी। 1838 में यह काम मुम्बई में किया गया और 1844 में मद्रास की रुई भी इसी प्रकार चुंगी मुक्त कर दी गयी। जिसके कारण भारत से कपास का निर्यात 1862-63 में बढ़कर एक करोड़ से एक करोड़ अस्सी लाख स्टर्लिंग के मूल्य तक जा पहुंचा। 1864 में यह तीन करोड़ पचास लाख स्टर्लिंग तक जा पहुंचा और उससे अगले वर्ष तीन करोड़ सत्तर लाख स्टर्लिंग तक।[18]

कच्चे माल के उत्पादन के लिए सहकारी साख समितियां, शोध संस्थाएं और सिंचाई व्यवस्थाएं भी विकसित की गयीं, ताकि कच्चे माल की आपूर्ति होती रहे।[19]

निर्गम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस सन्दर्भ में हमारे पास अपने तर्क के पक्ष में प्रसिद्ध विद्वानों के विपुल साक्ष्य विद्यमान हैं, जिससे कि इस विषय पर आगे कोई भी टिप्पणी करने से पहले उन तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है। हमने तो अकूत स्रोत सामग्री के एक अंश की झलक भर दी है। इस अध्याय के द्वारा हमने उस दिशा का संकेत किया है, जिस दिशा में सघन अनुसंधान फलप्रद एवं उपयोगी सिद्ध होगा। उसके जरिये हम अपना एक समुचित विश्लेषणपरक ढाँचा विकास की समस्याओं के अध्ययन के बारे में विकसित कर सकेंगे।

नजराना

विलियम डिगबी ने प्लासी का युद्ध और वाटरलू की लड़ाई (1797-1814 ई.) के मध्य भारत से की गयी धन की निकासी के ब्यौरे दिये हैं। अंग्रेज इसे नजराना या भेंट (ट्रिब्यूट) कहते थे। यह रकम एक अरब पौण्ड है। वे कहते हैं- 'इस धन की विशालता को आँकने के लिए उस समय की क्रयशक्ति का अनुमान और आंकलन आवश्यक है।[20]'

डिगबी के ये आँकड़े ब्रिटिश सरकारी दस्तावेजों पर आधारित हैं और वे भारत के शोषण के खुले दौर से सम्बन्धित हैं। जैसा कि विलियम डिगबी बताते हैं कि- '120 वर्ष पहले इन कटु सत्यों को छिपाने की कोई जरूरत महसूस नहीं की जाती थी' (प्रास्परस ब्रिटिश इण्डिया, पृ.-216)। बाद में शोषण को थोड़ी सभ्य शब्दावली दे दी गयी और तरीके भी बारीक अपनायें जाने लगे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारत को आमदनी का और लूट का स्थायी स्त्रोत मान लिया। उन्होंने इसे बिना ज्यादा छुपाये स्वीकार भी किया। मद्रास राजस्व बोर्ड के अध्यक्ष सलीवान ने कहा- 'हमारा सिस्टम एक स्पंज की तरह है, वह गंगा के किनारे की सभी अच्छी चीजों को अपने में सोख लेता है और टेम्स नदी के तट पर ले जाकर उन सबको वापस निचोड़ देता हैं'' (बिपिनचन्द्रा : मॉडर्न इण्डिया, पृ.-99)।

'उस विशाल साम्राज्य का महत्व इस देश के लिए यह है कि वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे ब्रिटिश राज्य में प्रतिवर्ष अकूत पूंजी और सम्पदा जोड़ता है।[21]'

1813 के लगभग ब्रिटिश संसद के एक सदस्य ने साफ कहा कि-'यह कल्पना निराधार है कि भारत को केवल कच्चे माल की आपूर्ति वाला देश अथवा ब्रिटिश माल की खपत वाला देश बनाकर रख दिया गया है। ऐसा होना असम्भव हैं, क्योंकि भारत बहुत बड़ा है और समृद्ध। सम्भव केवल यह है कि भारत से धन लूटकर इंग्लैण्ड ले आया जाये।' फिर भले यह धन लूट के रूप में लाया जाये या नजराने के रूप में ।[22]

जार्ज विन्गोट ने 1859 में लिखा- 'नजराना (ट्रिब्यूट) वह रकम या वह अदायगी है, जो प्रजा राजा को देती है। जो देश हमारी प्रजा हैं, वे जब अपने वार्षिक राजस्व का एक हिस्सा शासक देश का हस्तांतरित करते हैं और उसके बदले में कोई भी भौतिक लाभ उसके समतुल्य नहीं ग्रहण करते, तब वह ट्रिब्यूट कहलाता है। [23]

सर जार्ज ने एक आंकलन प्रस्तुत किया है कि 1814 से 1831 के 17 वर्षों में 5,76,10,000 पौण्ड नजराने के रूप में भारत से प्राप्त किया गया। हस्तांतरण, आयात के सरप्लस आदि के जरिये 7.00 करोड़ पौण्ड इसी अवधि में प्राप्त किये गये। माण्टगोमरी मार्टिन ने 1840 में संसदीय समिति के सामने कहा- 'ब्रिटिश भारत से पिछले तीस वर्षों में हमने 30.00 लाखा पौण्ड प्रतिवर्ष की दर से खीचे हैं। बाहर प्रतिशत ब्याज की चक्रवृद्धि दर से यह रकम 72 करोड़, 99 लाख, 97 हज़ार, 971 पौण्ड ठहरती है। यदि हम इस रकम को 20 लाख पौण्ड प्रतिवर्ष के हिसाब से पचास सालों का हिसाब कर जोड़ें तो हिन्दुस्तान से जो पूंजी हम ले गये हैं, वह 8 अरब 40 करोड़ पौण्ड बैठती है। [24]

इस विशाल धनराशि के बल पर ही इंग्लैण्ड श्रीलंका, हांगकांग, सिंगापुर, रंगून, अदन आदि एशियाई एवं अफ्रीकी इलाकों में अपने उपनिवेश कायम रखने में सफल हो सका। जार्ज बिन्गेट का अनुमान है- 'हमने भारत से अपने साम्राज्य के द्वारा जो राजस्व संचित किया है, उसके ही बल पर हमने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीने से युद्ध लड़ा है, अफगान युद्ध लड़ा है, बर्मा और फारस से भी लड़ाई उसी धन के बल पर की। हमारी इस ब्रिटिश नीति से भारत के हित का बहुत दूर का ही नाता है।[25]

धन भी हमारा, सेना भी हमारी, ऐश उनका, जीत उनकी

भारतीय धन ब्रिटेन को विभिन्न इलाकों को जीतने में तो मदद कर ही रहा था, भारतीय सैनिक भी ब्रिटेन के लड़कर साम्राज्य की सेवा कर रहे थे। भारत के बजट का एक बड़ा हिस्सा उपनिवेशवादी सैन्य खर्चों में लगाया जा रहा था। इसकी सारणी दृष्टव्य है-

देश	सुरक्षा व्यय, जो कुल व्यय का प्रतिशत भाग है
भारत	70.70
ब्रिटेन	45.00
कनाडा	20.00
स्पेन	22.80
फ्रांस	22.40
सं.रा.अमेरिका	35.90
इटली	20.00

जेंक ने भारत से निर्गम की इस प्रक्रिया को निरूपित करते हुए लिखा है- महारानी विक्टोरिया की बिल्ली का दूध भी भारत के ही पैसे से जुटाया जाता था। वे बताते हैं कैसे-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(1) भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, जिसे वे विद्रोह कहते हैं, को कुचलने में लगाया खर्च और कम्पनी द्वारा रानी को हस्तांतरित सत्ता की प्रक्रिया में लगा खर्च, जो भारत के ही राजस्व से पूरा किया गया।

(2) चीन और अबीसीनिया से एक साथ चलने वाले युद्ध जिसका व्यय भारत के राजस्व से ही जुटाया गया।

(3) लंदन का ऐसा प्रत्येक सरकारी खर्च जो दूरदराज से भी भारत से सम्बन्धित दिखाया जा सकता हो, जिसमें इण्डिया हाउस की सेविकाओं का खर्चा भी शामिल हैं।

(4) उन जहाजों का खर्चा, जो युद्ध के लिए उतारे गये, पर युद्ध में शामिल नहीं हुए और भारत की फौजों का छ: महीने का प्रशिक्षण का खर्च, जो उन्होंने नौ सेना के अभ्यास के क्रम में किया।

(5) तुर्की का सुल्तान 1868 में लंदन पहुँचा और उसे सदल बल इण्डिया ऑफिस में ठहराया गया तथा उस पर आने वाले सम्पूर्ण खर्च का बिल भारत से वसूल किया गया।

(6) जंजीबार मिशन के सदस्यों को भेंट उपहार।

(7) चीन और फारस में ब्रिटेन के कूटनीतिक मिशन और कार्यालय।

(8) मध्यसागर में ब्रिटिश बेड़े का आंशिक खर्च, जो एक स्थायी खर्च है।

(9) 1870 के पहले इंग्लैण्ड से भारत भेजे गये सभी तारों का खर्चा, जिनका भुगतान भारत के खजाने से किया गया।

(10) ब्रिटिश शासन के पहले 13 वर्षों से भारतीय राजस्व तीन करोड़ तीस लाख पौण्ड से बढ़कर पाँच करोड़ बीस लाख पौण्ड हो गया और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
भारत को 1866 से 1870 ई. के बीच एक करोड़ बीस लाख पौण्ड का घाटा उठाना पड़ा 1858 से 1860 के बीच एक होम डिपार्टमेंट स्थापित किया गया, जिसका खर्च तीन करोड़ पौण्ड था।[26]

1935-36 ईस्वी में भारत के बजट में सैनिक सेवाओं, ऋण अदायगियों तथा कानून व्यवस्था-जेल, पुलिस, अदालत आदि अनुत्पादक व्यय शीर्षों में एक अरब बत्तीस करोड़ बीस लाख रुपये खर्च किये गये। जबकि उत्पादक मदों में केवल बाईस करोड़ रुपये खर्च किये गये। इसमें से भी एक सौ बाईस करोड़ रुपये तो ब्रिटिश सरकार को चलानी वाली बाबूशाही के प्रशिक्षण पर खर्च किये गये।[27]

नजरानों के आंकड़े

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत से इंग्लैण्ड जो ट्रिब्यूट भेजा गया, उसकी तालिका निम्नांकित है-

वर्ष	होम चार्ज	भारतीय निर्यात का अधिशेष (लाख पौण्डों में)
1851	25	33
1901	173	110
1913-14	194	142
1933-34	275	697

भारत से निर्गम की मात्रा को निम्नांकित तालिका जो पांच वर्षों की अवधि में वर्गीकृत है, अधिक स्पष्ट करेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्ष	भारतीय निर्यात का अधिशेष (लाख पौण्डों में)
1851–55	43
1897–1901	153
1909–10 से 1913–14	225
1931–32 से 1935–36	592

यह आंकड़े निर्गम की समूची प्रक्रिया नहीं दर्शाते। 1897 के बाद निर्गम की प्रक्रिया भिन्न और सुहाने दिखने वाले नामों से जारी रही– 'ब्रिटिश पूंजी का भारत को निर्यात, भारत को सार्वजनिक ऋण, स्टर्लिंग ऋण आदि नामों से।'[28]

हमारा धन हमें ही ऋण रूप में

ब्रिटिश पूंजी का अर्थ क्या है? पूर्व के दशकों में जो रकम भारत से लूटकर इंग्लैण्ड ले जायी गयी थी और वहाँ के आर्थिक तथा औद्यौगिक विकास का आधार बनी थी, वही रकम ब्रिटिश पूंजी निवेश के नाम पर भारत लौटायी जा रही थी, जहाँ से ब्याज और लाभांश के साथ फिर उसे वापिस वसूला जाता था।

इतना ही नहीं ब्रिटेन से भारत को पूंजी निर्यात का अर्थ केवल पूंजी निवेश ही नहीं था, अपितु नज़राने आदि से वसूली गयी रकम को वापिस उपरोक्त विधि से विनियोजित किया जाना था।

रेलवे के विकास को भारत के विकास के लिए इंग्लैण्ड से आयातित पूंजी का व्यापक निवेश माना जाता है, परन्तु वस्तुत: वह समस्त निवेश निर्गम की प्रक्रिया को पुष्ट करने के लिए ही था। ब्याज, लाभांश और चार्ज सभी कुछ ब्रिटिश तकनीकी सहायता के बदले में वसूले जा रहे थे। यूरोपीय मूल के ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्टाफ रखे जाते थे और उन्हें भारी वेतन दिया जाता था। यह पूंजी निवेश ऐसे क्षेत्रों में और ऐसी परियोजनाएँ में किये जाते थे, जो कि शोषण को अधिक व्यवस्थित बनाने में सहायक हों। सर जार्ज पाइश का आकलन है कि-समस्त ब्रिटिश पूंजी निवेश का 97 फीसदी उन क्षेत्रों में हुआ, जहाँ ब्रिटेन अपनी व्यावसायिक दखल चाहता था।[29]

सार्वजनिक ऋण

भारत को अपनी जकड़न में मजबूती से जकड़ने के लिए अंग्रेजों ने सार्वजनिक ऋण की प्रक्रिया चलायी। कतिपय विद्वान उसे ही भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश का नाभिक कहते हैं दादा भाई नौरोजी ने बताया है कि- 1898 में 7 करोड़ स्टर्लिंग भी सार्वजनिक ऋण में निवेश किया गया। वे आगे कहते हैं- ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दिनों में भारत को जीतने के लिए ब्रिटिश सेनाओं का जो खर्च था, उसे वसूलने के क्रम में सार्वजनिक ऋण की नीति लागू की गयी। कम्पनी को भारतीय शासकों द्वारा लाभांश देना पड़ता था। भारत के लगभग आधे हिस्से का प्रशासन जब ब्रिटिश शासन का अंग बना तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शेयर होल्डर्स को मुआवजे के रूप में भारी रकम का भुगतान किया गया। 1857-58 के विद्रोह को दबाने के लिए भी भारी रकम खर्च हुई थी। यह सब रकम भारत से वसूली जाती थी। भारत और इंग्लैण्ड के बीच अन्यायपूर्ण वित्तीय सम्बन्ध थे। 1878 के अफगान युद्ध का खर्च भी भारत के सिर पर डाल दिया गया है। 1890 में मिश्र बर्मा और सीमान्त क्षेत्रों में जो युद्ध हुए, उसके व्यय का भार भी भारत के सिर पर डाल दिया गया। जब भारत का शासन सीधे महारानी ने सम्हाला तब भी सार्वजनिक ऋण का बोझ भारत पर ही बना रहा।[30]

हमारे धन और बल से हमें ही कुचला, क्षतिपूर्ति भी वसूली

इसे दूसरे शब्दों में कहें तो 1857 का विद्रोह कुचलने में भी अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों और भारतीय धन का सहारा लिया और उसके बाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
भी वे भारत के धन के बल पर ही यहाँ का प्रशासन और राजकाज चलाते रहे। भारत से उन्होंने युद्ध की क्षतिपूर्ति के नाम पर भी अरबों रुपये वसूल किये और महारानी की ताजपोशी को भारत पर कृपा बताते हुए, उस ताजपोशी के सन्दर्भ में भी क्षतिपूर्ति वसूली, ब्रिटिश संसद जितने समय भारतीय मामलों पर बहस करती थी, उतने समय का ब्रिटिश संसद जितने समय भारतीय मामलों पर बहस करती थी, उतने समय का ब्रिटिश संसद का सम्पूर्ण व्यय भारत के खाते में डाला जाता था, जिसे ब्याज सहित अंग्रेज वसूलते थे। यह समस्त रकम भारत से ब्याज सहित वसूली जाती रही। 'मूलधन' यहीं रहने दिया जाता था, ताकि उसका निवेश कर उस पर लगातार ब्याज अनन्तकाल तक लिया जाता रहे। इस तरह भारत को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचार से बचाने के लिए ब्रिटिश ताज ने भारत को अपनाया था, ऐसी घोषणा की गयी थी और इसके बाद ब्रिटिश ताज ने भारत के साथ जो अत्याचार किये, वे कम्पनी द्वारा किये गये अत्याचारों से बहुत आगे थे।[31]

ये तथ्य तत्कालीन भारतीय राजाओं में से उन राजाओं में बुद्धि, शील, साहस और चरित्र की कमी दर्शाते हैं, जो किन्हीं 'कैलकुलेशन' के कारण इंग्लैंड का साथ दे रहे थे। इसी बुद्धिहीनता का परिणाम उन्हें कांग्रेस शासन में अपने पूर्वजों- भारतीय राजाओं की निन्दा एवं तेजोक्षण के रूप में भोगना पड़ा है।

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत सार्वजनिक ऋण

वर्ष	सार्वजनिक ऋण (लाख पौण्ड में)
1857	700
1875	1400
1900	2260
1913	2740
1939	8842

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत पर पौण्ड का यह ऋण बढ़ता ही रहा। इंग्लैण्ड में दौरान जो लागत आती थी, वह भी भारत से ही वसूली जाती थी। रेलवे और सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा जनसुविधाओं की जो व्यवस्था 'लोकहितकारी' ब्रिटिश शासन करता था, उस सबकी कीमत भारत से ही वसूली जाती थी।[32]

निर्गम का प्रभाव

राष्ट्रीय नेताओं सर्वश्री जी.बी. जोशी, दादा भाई नौरोजी आदि ने उन्नीसवीं शदी के अन्त में इस विषय पर महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किये थे। यद्यपि वे प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे, परन्तु राष्ट्र के प्रति अपने लगाव के कारण वे निर्गम की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझ सके और उन निष्कर्षों पर पहुँच सके, जिन तक पहुंचने में हमारे आज के अर्थशास्त्री विफल रहते हैं।

निर्गम की जटिल प्रक्रिया का अत्यन्त समीचीन विश्लेषण करने वाले ये राष्ट्रीय नेता अपने समय से बहुत आगे थे।

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों- विभिन्न समितियों के अध्यक्ष आदि ने भी अनेक विश्लेषण प्रस्तुत किये थे। इनके द्वारा ब्रिटिश अर्थनीति के परिणाम भारतीय बौद्धिकों के समक्ष आ चुके थे। आगे इस नीति के कतिपय और परिणामों का संकेत उचित होगा।[33]

कृषि

यह अब तक सामान्य जानकारी का विषय हो चुका है कि बंगाल का कुछ ही दशकों से भी कम की अवधि में एक विकसित एवं समृद्ध आर्थिक ताकत से एक अत्यधिक निस्तेज सूबे के रूप में रूपान्तरण हो गया- जिसकी विशिष्टताएँ हो गईः- एक भ्रष्ट जमीदार वर्ग, सूदखोरी का बर्बर ताँडव एवं किसानों की कर्ज से टूटती कमर। केवल एक ही वर्ग ऐसा था जिसको इस जटिल परिस्थिति का लाभ मिल रहा था- अंग्रेज।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भूमि सुधार यानी किसानों का नाश

यह समझना अति महत्वपूर्ण है इस संदर्भ में कि तथाकथित 'भूमि सुधारों' की क्या वास्तविक क्रियाविधि ईजाद की गयी? उसके पीछे उनके क्या उद्देश्य थे? उसने कैसे भारतीय अर्थव्यवस्था का रूपान्तरण कर डाला और किसके फायदे के लिए? क्या उस पूरी बात का सम्बन्ध हम आज के भारत की गम्भीर समस्याएं जैसे ग्रामों का कर्ज के मकड़ताल में फँस जाना। ग्रामीण ऋण ग्रस्तता, असमान भूमि वितरण, कृषि का पिछड़ापन, प्रच्छन्न बेरोजगारी, कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण की अति धीमी दर और किसी भी आमूलचूल परिवर्तन की संभावनाओं के संदर्भ में इस क्षेत्र की अक्षमता/असमर्थता आदि से है?

नीलाम करने की व्यवस्था/नीलामी व्यवस्था : विभिन्न व्यवस्थाओं के विस्तार में जाने के पहले, जिसे अंग्रेजों ने 'भूमि सुधार' का नाम दिया, इस बात की एक झलक देना समीचीन होगा यहां कि इन अंग्रेजों ने वास्तव में बंगाल में किया क्या? 1762 में कम्पनी के कर्मचारियों के छोड़े हुए क्षेत्रों के लिए हर नयी योजना ईजाद की- जिसे आज तक भारतीयों ने नहीं जाना सुना था। वह 1793 तक जारी रही। इस नयी योजना के तहत ईस्ट इंडिया कंपनी ने तत्कालीन जमीदारों से ऊँची रकमों की मांग की और यदि वे इस मांग को पूरा कर पाने में असमर्थ हुए तो उस भू-संपत्ति विशेष पर, उन जमीदारों को प्राप्त अधिकारों की खुली नीलामी करते हुए, सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को 3 वर्षों के लिए जमींदारी अधिकार दिये जाने की व्यवस्था की गई। दूसरा स्पष्ट मतलब था, पारम्परिक जमींदार घरानों के प्रथागत अधिकारों का हनन करते हुए उन्हें इस नए वर्ग से स्थानापन्न करना- जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी के खजाने तिजोरियों को भरने के लिए जरूरी क्रियाकलाप करने पर अपनी रजामंदी जाहिर की। भूमि राजस्व की वसूली के सम्बन्ध में कम्पनी ने अपनी नीति को स्पष्ट कर डाला- समाज के उस स्वार्थी तबके की कोशिशों को बढ़ावा देना जो कम्पनी के फायदे के लिए असहाय किसान /रैयत पर क्रूरतम तरीके अपनाने को तैयार रहे और इस पूरे सौदे के क्रियान्वयन में अपनी जेबें भी गर्म करता चले। परिणाम हुआ चारों ओर तबाही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नीचतम लोगों से सांठगांठ

'बिक्री के समय चरित्रहीन एवं सड़क छाप लोग बोली लगाने लगे, और जहां कुछ पहले के किसान जो अपना निवास-स्थान नहीं छोड़ना चाहते थे, जरूरत से बढ़-चढ़कर अधिक बोली बोलते, तो दूसरे जिनके पास खोने के लिए कुछ नहीं था और आगे बढ़ जाते, इस उम्मीद से कि किसी भी तरह उन्हें तुरन्त यह अधिकार दे दिया जाए। इस तरह से न जाने कितने उचक्कों को किसानों की लूट खसोट के लिए खुली छूट दी गई, जिसके बलबूते पर उन्होंने दुखी लोगों से लूटे हुए धन द्वारा पहले साल की अदायगी का काम निपटाया।

1765 में दीवानी के अधिकार की प्राप्ति में दूसरे प्रान्त भी इस खूंखार व्यवस्था के शिकार हो गए, जिनमें कि वसूली का काम कठोरता से किया गया ताकि ईस्ट इंडिया कंपनी की कभी न भूलने वाली हवस को कुछ समय के लिए शान्त किया जा सके। 1769 में सुपरवाइजरों के द्वारा की गई पूछताछ से यह जाहिर हुआ कि इन भाग्यविहीन सूबों में कैसे भीषण अल्टाइस्का का साम्राज्य कायम हुआ। 'जहां पर बोली लगाने वाले, नीलामी के दौरान, ऊँची से ऊँची बोली लगाने वाले किसानों के निर्मम ढंग से निचोड़ने के बाद भी वायदे की रकम अदा करने में असफल रहते। ऐसे पुराने जमींदार घराने बर्बाद होकर खत्म हो गए और भूमि जोतने वाली आबादी निर्मम उत्पीड़न का शिकार हुई।

इस दुखद स्थिति की ओर संकेत करते हुए, फिलिप फ्रांसिस (गवर्नरजनरल की काउंसिल के एक सदस्य) ने अपनी संक्षिप्त टिप्पणी में दर्ज किया:-

'जमीदारों का एक बड़ा वर्ग पूरी तरह बर्बाद हो गया एवं अपनी भूमि की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी से भी उन्हें बेदखल कर दिया गया। अब कुछ ही लोग जो भले एवं उच्च परिवारों से थे या फिर पहले ऊँची नौकरियों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by NKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
थे, बचे और जो उस समय विद्यमान थे वे ऊंचे लाभों को हासिल करने के लिए आतुर थे- जो उस समय देश उन्हें दे पाने की स्थिति में नहीं रह गया था... अब निम्न कोटि के व्यक्तियों को बरबस, अमीन या कलेक्टर के पद पर सरकार द्वारा नियुक्त किया जा रहा था। यह लोग एक खास धनराशि पर बात तय करके उनके जिलों में सौदा कर लेते थे जिनके लिए इन्हें नियुक्त किया जाता ता और इस प्रकार से इन्हें राजस्व इकट्ठा करने के लिए अधिकार प्राप्त माना गया। यह राजस्व की उस राशि को जमा करने के लिए जिस पर इन्होंने उन जिलों के जमीदारों व किराएदारों से सौदा किया था।'

'इस विचित्र एवं खूंखार व्यवस्था में परिणाम बहुत जल्द सामने आ गए। जहां पुराने घरानों के वंशजों ने अपनी जमीन-जायदाद को, कलकत्ता के महाजनों एवं सट्टेबाजों के हाथों में खिसकते देखा, वहीं विधवाओं एवं अल्पवयस्क मालिकों ने अपनी शांति प्रिय प्रजा को खूंखार दलालों (जिनकी नियुक्ति कलकत्ता से हो रही थी) के हाथों उत्पीड़ित होते हुए, असहाय बन कर देखा। इसके लिए वे मजबूर थे।'

किसान इलाका छोड़-छोड़ भागने लगे

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इस बात का एहसास किया कि आखिरी उत्पीड़न के बावजूद भी उनकी उम्मीदें पूरी नहीं हो पाईं। एक ओर तो पुराने तथा बेहतर श्रेणी के जमीदारों के मिट जाने से (जो अपने भारतीय किसानों के प्रति न केवल अपने को उत्तरदायी मानते थे बल्कि जरूरत के समय उनकी रक्षा भी करते थे) और नए बोली लगाने वालों द्वारा उनका निर्मम उत्पीड़न करने के कारण किसान उन इलाकों से भागने लगे, जिन पर कम्पनी शासन कर रही थी। भूख, अकाल, महामारी फैल गई और बंगाल की एक तिहाई जोती हुई भूमि बड़े बंगलों में तब्दील हो गई। अंग्रेजों को स्पष्ट हो गया कि राजस्व का स्त्रोत ही जोखिम में पड़ चुका है और अगर ऐसे ही किसान छोड़कर भागते रहे, तो धन का आना तो तुरन्त ही बन्द हो जाएगा ही, वे इलाके भी जनविहीन हो जाएँगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अत: कुछ वैकल्पिक व्यवस्था करना जरूरी लगने लगा। कोई नई व्यवस्था बैठाना ईस्ट इंडिया कंपनी की मजबूरी हो गई।[34]

स्थाई बन्दोबस्त

बहुत से उन सुझावों में से, जो दिए गए थे मौजूदा 'नीलामी व्यवस्था' के स्थान पर लागू करने के उद्देश्य से जिसे अन्तत: अपनाया गया, उसे कार्नवालिस के 'स्थाई बन्दोबस्त' के नाम से जाना जाता है। इस व्यवस्था के तहत (जिसे कम्पनी ने अपने अधीनस्थ देशों में किए जा रहे आवश्यक सुधारों के बहाने से शुरू किया) कम्पनी के कारिंदों (अर्थात वे जिन्होंने पुराने जमीदारों का स्थान पाया था या जिन्हें पुराने जमीदारों को हटा कर स्थापित किया गया था) को 'भूस्वामी' कहा गया और उन्हें कम्पनी के द्वारा तय की गई रकम को उसे अदा करने के लिए निर्देशित किया गया। इस राजस्व वसूली में कम्पनी को उसकी रकम देने के बाद जो अंश बच गए, उसे वे रख लेने के हकदार समझे गए। अपनी पहले की व्यवस्था- जिसमें समय-समय पर किराया बढ़ा दिया जाता था- से भिन्न, अब कम्पनी ने दरों को स्थाई बना देने की सोची, जो यह 'भूस्वामी' उन्हें देंगे। इस बात को नोट किया जाना चाहिए कि राजस्व का यह प्रारंभिक स्थिरीकरण कम्पनी ने बिल्कुल मनमाने ढंग से किया, वसूली की रकम पहले से कहीं ज्यादा निश्चित की गई- लगभग 80 प्रतिशत तक और वह भी बिना उन 'भूस्वामियों' से बातचीत किए। इस पूरे प्रकरण में कम्पनी का एकमात्र लक्ष्य था अपनी आय को अधिकाधिक उच्चतम सीमा तक बढ़ाना।

नए लैंडलाईस को भी जमींदार प्रचारित किया

यहां पर एक विषयांतर आवश्यक प्रतीत होता है। हमारे लिए इन दो शब्दों 'जमींदार' और 'लैंडलॉर्ड' का मूलभूत अन्तर समझना बहुत जरूरी है। यह वह साधारण उधेड़बुन नहीं है जिसे सामान्यत: अनदेखा कर दिया जाता है। यह चालू अनुवाद करने की आदत से पैदा की गई एक बहुत ही गंभीर गलती की ओर संकेत करता है, जिसके जिम्मेदार अंग्रेज थे। इन्होंने 'जमींदार'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शब्द के लिए 'लैंडलॉर्ड' शब्द का इस्तेमाल खुले रूप से किया जिसे सर्वसामान्य ने 'जमींदार' का अंग्रेजी अनुवाद मान लिया। नतीजतन बंगाल का एक समूचा वर्ग और उसकी छवि कलंकित हो गई- जबकि वास्तविकता यह थी कि 'लैंडलॉर्ड' ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अस्तित्व में लाया गया और वह नया वर्ग था जिसमें पुराने जमींदारों का अस्तित्व ही समाप्त कर डाला।

पुराने जमींदार अपने क्षेत्र के खेतों के मालिक नहीं होते थे

इस सूक्ष्म भेद की ओर न तो किसी ने ध्यान ही दिया और न ही इस पक्ष की कोई छानबीन की गई। इस तरह से पुराने जमींदारों के लिए 'लैंडलॉर्ड' शब्द को स्थानापन्न करते हुए और अपने द्वारा ईजाद की गई नई व्यवस्था 'स्थाई बन्दोबस्त' को 'जमींदारी व्यवस्था' का भी नाम देते हुए ब्रिटिश लोगों ने उस बहुत ही मूलभूत अन्तर को धो-पोंछ कर साफ कर दिया जो 'लैंडलॉर्ड' एवं 'जमींदार' के चरित्र में विद्यमान था। उदाहरण के लिए, भारत के पारम्परिक 'जमींदार' अपने क्षेत्र के खेतों के 'भूस्वामी' नहीं हुआ करते थे। उसी तरह से जैसे 'फौजदार' 'फौज' का स्वामी नहीं होता था और 'सूबेदार' 'सूबे' का स्वामी नहीं होता था। इन शब्दों का तात्पर्य कुल इतना था कि यह सभी वे ऊँचे पद हुआ करते थे जिनपर राजा द्वारा अपने विश्वस्त लोगों को नियुक्त किया जाता था। 'लैंडलॉर्ड' जिनसे हम लोग काफी परिचित हैं- ईस्ट इंडिया कम्पनी की विशिष्ट रचना थे। जिनको अस्तित्व में ही लाया गया था- किसान का सफलतापूर्वक शोषण कर पाने के उद्देश्य से। इनके एकमात्र हथियार थे 'उत्पीड़न' एवं 'जबरदस्ती' जिसका उपयोग अंग्रेजों के हित साधन के रूप में वे करते थे। जमींदारों (कम्पनी के शासन के पूर्व विद्यमान) के साथ इन 'लैंडलॉर्ड' की कहीं कोई साम्यता नहीं थी। (इनमें से कुछ पुराने जमींदार तो किसान के लिए इस हद तक हमदर्दी रखते थे कि उसे कम्पनी की खूंखार नीतियों से बचाने के लिए इन्होंने अपनी निजी सम्पत्ति, घर-बार, गहने बगैरह तक बेच दिये।[7]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रेष्ठ परम्परागत जमींदारों का नीचतापूर्ण विनाश

जमींदारों के इस बेहतर वर्ग का खात्मा अन्ततः ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने क्रूरतम, निम्न दर्जे के हथकंडों से सम्भव बनाया, और उन्हें उनकी रियासतों से निकाल बाहर किया जिन पर उनके पूर्वजों का शताब्दियों से अधिकार था। ऊपर से एक ऐसा भ्रामक वातावरण पैदा कर दिया गया जिसमें कोई भी यह मान बैठता कि सदियों से भारत में एक शोषणात्मक जमींदार व्यवस्था का अस्तित्व रहा है। जिसके सम्बन्ध अंग्रेजों से नहीं हैं, बल्कि भारतीय अतीत से हैं। कैसे और क्यों? यहाँ तक कि भारत सरकार द्वारा प्रवर्तित किताबों जैसे कि एन.सी.ईआर.टी. द्वारा प्रकाशित- इस प्रकार के गलत, बेवुनियाद पूर्वाग्रहों को स्थाई बनाते जा रहे हैं, यह जिज्ञासा का विषय होना चाहिए (किन्तु नहीं है)। वर्तमान एंग्लो-सेक्सन लॉ को भारतीय न्याय- परम्परा का अंग मानना या वर्तमान 'पॉलिटीशियन' को परम्परागत राज्यकर्ता एवं राजपुरुष मानना भी ऐसी ही भ्रान्तियाँ हैं।

नए लैंडलॉर्ड यानी कम्पनी के लफंगे सेवक

स्थाई बन्दोबस्त की दूसरी महत्वपूर्ण विशिष्टता यह थी कि इन तथाकथित 'लैंडलॉर्ड' से भूमि राजस्व की रकम सुनिश्चित करने के पहले किसी प्रकार की सहमति नहीं ली गई। उनकी भूमिका केवल यह मान ली गई कि वे किसी भी कीमत पर उक्त रकम को जमा करेंगे। अपने इलाकों से वसूलेंगे और कम्पनी के खजाने में उसे उड़ेल देंगे। अगर कोई चूक हुई इस दिशा में तो कम्पनी को यह अधिकार था कि उन्हें उनके अधिकार से बेदखल कर दें। 'भू-स्वामी'- यह अवश्य ही पदवी उन्हें प्रदान की गई, किन्तु वास्तविकता यह थी कि वह स्वयं ही ब्रिटिश कम्पनी के 'किराएदार' की तरह थे और शब्दजाल तथा छल प्रपंच के लिए वास्तविक 'भू-स्वामी' ईस्ट इंडिया कम्पनी स्वयं बन बैठी थी। उस नए 'लैंडलॉर्ड' वर्ग के सामने- किसान से अनुबंधित रकम को येन केन प्रकारेण, वसूल करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। क्योंकि यंही तो वह उद्देश्य था, जिसके मद्देनजर इस 'लैंडलॉर्ड' वर्ग को कंपनी द्वारा तैयार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किया गया था। इस बात को जोर देकर कहते हुए, कि इस तरह के 'लैंडलॉर्ड' वर्ग की जड़ें भारतीय पारम्परिक व्यवस्था में कहीं भी अनुमोदनीय नहीं है, एक विद्वान लिखते हैं- 'समझौते की ये शर्तें जमींदारों एवं किसानों दोनों के लिए ही बहुत बोझिल थी, जबकि कम्पनी सरकार के लिए अति लाभकारी। 3 मिलियन पौंड की रकम जो कि जमींदारों को कम्पनी सरकार के लिए जुटानी थी पूर्ववर्ती शासकों के अधीन जमा की जा रही रकम की तुलना में की गई कई गुनी, बढ़ोत्तरी थी। बहुत से पुराने जमींदार परिवार, जिन्होंने अभी भी मुश्किल समय में रैयत के प्रति हमदर्दी एवं उन्हें छूट देने की नीति नहीं छोड़ी थी, इस नयी व्यवस्था को स्वीकार कर पाने में असमर्थ सिद्ध हुए। उनकी जागीरों को निर्ममता के साथ बेच डाला गया। एक नए किस्म की 'शार्क' मछली किस्म के दलालों का उदय हुआ, जो किसान वर्ग से आखिरी पाई तक ऐंठ लेने को तत्पर थे, ताकि कम्पनी को उसका नियत अंक्ष भी दिया जा सके एवं उनकी अपनी जेबें भी गर्म हो जाएँ। यही चरित्र था उस नए वर्ग का जिसे अस्तित्व में लाना कंपनी का उद्देश्य था। इसी के लिए स्थायी बंदोबस्त नामक व्यवस्था चलाई गई।'

इसी तरह कम्पनी ने यह भी सुनिश्चित किया कि इस नए वर्ग का हित उसके अपने हित से ही मेल खाए। समानहित से वह अलग रहे। व्यवस्था कुछ इस ढंग से की गई कि 'लैंडलॉर्ड' की जेबें कम्पनी के लिए जुटाए जा रहे राजस्व की वसूली के दौरान ही भरनी शुरू हो जाए। उसे जमा की गई रकम में से 90 प्रतिशत हिस्सा ईस्ट इंडिया कम्पनी को देना पड़ता था और 10 प्रतिशत स्वयं के लिए और अगर वह रैयत से सफलतापूर्वक कुछ और ज्यादा ऐंठ सका, तो उसे अपने लिए सुरक्षित रखने का अधिकार भी इस लैंडलॉर्ड को दिया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी उस पर अपना दावा नहीं करती थी। छोड़ देती थी। इससे इन नए 'लैंडलॉर्ड' को किसानों से बर्बर पशु जैसे व्यवहार की प्रेरणा मिली।

अंग्रेजों के लिए स्थाई बन्दोबस्त एक ठोस कमाई का जरिया था। सिर्फ धन के मामले में ही नहीं, बल्कि राजनीतिक लाभ की दृष्टि से भी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्नवालिस के दिमाग में यह बिल्कुल स्पष्ट था कि लैंडलॉर्ड नामक इस नए वर्ग को खड़ा करने का अर्थ यह भी होगा कि कंपनी हितों के लिए एक नयी सामाजिक इकाई तैयार हो, जो भारत में कंपनी एजेंटों का काम करेगी। अंग्रेजों का यह पक्का विश्वास था कि अगर इंग्लैंड जैसे छोटे देश द्वारा भारत जैसे विशालकाय देश को विजित कर उसके अधीनस्थ करना था, तब भारत के समाज में अपनी जड़ें एक ऐसे नए वर्ग के जरिये जमाई जाएं- जिसका स्वयं का ही जीवन/जीविका एवं लाभ- ईस्ट इंडिया कंपनी के अस्तित्व से जुट जाए, जिसको यह निश्चय हो जाए कि उसका हित तभी तक सुरक्षित है जब तक भारत में अंग्रेजों का शासन विद्यमान रहेगा।

सेवक बनी कम्पनी अब सरकार हो गई ?

कार्नवालिस ने अपने एक स्मरण पत्र में यह लिखा है कि वह सोच समझकर में एक नए वर्ग को तैयार कर रहा है और ऐसे नए-नए अधिकारों से इस वर्ग को नवाज रहा है, जिनका जमींदारों के पहले के अधिकारों से कहीं कोई तालमेल ही नहीं।

इन नकली लैंडलाईस के सहारे ही तो भारतीय राजाओं की सेवा के लिए कुछ चीजों का व्यापार एवं लगान वसूली करने की अर्जी देने वाली जालसाज कम्पनी अब नकली सरकार कहलवाने लगी-कम्पनी सरकार। नौकर या सेवक अब खुद को सरकार कहलाने लगा।

भारत में कंपनी सरकार नामक मनमानी चीज लैंडलार्ड नामक इस संस्था की मित्रता से ही बनी। यह संस्था कंपनी ने ही रची थी। इस प्रकार का संबंध भारत में पहले कभी नहीं देखा गया। (हालाँकि आज तक इस दिग्भ्रम के शिकार हैं लोग और इसे लोकप्रिय बनाने में हमारे विद्वानों का भी प्रशंसनीय योगदान रहा है)। बहुत ही धूर्ततापूर्ण ढंग से कंपनी के इन दलालों का भारतीय चेहरों को मोहरे के रूप में इस्तेमाल करते हुए कंपनी ने अपने को काफी समय तक परदे के पीछे ही रखा। अब वे हर वह काम कर सकते थे, जिसकी उन्हें इच्छा थी। स्वयं नहीं, बल्कि अपने इन नए राजनीतिक मित्रों के माध्यम से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिन्हें वे लैंडलार्ड बताते थे, उन्होंने इन्हें आँधी में सुरक्षित रखने वाले तरंगरोध की संज्ञा दी।

इस पैशाचिक ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ जनसाधारण का गुस्सा उमड़ पड़ा। 18वीं शताब्दी खत्म होने के पहले ही। इस तरह की दर्दनाक परिस्थिति में कंपनी के लिये राजनीतिक बुद्धिमत्ता के साथ काम करना अत्यावश्यक हो गया था। वह अपनी पुरानी भयंकर हरकतों का दोहराव करने में दिनों दिन दिक्कत महसूस कर रही थी। अत: चक्करदार तरीकों को ईजाद करना उसकी मजबूरी हो चली थी और परिणाम था स्थाई यह बंदोबस्त।

झूठे दावों की सच्चाई जानें

इस पृष्ठ भूमि को हम समझ लें तो कंपनी और उनके प्रशंसकों के इन दावों की सच्चाई स्वयं समझ में आ जाएगी-

(1) कि स्थाई बंदोबस्त को, किसानों को खुशहाल बनाने के लिये शुरू किया गया था।

(2) कि- इससे बंगाल में किसान समृद्ध होने लगे।

(3) कि- यह भूमि राजस्व एवं भूमि धारण अधिकतम पारम्परिक व्यवस्था को सुधारने की दिशा में एक प्रयत्न था।

और ये खेद प्रकाश भी तब अभिनय दिखेंगे। जैसे-

(1) कार्नवालिस द्वारा की गई वह एक नादान गलती थी। क्योंकि वह भारतीय व्यवस्था एवं प्रकारों से वाकिफ नहीं था, अत: अपने नेक इरादों के बावजूद एक ऐसी व्यवस्था खड़ी कर बैठा, जो भारतीयों के हित की दृष्टि से घातक सिद्ध हुई।

2. वह विदेशी शासकों द्वारा सदिइच्छा से शुरू किया गया एक प्रगतिशील प्रयत्न था, जिसे उन्होंने अपने देश के मॉडल पर ही तैयार किया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहां पर यह संकेत करना आवश्यक है कि भारत में खड़ा किया गया लैंडलार्ड का यह वर्ग अपने ब्रिटिश प्रतिरूपों से भिन्न था। ब्रिटेन में 'लैंडलॉर्ड' को हटाना किसी शासन व्यवस्था के लिए संभव नहीं रहा है। भारत में अपने द्वारा रचे गए नए 'लैंडलॉर्ड' को भरपूर रकम वसूली न हो पाने पर कंपनी चाहे जब हटा देती थी।[35] जो विमूढ़ लोग कम्पनी के किसी भी काम में सदाशयता देखते हैं, वे बुद्धिहीन ही ठहरेंगे।

रैयतवारी व्यवस्था

भूमिसुधारों की शृंखला में, अगला सुधार जिसे कंपनी ने शुरू किया- रैयतवारी व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि स्थाई बंदोबस्त जल्दी ही उस दिशा में जाने लगा जिसकी कल्पना कंपन के नौकर नहीं कर पाए थे। उसके क्रियान्वयन से जो परिणाम सामने आने शुरू हुए- वे कंपनी को अपने हित के अनुकूल नहीं दिखाई पड़े। जैसे- जैसे कृषि पर दबाव बढ़ने लगा और प्रतियोगिता सौदा आदि का चलन बढ़ने लगा, इसका स्वाभाविक परिणाम निकला निष्ठुर लगान की व्यवस्था। ब्रिटिश कर्मचारियों में एक ने इस पूरी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि इस तथाकथित सौदे की स्वतंत्रता के मार्फत निष्ठुर समाज की व्यवस्था तो मांग और आपूर्ति का ही प्रश्न हो जाता है। क्योंकि आपूर्ति तो एक निश्चित सीमित मात्रा में ही होनी है। जिसका प्रसार नहीं हो सकता जबकि मांग तो हमेशा ही बढ़ सकती है। जिसकी कोई सीमा नहीं है, निष्ठुर लगान की व्यवस्था को तो आगे-पीछे होना ही था।

अरने रचे लैंडलाईस को खुद कोसा

इस प्रकार से किराए का आसमान छू लेना और उसका सारा फायदा भू-स्वामी द्वारा हजम किया जाना- ईस्ट इंडिया कंपनी के लालची गुमाश्तों को बेचैन कर रहा था। उनके मुताबिक उनको जहाँ इस व्यवस्था से मात्र 3 मिलियन पौंड ही किराए के रूप में प्राप्त हो रहे थे, लैंडलार्ड किसानों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तकरीबन 12 मिलियन पौंड तक की वसूली कर रहे थे। यह एक ऐसी स्थिति थी, जो इन लालची अंग्रेजों के बर्दाश्त के बाहर थी। अतः इन लोगों ने अब एक नया जबस्त पैंतरा शुरू किया, यह कहते हुए कि लैंडलार्ड रैयतों के साथ बड़ी ही क्रूरता से पेश आ रहा है और रैयत को इनकी क्रूरता से बचाने की तत्काल आवश्यकता है, जो कि संभव है-यदि भारतीय कृषि में एक ज्यादा वैज्ञानिक भू-राजस्व एवं भू-धारण संबंधी व्यवस्था को लागू करके उसे सुधारने की चेष्टा की जाए। इस प्रकार की नीति का परिणाम थीं रैयतवारी व्यवस्थाएँ। अस्तु, अब लैंडलार्ड की बारी आई। उसे हटा दिया गया। अब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सीधे रैयत से ही मुनाफा कमाने की बात सोची- तथाकथित रैयतवारी व्यवस्था द्वार जिसे उसने हर उस प्रांत में लागू किया, जो उनके कब्जे में आता गया।

झूठ, छल, नीचता की अविराम श्रृंखला

रजनी पाम दत्त ने अपनी पुस्तक 'आज का भारत' (मैकमिलन, नई दिल्ली) में इस तथाकथित 'स्थायी बन्दोबस्त' की सच्चाई को इस प्रकार दर्शाया है-

'स्थायी बन्दोबस्त' व्यवस्था की अवधारणा के बाद रैयतवारी को मद्रास के कई जिलों में लागू किया गया। किसानों से सीधे लगान वसूली की यह व्यवस्था थी। इसे कहा तो गया स्थायी, पर यह थी बिल्कुल अस्थायी। कम्पनी अपने हितों के अनुरूप इसे लगातार बदलती गयी। इस बदलाव का आधार समय-समय पर किए जाने वाले मूल्यांकनों को बनाया जाता था। अब रैयतवारी में कम्पनी सीधे रियाया यानी प्रजा से किराया रूपी मनचाही रकम यानी लगान ऐंठती थी।' इरादा यह भी था कि इस प्रकार कम्पनी के फिरंगी नौकरों को भारतीय ग्रामीण किसान अपने नए जमींदार और राजा माननें लगें और उसे इन नए राजाओं की आदत पड़ जाए। राममोहनराय एक ऐसे ही प्रचारित राजा हैं, जो कम्पनी के मामूली नौकर थे। प्रचारित किया गया कि यह भारतीय परम्परा का ही विस्तार है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पत्ति और स्वामित्व की वही धारणा वर्तमान राज्यकर्ता भी मानते हैं

यह प्रचार नितांत झूठा हैं। तत्कालीन मद्रास राजस्व बोर्ड ने भी यह लिखा था कि परम्परागत व्यवस्था तो मौजावारी व्यवस्था थी। जिसमें प्रत्येक गांव एक अर्थ में स्थानीय गणतंत्र की तरह चलता था और विशालतर भारतीय राज्य से भी जुड़ा रहता था। सम्पत्ति का स्वामी परम्परा से पूरा गांव होता था, जैसे हम आगे अध्याय आठ में विस्तार से देखेंगे। सम्पत्ति को भारतीय परम्परा में दाय भी कहते हैं। 'दाय' वैदिक शब्द है। दाय के हस्तांतरण के नियम एवं प्रतिबन्ध स्पष्ट थे। सम्पत्ति के स्वामित्व पर भारत में विश्व में सर्वाधिक चिन्तन हुआ है। स्वत्व या स्वामित्व के पांच स्त्रोत हैं-1. रिक्थ या वसीयत। 2. खरीद। 3. विभाजन। 4. बलपूवर्क ग्रहीत और 5. अनायास प्राप्त सम्पत्ति। दान, विजय, लाभ और अनुग्रह पूर्वक सम्पत्ति का अधिगम अनायास प्राप्त सम्पत्ति की श्रेणी में आता है। कम्पनी जो कर रही थी, वह पैशाचिक पापाचार था। दुर्भाग्यवश स्वाधीन भारतीय राज्य भी सम्पत्ति के स्वामित्व की यूरो-क्रिश्चियन अवधारणा का बन्दी है।[36] आशा है, यथासमय भारत इससे मुक्त होगा।

पापाचार को परम्परा प्रचारित किया

कम्पनी ने अपने पापाचार को भारतीय परम्परा-सम्मत प्रचारित किया। वस्तुत: कम्पनी लुटेरों के झुंड जैसा आचरण कर रही थी। किसानों से जबरन लगान वसूली के लिए ऐसे भयंकर हथकंडे अपनाए जाते थे जबरन जुताई कराना, मना करने पर पटककर घसीटना, पीटना, उसका सब कुछ छीन लेना- केवल बैल और बीज छोड़ देना। कम्पनी के अफसरों की चिट्ठियां और पत्राचार इसके प्रमाण है। स्वयं तत्कालीन लेफ्टिनेट कर्नल जॉन ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक 'दि प्रिजेन्ट लैंड टैक्स इन इंडिया' में लिखा कि "भारत में खेत किसान की सम्पत्ति हैं। राज्य केवल उनसे कर ले सकता है। राज्य खेतों का स्वामी नहीं है। परन्तु आज कम्पनी ही भारत में खेतों की मालिक बन बैठी है। लगान की दर कई गुना बढ़ा दी गयी है। भारत का किसान इंग्लैड के या यूरोप के किसानों की तरह कभी भी दास (सर्फ) नहीं रहा है। वह तो अपनी भूमि का स्वामी है।"[37]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कम्पनी और फिरंगियों की बौद्धिक दासता कब तक?

दुर्भाग्यवश हमारे अधिकांश नवशिक्षित समाजवैज्ञानिक भारत के विषय में कम्पनी अफसरों और बाद में ब्रिटिश राजकीय अफसरों द्वारा गढ़े गए भारत विषयक झूठ को ही भारत का सच्चा इतिहास मानते हैं। परंतु विश्व में कहीं भी, इग्लैण्ड या किसी भी यूरोपीय या किसी अन्य देश का इतिहास वहाँ घूमने गए या व्यापार करने और धोखा देने गए लोगों के पत्रों या बयानों के आधार पर कभी नहीं लिखा जा सकता। भारत के साथ ही ऐसा अनुचित भेदभाव किया जाता है।

यदि भारत सरकार सम्पत्ति और स्वामित्व की भारतीय परम्परा को मान लेती तो यहाँ वैसे कोई विवाद एवं विभेद जन्म ही नहीं ले पाते, जो विगत 65 वर्षों में फैले हैं।

परन्तु भारत का राज्य तो ब्रिटिश भारतीय राज्य की ही परम्परा में चल रहा है। भूमि सुधार के नाम पर किसानों को भूमिहीन जैसी श्रेणी में डाला जाता रहा है। एक अनुमान के अनुसार 42 प्रतिशत ग्रामीणों के पास कोई भूमि नहीं है, जबकि 25 प्रतिशत के पास गाँवों की 70 प्रतिशत भूमि है। 33 प्रतिशत के पास कुल का लगभग 30 प्रतिशत भूमि है।

खेतिहर मजदूरों की संख्या 1961 में लगभग 19 प्रतिशत थी, आज 38 प्रतिशत से अधिक हो गयी है। भारत में लगभग 15 करोड़ घर या परिवार हैं, इनमें से 3 करोड़ परिवारों के पास एक टुकड़ा जमीन भी नहीं है। 6 करोड़ परिवारों के पास लगभग 1 एकड़ भूमि है। एक चौथाई लोगों की भूमि भी बढ़ती गयी है, समृद्धि भी। वस्तुतः भूमि हदबंदी एवं सामुदायिक खेती के प्रयोग कम्युनिस्ट मतवाद की नेहरू जी द्वारा की गयी नकल हैं। कम्युनिजम के अत्याचार और असफलता विश्वविदित हैं। अतः उसकी नकल को फेल होना ही है। एक-एक हेक्टेयर खेत यदि 10 करोड़ परिवारों को बाँट भी दिए जाएँगे, तो कुछ समय बाद वे उन्हें बेचकर शहर पहुँच जाएँगे और झुग्गी- झोपड़ी में रहकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मजूरी करेंगे। इतने छोटे काश्त कभी भी सम्पत्ति के निर्माण में सफल नहीं हो सकते। विशाल निगमों की पोषक राज्यसत्ताएँ लघुतम काश्त की समर्थक एवं प्रसारक किस आधार पर हैं, समझ पाना मुश्किल है परन्तु नारों में फँसी राजनीति विवेक से विमुख रही आती है।[38]

पंजाब में लागू की गयी महालवाड़ी व्यवस्था भी वैसी ही विघटनकारी सिद्ध हुई। इसका उद्देश्य भी वही था। ब्रिटिश कम्पनी की नीतियों के लक्ष्य ये थे:-

1. राजस्व में लगातार बढ़ोत्तरी।

2. सरकारी कृपा प्राप्त जागीरदारों, महाजनों और राजस्व कर्मचारियों (पटवारी आदि) का नया वर्ग रचना।

3. वित्तीय एवं राजनैतिक प्रशासन का केन्द्रीयकरण।

4. गांवों की सामुदायिक एकता को नष्ट कर वहाँ व्यक्तिवाद एवं लघु परिवार की धारणा फैलाकर समाज की एकता को तहस-नहस करना एवं समाज को वशवर्ती बनाना।

5. खेतों का स्वामित्व 'निजी' यानी वैयक्तिक बनाकर उसे बेचने-खरीदने, रेहन रखने, हस्तांतरित करने योग्य बनाना।

6. कर के स्थान पर भूमि किराया या लगान वसूली ताकि किसान भूमि का स्वामी नहीं, किराएदार माना जाए।

7. आतंक, उत्पीड़न द्वारा ग्रामीणों में आतंक एवं भय का प्रसार, उन्हें बंधुआ बनाना, बंधक रखना, सब कुछ लूट लेना, जबरन वसूली करना, दीन-हीन बनाकर रखना।

भूमि किराए के नाम पर भयावह लूट

ये सभी कदम वस्तुतः भारत के पिछड़ेपन का निमित्त बनते गए। वे ही नीतियां आज भी जारी हैं। फिरंगियों ने अपने कब्जे वाले इलाकों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत से भूमि किराए के नाम पर जो रकम वसूली, उस पर एक नजर डालने से स्पष्ट हो जाएगा कि यह भयंकर लूट भारत को कंगाल बनाने वाली ही सिद्ध होनी थी, भले ही आदतन झूठे वे फिरंगी स्वयं को भारत का सेवक एवं पोषक प्रचारित करते रहे हों-

क्र.	अवधि	विवरण	कुल लगान
1.	1764-1765	मुगलराज का अंतिम वर्ष	81,800 पौंड
2.	1765-1766	ईस्ट इंडिया कंपनी का पहला वर्ष	14,70,000 पौंड
3.	1793-1794	स्थायी बंदोबस्त का पहला वर्ष	30,91,000 पौंड
4.	1852-1858	ब्रिटिश राज्य का प्रथम वर्ष	1,50,30,000 पौंड
5.	1900-1901	बीसवीं शताब्दी के प्रांरम्भिक वर्ष	1,70,50,000 पौंड
6.	1911-1912	प्रथम विश्वयुद्ध का वर्ष	2,00,00,000 पौंड
7.	1936-1937	द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व	2,39,00,000 पौंड

इस प्रकार मुगलकाल के 81,0000 पौंड से बढ़कर 170 वर्षों में वसूली जा रही लगान की रकम लगभग 300 गुनी ज्यादा हो गई।[39]

कम्युनिस्ट बौद्धिकता को फैलाया नेहरूवादी कांग्रेस ने

स्वाधीन भारत में नीतियों की दिशा वही रही। राज्य ही आज भी सम्पत्ति का स्वामी बना है। भारत के सभी राजनैतिक दल राज्य की इसी अवधारणा एवं व्यवहार को मानते हैं। अधिकांश ने तो इस विषय पर कोई चिंतन भी नहीं किया। राज्य इंग्लैण्ड या यूरोप में भी व्यवहार में एकीकृत इकाई कभी नहीं रहा। इसीलिए तो मार्क्स की वर्ग-विश्लेषण की अवधारणा वहाँ लोकप्रिय हुई। क्योंकि एक सीमित वर्ग ही राज्य के नाम पर अपनी मनमानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चलाता रहा है। परंतु मार्क्स ने वर्ग की कोई परिभाषा नहीं दी है और वर्ग-संघर्ष को इतिहास की निर्णायक शक्ति बता दिया है जिससे भारी भ्रम एवं खोखली नारेबाजी की स्थिति बनती है तथा राज्य पर कब्जे के इच्छुक लोग वर्ग- संघर्ष के नाम पर अनीति हत्या, छल-घात, मार -काट, भयादोहन, वसूली, फिरौती, राज्य -शक्ति के दुरूपयोग आदि हर प्रकार के पापाचार वैसे ही बेधड़क करते हैं, जैसा कभी क्रिश्चियन चर्च ने रेलिजन के नाम पर शताब्दियों तक किया।

चर्च का भौकितवादी संस्करण हैं कम्युनिस्ट पार्टियाँ

इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टियाँ मध्यकालीन क्रिश्चियन चर्च का भौतिकतावादी संस्करण भर हैं। परंतु भारत में श्री नेहरू के नेतृत्व में इसी भौतिकवादी वर्ग के एकाधिकारवाद को बढ़ाया गया। राज्य -शक्ति के दुरूपयोग की अभ्यस्त ब्रिटिश अफसरशाही की निरन्तरता में भारत की अफसरशाही ने समाजवादी ढ़ाँचे वाली नौकरशाही का स्वरूप धारण कर उसी विचार वाले राजनेताओं/ढ़ाँचे और एकेडमीशियन्स के साथ इसी मार्ग का गौरव-गान फैलाया।

इकतरफा हस्तांतरण जारी है

फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 के बाद भी वही प्रक्रिया जारी रही। गांवों से शहरों को संसाधनों का इकतरफा हस्तांतरण जारी रहा। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र से उद्योग क्षेत्र को संसाधनों का हस्तांतरण जारी रहा। पंचवर्षीय योजनाओं में शहरी क्षेत्रों के लिए ही अधिक संसाधन रखे जाते रहे। कराधान के ढ़ाँचे को ही लें। कुल करों का तीन चौथाई भाग अप्रत्यक्ष करों का है। जिसका अर्थ है कि गांवों में रह रही 80 प्रतिशत से अधिक आबादी ही करों का मुख्य बोझ उठाती है।

किसान को बेसहारा छोड़ दिया

जमींदारों-जागीरदारों को जमीदारी उन्मूलन के समय मुआवजा दिया गया, 670 करोड़ रूपये बांड तथा नगदी द्वारा दिए गए। पुनर्वास योजनाएँ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऋणों का समायोजन तथा अन्य सुविधाएँ अलग से। काश्तकार को क्या मिला? लगान कई गुनी बढ़ा दी गई चालीस गुनी तक। गाँवों से संसाधन खींचकर शहरों को और गरीबों से खींचकर धनियों को दिए जाते रहे-विकास के नाम पर।[10]

भारतीय उद्योगों का बिखराव और ध्वंस

ब्रिटिश दौर में खेती का ही विघटन नहीं हुआ, उद्योगों का भी विघटन हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने तो अवैध कमाई की ही। परन्तु 1813 ईस्वी के बाद इंग्लैंड के सभी लोगों को भारत के साथ व्यापार करने की छूट दे दी गई और इसके साथ ही भारतीय उत्पादनतंत्र एवं उद्योगतंत्र को कानूनी प्रावधानों द्वारा उत्पीड़ित एवं कमजोर किया जाने लगा। भारतीय व्यापारी सच्चे अर्थो में मुक्त व्यापार करते थे। ब्रिटेन ने उन्हें प्रतिबन्धों से लाद दिया। भारतीय जिस मुक्त व्यापार के अभ्यस्त थे, उसमें मुक्त व्यापार, मुक्त व्यापारिक अनुबन्ध, न्यायपूर्ण कराधान आदि निहित थे, जिनका आधार अध्याय 8 में निरूपित है। ब्रिटेन के अधीन व्यापारिक प्रतिस्पर्धा पर प्रतिबंध लाद दिए गए, ब्रिटिश एकधिकार को बढ़ावा दिया गया और अन्यायपूर्ण कराधान थोपे गए। छल, विश्वासघात और धमकी से भारतीय व्यापारियों का सम्पत्ति-हरण किया जाने लगा। कम्पनी का सारा व्यापार तो भारतीय माल की इंग्लैंड और यूरोप में बिक्री तक केन्द्रित था। अब इंग्लैंड अपना घटिया माल भारत के बाजारों में लादने लगा। सांसद टिएरने ने ब्रिटिश संसद में 1813 ईस्वी में स्पष्ट कहा कि "इंग्लैंड को अपना सम्पूर्ण उत्पादन भारत पर बलपूर्वक लादना है और भारत का एक भी माल इंग्लैण्ड के बाजार में आने नहीं देना है। यही एक सामान्य नीति है।"

संक्षेप में ब्रिटिश नीति यह रही:-

1. भारत में ब्रिटिश माल के आयात पर कोई टैक्स नहीं या नाम मात्र का टैक्स।

2. भारतीय माल के ब्रिटिश बाजार में निर्यात पर भयंकर टैक्स।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3. भारत का कच्चा माल इंग्लैण्ड ले जाने वाली नीतियां।

4. रंगाई–छपाई के भारतीय हुनर का ब्रिटिश कारीगरों को प्रशिक्षण।

5. भारतीय बाजार में केवल ब्रिटिश माल की खपत सुनिश्चित करना।

माल–भाड़े की ब्रिटिश नीति पर कुछ चर्चा पूर्व में की गई है। कुछ बिंदु और:-

1. भारतीय माल पर दोहरी चुंगी। बंदरगाह में माल उतारते समय और ब्रिटिश बाजार में बिक्री के समय। कुल मिलाकर 100 प्रतिशत से अधिक चुंगी लग जाती थी। स्थिति यह हो गई कि जो भारतीय वस्त्र इंग्लैण्ड में 100 रूपए से कम में सुलभ हो गए, उसी स्तर के ब्रिटिश वस्त्र भारत में साढ़े चार गुने दाम में मिल पाते थे।

2. ब्रिटिश माल पर भारत में अधिकतम 2 से अढ़ाई प्रतिशत चुंगी देनी होती थी।

3. जो ब्रिटिश माल भारतीय बाजार में आ जाए, उसकी बिक्री पूरी होने तक भारतीय व्यापारी उसी प्रकार का भारतीय माल नहीं बेच सकते थे।

इसका विस्तृत विवरण तत्कालीन दस्तावेजों में हैं। चार्ल्स ट्रेवल्यान लिखते है – " भारतीय व्यापारियों को खूब सताया जाता है। उनके काम अटकाए जाते हैं। निर्माताओं की हत्याएं की जाती है। चुंगी अधिकारी भयंकर अत्याचार करते हैं।

वे भारतीय व्यापारियों को लूटते हैं। उन्हें सताया जाता है। स्त्रियों का शील असुरक्षित है।"

एलनबरो लिखते हैं:-

"235 भारतीय वस्तुओं पर देश के भीतर चुंगी लगी है। इनमें समस्त घरेलू माल शामिल हैं। यह तो आंतरिक व्यापार को नष्ट ही कर डालेगा। भारतीय समाज में अनैतिकता फैलाई जा रही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे कर्मचारी-अधिकारी वहां अनैतिक आचरण करते हैं और भारतीयों पर अनैतिक दबाव डालते हैं।''

भारतीय जहाज उद्योग को नष्ट किया

बड़ी सीमा तक भारतीय सूती वस्त्र एवं रेशमी वस्त्र व्यापार को नष्ट कर डाला गया। भारतीय जहाज उद्योग को भी नष्ट किया गया। फ्रेंच यात्री एफवालजार सेल्विन्स का कहना है कि ''प्राचीन काल से ही भारत के हिन्दू लोग जहाज बनाने की कला एवं तकनीक में अग्रणी हैं।'' स्वयं ब्रिटिश सैन्य अधिकारी लेफ्टिनेंट कर्लन ए. वाकर लिखते हैं - ''बाम्बे में बने कई जहाज 14-15 वर्षो तक चलाए जाने के बाद हमने लिए और हमारी नेवी को वे बहुत उपयोगी तथा मजबूत लगे। कोई भी यूरोप- निर्मित जहाज इतने मजबूत नहीं होते।'' कर्नल वाकर ने ब्रिटिश संसद को बताया कि हम भारत में बने जहाज खरीदें तो वे सस्ते भी पड़ेंगे, मजबूत भी रहेंगे। इंग्लैण्ड में बने जहाज इतने मजबूत और टिकाऊ नहीं होते।

परंतु इंग्लैण्ड के शासकों ने योजना - पूर्वक भारतीय जहाज उद्योग को समाप्त कर डाला। इसके लिए नौ-परिवहन -कानून इसी तरह से बनाए गए। परिणाम यह हुआ कि 1857 ईस्वी में जहाँ भारत में 34,286 जहाज बने, 42 वर्षो बाद 1898-1999 में वे केवल 2802 जहाज प्रतिवर्ष तक सिमट गए और 1899-1900 में केवल 1,676 जहाज तक। अंग्रेजों ने पहले भारत से बने जहाज खरीदे। फिर भारतीय जहाज-निर्माता शिल्पियों को जबरन इंग्लैंड ले जाकर वहाँ जहाज बनवाए तथा उसे ही अपने देश इंग्लैंड का जहाज प्रचारित किया। आज शिक्षित भारतीय यह तथ्य सामान्यतः नहीं जानते। वे भारत की विशाल नौसेना की परम्परा को भी नहीं जानते।

डब्लू.एस. लिंडसे ने लिखा है कि 1840 के दाशक में पुर्तगाल, हालैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड और सुंयुक्त राज्य अमेरिका सहित समस्त यूरोपीय देशो में कुल जितने जहाज थे, भारत में उससे अधिक जहाज थे। समस्त एशियाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यापारिक माल भारतीय जहाजों द्वारा ही लाया -ले जाया जाता था। अंग्रजों ने भारतीय जहाज उद्योग नष्ट कर दिया। संक्षेप में अंग्रेजों ने भारत के इन उद्योगों को योजनापूर्वक नष्ट करने का पैशचिक कर्म किया।[41]

1. सूती वस्त्र-उद्योग
2. ऊनी वस्त्र-उद्योग
3. रेशमी वस्त्र-उद्योग
4. जहाज-निर्माण-उद्योग
5. लोहा एवं इस्पात उद्योग
6. चीनी -उद्योग
7. काली मिर्च का व्यापार

ब्रिटिश नीतियों ने भारतीय खेती एवं उद्योगों को नष्ट किया। फलस्वरूप कंगाली बढ़ी और अकाल भी पड़े। भारत में 1800 से 1911 के बीच पड़े अकाल की संख्या ये है-

क्र.	वर्ष	भारतीय अकालों की संख्या का जो ब्रिटिश आंकडा है
1.	1800–1825	5 बार
2.	1825–1850	2 बार
3.	1850–1875	6 बार
4.	1875–1890	18 बार
5.	1900–1911	31 बार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकालों से हुई मौत के आँकड़ों ये हैं:-

क्र.	अवधि	मरने वाले भारतीय
1.	1800–1825	10 लाख लोग
2.	1825–1850	5 लाख लोग
3.	1851–1875	50 लाख लोग
4.	1876–1900	200 लाख (या 2करोड़) लोग
5.	1900–1901	40 लाख लोग
6.	1906–1907	50 हजार लोग
7.	1918– 1919	1 करोड़ लोग
8.	1922– 1944	10 लाख लोग
9.	अन्य वर्षो में	150 लाख (डेढ़ करोड़)

उल्लेखनीय है कि स्वयं ब्रिटिश अनुमान से 1901 में सामान्य वृद्धि दर से ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र की जनसंख्या 33 करोड़ से अधिक होनी चाहिए थी, जबकि वह केवल 29 करोड़ ही हो पाई। अकालों का यह असर था। इसलिए आधुनिकीकरण का भारत में परिणाम था भुखमरी, अकाल, उत्पीड़न, यातना, मृत्यु और अत्याचार। नील की खेती, चाय की खेती, जूट की खेती, अफीम की खेती सभी क्षेत्रों में ब्रिटिश नीति के कारण तबाही, कंगाली, बंधुआ मजदूरी और बेरोजगारी फैली। श्री धर्मपाल ने स्वयं ब्रिटिश साक्ष्यों से दिखाया है कि ''बंधुआ मज़दूरी भारत में कभी थी नहीं। वह यहाँ पर अंगेजों ने थोपी। ''सूती वस्त्र उद्योग एवं अन्य उद्योगों में की गयी तबाही का विवरण-संकेत ऊपर हो चुका है। कराधान, चुंगी-नीति आदि सभी में ऐसी ही अनीति एवं अन्याय किया गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस विषय के विस्तार के लिए जिज्ञासु पाठक पढ़े- डॉ. केडिया एवं डॉ. ए. सिन्हा लिखित- रूट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट'' वाराणसी, 1987 ईस्वी।[42]

भारतीय व्यापार का विघटन

भारतीय व्यापार के विघटन के अनेक तथ्य पूर्व में दिए जा चुके हैं। यहाँ सार रूप में उन्हें पुनः दिया जाना उचित होगा:-

1. ड्रेक के द्वारा गोल्डेन हिन्द जहाज से लूटे गए माल में से अपना हिस्सा लेकर ब्रिटेन की रानी एलिजाबेथ ने विदेशी कर्ज चुका दिया और लीवेन्ट कम्पनी में बकाया 42000 पौंड निवेश किया।

2. यह निवेश 120 वर्षो में 25 लाख पौंड हो गया। जो कंगाल इंग्लैंड के लिए बहुत बड़ी धनराशि थी।

3. लूट, डैकती, छल, अनीति, विश्वासघात, कमीनगी,, झूठ, हत्या, भारतीय अपराधियों से साठगांठ - ये ही ब्रिटिश कम्पनी के व्यापार के सिद्धान्त थे। अंतहीन लूट का यह क्रम बंगाल की तबाही का कारण बना। इंग्लैंड के लिए बंगाल कामधेनु बन गया। परंतु कुल भारतीय व्यापार उससे सौ गुना ज्यादा था। इसलिए भारतीय राजा और बड़े व्यापारी अपने कामों में लगे रहे। वह कोई सम्पूर्ण भारत की लूट नहीं थी। भारत तब बहुत धनी था।

4. भूमि की लगान वसूली की जिम्मेदारी स्वीकार कर कम्पनी भारतीय राजाओं की नौकर भी बन गई। पर वह एक दगाबाज, विश्वासघाती एवं हत्यारी नौकर निकली। इस पापाचार की पागल प्रेरणा उसे मध्यकालीन -ईसाई आस्था ने दी जो एक मनोरोगी की दशा से तुलनीय है।

5. भारतीय निर्माताओं एवं व्यापारियों पर अन्याय, अत्याचार, किए गए, यह तथ्य है। पर कम्पनी का कुल प्रभाव-क्षेत्र भारत के अष्टमांश पर भी मुश्किल से था। केवल पीड़ित क्षेत्र ही भारत नहीं है। स्वतंत्र पराक्रमी युद्ध रत शेष भारत भी भारत ही है। कम्पनी नौकर थी,, राजा नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

6. कम्पनी के गर्वनर जनरल यानी मैनेजर –कम्पनी के महाप्रबंधक। उन्हें भारत के गवर्नर जनरल बताना आश्चर्यजनक बुद्धिहीनता है। ऐसा कुछ जो भारत में पढ़ाया जाता है, वह इतिहास नहीं है, हद दर्जे की चापलूसी है और झूठ है।

7. भारत के राजाओं ने ईस्ट इड़िया कम्पनी को व्यापार की अनुमति दी। उनका टैक्स माफकिया। बदले में ब्रिटिश कम्पनियों ने भारतीय व्यापारियों पर राज्य –शक्ति का सहारा लेकर भयंकर टैक्स लादे। यह अनीति, अन्याय, पापाचार है। व्यापार नहीं,, राजनीति भी नहीं। जो लोग ऐसे व्यापार के प्रशंसक हैं, वे अनैतिक एवं गलत लोग हैं।

8. 1813 ईस्वी तक इंग्लैण्ड भारत की लूट से इतिहास में पहली बार धनी बना। इस लूट को अर्थशास्त्रीय नियम की वैधता देने की कोशिशों को अर्थशास्त्र बताकर भारत में पढ़ना –पढा़ना प्रज्ञापराध है।

9. 1911 ईस्वी में जान मेनाड कीन्स भारत के शिक्षित वर्ग में देशभक्ति की भावना होने की निन्दा कर रहे थे और तर्क दे रहे थे कि भारत को अपना कच्चा माल (रॉ मेटीरियल) जिसका सही नाम है – मूलभूत द्रव्य (फंडामेंटल मेटीरियल)– इंग्लैण्ड भेजना चाहिए और फिर भारी कीमतें देकर वहाँ से तैयार माल मंगाना चाहिए। आज भारतीय शिक्षित वर्ग का एक बड़ा अंश कीन्स के इन तर्कों का पालन कर रहा है और देशभक्ति त्याग चुका है। इतना ही नहीं, इस देशविरोधी कार्य को हीं विकास बता रहा है और इस विकास को ही देशभक्ति बता रहा है।

10. कपास, जूट, चाय, अफीम, नील, तम्बाकू, काफी,, चीनी,, तिलहन – सभी भारत से इंग्लैंड भेजे जाने लगे। आज भी इनमें से अनेक वस्तुएं निर्यात की जाती हैं। अब यह काम विकास के लिए जरूरी विदेशी मुद्रा के नाम पर किया जाता है।

11. इंग्लैंड में न कपास होता था, न इस्पात बनता था, न चाय होती थी, न काफी , न गन्ना, न चीनी,, न गेहूँ। इस्पात उद्योग इंग्लैंड में 19 वीं शती ईस्वी के उत्तरार्ध में पनपा । वह भारत से बहुत घटिया होता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

12. भारत से लूटे गए धन का निवेश भारत में करने के लिए तथा इंग्लैंड के इस्पात को भारत में खपाने के लिए वहाँ रेलें बिछने के साथ ही भारत में भी रेलें बिछाई जाने लगीं। इसके लिए भयंकर बेगारी कराई गई। 20 वीं शती ईस्वी के पूर्वार्ध में ही रेल-उद्योग इंग्लैंड और भारत दोनों जगह ज्यादा फैला है। परम्परागत सिंचाई की व्यवस्थाएं तहस-नहस कर रेलें बिछवाई गई। इससे ही भारत में भयंकर अकाल का दौर आया। प्रबुद्ध भारतीयों (रमेशचन्द्र द्रत्त, अमिय बागची, जी. एस. अय्यर आदि) ने रेलवे की तुलना में सिंचाई के महत्व को रेखांकित किया है।

13. प्रथम विश्वयुद्ध के दबाव में भारत में उद्योगों को बढ़ावा दिया जाने लगा। भारतीयों का सहयोग पाने के लिए मजबूरी में यह किया गया। बदले में प्रबुद्ध भारतीयों ने उन्हें सैनिक सुलभ कराए। भारतीय सैनिकों के ही कारण इंग्लैंड प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध जीत सका। क्योंकि भारत विश्व का सर्वाधिक वीर योद्धा समाज है और प्राचीनतम काल से ऐसा है।

14. भारतीय उद्योगों को थोड़े अवसर दिए तो गए, पर भेदभाव जारी रहा। उद्योग, व्यापार, कृषि सभी में भयंकर भेदभाव एवं अनीति बरती गई।

15. भारत से निरंतर भेंट- नजराने वसूले गए। भाड़े एवं चुंगी तथा विभिन्न टैक्सों की दरें विषम एवं मनमानी रखी गई। ब्रिटिश अफसरों एवं सैनिकों का वेतन और पेंशन भारतीय धन से दिया गया। चौतरफा लूट से भारतीय धन इंग्लैंड ले जाया गया।[43]

इन सब तथ्यों के समुचित विवरण के लिए देखें - प्रो. केडिया एवं ए. सिन्हा कृत - "रूट्स आव अंडर डेवलपमेंट।

•••

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. प्रो. केडिया एवं ए. सिन्हाः रूट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट, पूर्वोद्धृत, अध्याय 6,पृष्ठ 156.
2. वही, पृष्ठ 156-157.
3. वही, अध्याय 7,पृष्ठ 185.
4. वही, पृष्ठ 186-187.
5. प्रो. केडिया एवं ए. सिन्हाः पूर्वोद्धृत पृष्ठ 186.
6. एल. सी. ए. नोएल्सः दि इकॉनॉमिक डेवलपमेन्ट आव दि ब्रिटिश ओवरसीज एम्पाइअॅ, लंदन, 1911 ईस्वी।
7. वही, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 123-124; साथ ही, प्रो. केडियाः पूर्वोद्धृत अध्याय 7, पृष्ठ 190.
8. (क) जॉन कीएः दि ऑनरेबुल कम्पनीः ए हिस्ट्री आव दी इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी; मैकमिलन, न्यूयार्क, 1991 ईस्वी।

   (ख) जे. आर. बुकेनॉन इत्यादिः डेवलपमेंट आवॅ -केपिटलिस्ट इंटरप्राइज इन इंडिया, टेक्सास, 1980.
9. ए. सी. ए. नोएल्सः पूर्वोद्धृत।
10. प्रो. केडियाः पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 191-192.
11. वही। 12. वही।
13. वही,, पृष्ठ 193 -194.
14. वही।
15. वही ,पृष्ठ 194-195.
16. वही, पृष्ठ 196.
17. वही।
18. वही।
19. वही।
20. विलियम डिगबीः प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया, ए रेविलेशन फ्राम ऑफिशियल रिकाईस, पृष्ठ 33.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

21. वही पृष्ठ 216 -218.

22. जार्ज विन्गोट: ए फ्यू वर्ड्स आन अवर फाइनेंशल रिलेशन्स विद इंडिया, पृष्ठ 8.

23. वही।

24. वही।

25. वही।

26. प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 252-253.

27. वही।

28. वही, पृष्ठ 253-254.

29. वही।

30. वही, पृष्ठ 254-255.

31. वही, पृष्ठ 255- 256.

32. वही।

33. वही, पृष्ठ 256.

34. वही।

35. वही।

36 देखें, (क) दादाभाई नौरोजी: पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया।

(ख) रजनी पाम दत्त: आज का भारत (मैकमिलन, दिल्ली)

(ग) रमेशचन्द्र दत्त: भारत का आर्थिक इतिहास, दो खंडो में (प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली)

(घ) प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत अध्याय 5,6,7,एवं 8.

37. प्रो. केडिया: पूर्वोद्धृत पृ. 128-130.

38. वही, पृष्ठ 132-138.

39. वही, अध्याय 5.

40. वही, अध्याय 6.

41. वही, अध्याय 6 एवं 7.

42. एवं 43. वही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय- 7

विकास की यूरोपीय अवधारणा के पूर्वग्रहों को जानना जरूरी

महात्मा गांधी की दृष्टि से यदि आर्थिक विकास की प्रचलित अवधारणाओं एवं उनके अन्तर्निहित दर्शन पर विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि ये हिंसा की भूमि पर स्थित है। भूमि से तात्पर्य यहां जमीन से नहीं वरन मानसिक धरातल (मेण्टल लेवेल) से है। पतंजलि अपने योग दर्शन में साधना की चार भूमियों की चर्चा कतरे हैं। ऐसा वर्णन योग से संबंधित अन्य वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य आदि में भी आता है। जब तक साधना की भूमि पंच यमों और पंच नियमों से शुद्ध नहीं हो जाती तब तक इस मानस से निःसृत विचार कल्याण के अनुकूल नहीं बैठता- ऐसा विचार किया गया है। पंच यह हैं- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह- और पंच नियम हैं- शौच, संतोष तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।

सत्य की खोज गांधी जी के जीवन का मर्म है और यह खोज अहिंसा बिना असंभव है ऐसा उनका मानना हैं, भारतीय शास्त्रीय चिंतन के आधार पर। अहिंसा की चर्चा में वे अक्सर पतंजलि के पैंतीसवें सूत्र को उद्धृत करते हैं-

'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' और इसी के आधार पर कहते हैं कि यदि संसार में एक भी मनुष्य पूर्ण अहिंसक हो जाए तो वह समस्त हिंसा को शांत करने में सक्षम होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विकास की वैकल्पिक अवधारणा के लिए अति आवश्यक है कि वह जीवन को उसके संपूर्ण आयामों में संतुलित सम्यक् रूप से देख सकें। इस दर्शन का इस दृष्टि को आज के माहौल में कैसे उतारें, यह एक चुनौती है, भारतीय मेधा के लिए, प्रज्ञा के लिए। किन्तु इस चुनौती को न स्वीकारना भारत की नियमि को ही नकारना है। महात्मा गांधी ने बारंबार कहा है- 'भारत' ही केवल कर्मभूमि है, अन्य भोग भूमि है। भारत, यूरोप, जापान, चीन नहीं है। इसकी नियति विशिष्ट है। इसे सम्पूर्ण संसार का मार्गदर्शन करना है। इसमें क्षमता है। आत्म-शुद्धि की। आलसी की तरह लाचारी प्रकट करते हुए इसे ऐसा नहीं कहना चाहिए कि पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता।

अहिंसा की इस भूमि पर पहुंचने के लिए राग-द्वेष से मुक्ति आवश्यक शर्त है। इसीलिए गांधी सतत कहते हैं मनुष्य को मुमुक्षु (मोक्ष का इच्छुक- राग-द्वेष से मुक्ति का इच्छुक) होना चाहिए। मोक्ष का अर्थ संसार के दु:खों से मुक्ति पाकर स्वर्ग के सुखों का उपभोग नहीं है। स्वर्ग और नरक की ऐसी अवधारणा तो ईसाइयत एवं इस्लाम की देन है।

राग-द्वेष से मुक्ति एवं प्रज्ञा की प्राप्ति पंच यमों अऔर पंच नियमों से शुद्ध सत्य दृष्टि के लिए ही संभव है। ऐसी सत्य दृष्टि ही लोक कल्याण के लिए इच्छित ज्ञान दे पाने में सक्षम हो सकती है। 'सत्य प्रतिष्ठाया क्रियाफलाश्रयत्वम्' (पतंजलियोग सूत्र) ऐसा उद्घोष है हिन्दू चिंतन का जिसमें गांधी की अनन्य निष्ठा है।

मानव कल्याण के लिए ज्ञान का सृजन से तो महत दायित्व है। उनके अनुसार तो समाज सेवक, समाज सुधारक और सत्याग्रही भी वही हो सकता है जिसने इन नियमों का समुचित पालन किया हो।

लंदन की गोलमेज परिषद से लौटते हुए स्विट्जरलैंड की एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभा में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में गांधी जी ने कहा, 'इतना कहना काफी है कि जिन लोगों ने ये प्रयोग नहीं किए हैं, वे जानते हैं कि हर एक के अंतररात्मा' की आवाज सुनने का दावा करना उचित नहीं। लेकिन आजकल हर एक आदमी यम-नियम की कोई भी तालीम लिए बिना ही अपने अंत:करण की आवाज के अधिकार का दावा करता है। इसके फलस्वरूप संसार को इतना असत्य प्रदान किया जा रहा है कि वह हैरान है।' (यं.इ. 31-12-31)

महात्मा गांधी के विचारों पर बहुत चिंतन-मनन हुआ है। आजादी के बाद जब देश में आर्थिक विकास के लिए नियोजन की प्रक्रिया अपनाई गई तब 'गांधीयन अर्थशास्त्र' 'गांधी के आर्थिक विचार' स्वतंत्र रूप से अध्ययन के विषय बन गए। वस्तुत: ऐसी संज्ञाएं गांधी दृष्टि एवं अवधारणा पर ज्यादातर विचार प्रचलित अर्थशास्त्र की अवधारणों-अध्ययन प्रणालियों के तहत, पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किए गए। यहां यह विशेष ध्यान में रखने की बात ये है कि निर्धारित आर्थिक लक्ष्य भी यूरोपीय आर्थिक चिंतन एवं यूरोपीय अनुभवों पर आधारित थे। (साइंस रिपोर्ट, चैप्टर 1 खंड-2)

चूंकि गांधी विचार का अध्ययन यूरोपीय शोध विद्या द्वारा यूरोपीय मुहावरों, शब्दावली द्वारा हो रहा ता, अत: गांधी जी के मानस में निहित सैद्धांतिक संरचना पूरी तरह छूट ही गई। ऐसा होना ही स्वाभाविक था। अध्येताओं के मानस ने जिन सैद्धांतिक संरचनाओं को आत्मसात कर रखा था, जिस विचार प्रणाली में सोचने की उनकी आदत बन चुकी थी, विश्वविद्यालय शिक्षा का अशिक्षा के कारण जिस न्यूटोनियन वैज्ञानिकता (न्यू साइंस के अनुसार अवैज्ञानिकता एवं असत्यता) के वे कायल हो चुके थे उसका गांधीजी के मानस से कोई ताल्लुक नहीं था। नहीं, ताल्लुक तो था मगर विशिष्ट अर्थ में। गांधी जी ने इसी सबसे खिलाफ बगावत की थी। 'हिंद स्वराज' स्पष्ट कता है कि उन्हें अंग्रेजों से परहेज नहीं था। आधुनिक सभ्यता जिन दृष्टियों, विचारों पर आधारित थी वह सब गांधीजी के अनुसार 'शैतानी' (इविल) था। उससे मानव का भला नहीं होना था। अनिष्ट ही होना था हो चुका था। 'हिन्द स्वराज' में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रांतिकारियों से बातचीत के दौरान गांधीजी विस्तार से समझाते हैं कि वास्तव में ये 'सुधार' (माडर्न कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन) सुधार नहीं 'बिगाड़ा' है। उनकी दृष्टि में रेलवे तार, वकीली का पेशा तक भी भयंकर नाशकारी है। उन्हें आधुनिक सभ्यता एवं विकास में एक भी काम की बात नहीं दिखती।

अन्य स्थानों पर भी इस विषय में उनका चिंतन उनकी इसी दृष्टि से उजागर करता है। अहिंसा के उनके चिंतन को यदि (1) उनकी व्यापकता में देखें (2) थोड़ा उसका शास्त्रीय विवेचन करें (3) तथा न्यू साइंस की अवधारणाओं (जो सृष्टि, उसके अर्थ, कारण, प्रयोजन, स्वभाव के विषय में है) के अन्तर्गत देखें तो एक संगतता दिखती है, एक दृष्टि बनती है 'आज को देखने की। 'आज' उनकी समस्याएं उपलब्धियां, क्षमताएं सबके साथ। इस 'आज' के आर्थिक पहलू या मात्र आर्थिक विकास की अवधारणा, दर्शन, प्रक्रिया, मैकेनिज्म पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि ये सभी गंभीर रूप से हिंसक हैं- प्रकृति के प्रति, मनुष्य के प्रति, मानवेतर जीव जंतु के प्रति या कहें कि समस्त व्यक्त अव्यक्त सृष्टि के प्रति। इन सब के व्याप्त हिंसा को देख पाने की क्षमता, सामर्थ्य, महात्मा गांधी में थी। प्रचलित सामाजिक विज्ञान की शोध विद्या इस व्याप्त हिंसा का विश्लेषण करने में, इसे देख पाने में, समझ पाने में नितांत असमर्थ है क्योंकि यह उस द्वेष भूमि, भय भूमि, अज्ञान भूमि, मोह भूमि की उपज है, जिसे पंच यमों एवं पंच नियमों के निरंतर पालन से शुद्ध किया जाता है।

अध्ययन के संसार से भारतीय दृष्टि या कहें गैर यूरोपीय, गैर पाश्चात्य या गैर आधुनिक परिप्रेक्ष्य की अनुपस्थिति के कारण ही इतना बड़ा दोष अनदेखा रह सका। साक्षात् अविद्या जो बंधन की कारक है, विद्या के नाम से प्रचलित रही। अत: यह नितांत आवश्यक है कि भारतीय दृष्टि से विकास के दर्शन को, अवधारण को सिद्धांतों को समझने देखने की एक ईमानदार कोशिश हो। यदि 'हिन्द स्वराज' में स्पष्ट गांधी दृष्टि का हम प्रयोग करें तो शायद यह कार्य सरल होगा। 1909 में जब हिंद स्वराज लिखा गया तब विकास अर्थशास्त्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम की कोई बात नहीं थी। यह तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद नव स्वतंत्र एशियाई अफ्रीकी देशों को साम्यवाद से दूर रखने के लिए अर्थशास्त्र की स्वतंत्र शाखा के रूप में आई। तदापि औद्योगिक सभ्यता पर व्यक्त गांधी जी के विचार हमें विकास दर्शन की समालोचना में बहुत सहायता करते हैं। थोड़ा सा भी ध्यान देने से सहज ही दिख पड़ता है कि-

(1) यह यूरोप (विशेषत: इंग्लैंड) की भूमि की उपज है।

(2) सदैव से वहां ऐसी समझ नहीं थी।

(3) इसमें समग्रता का नितांत अभाव है।

(4) लोभ, द्वेष, हिंसा, मोह इसके प्रेरक तत्व हैं।

(5) मात्र मानवी भौतिक सुख इसका प्रयोजन है।

(6) अत : इसकी स्वभाविक परिणति शोषण है।

कोई भी सिद्धांत शून्य में नहीं पैदा होता। उसका एक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश होता है। इस संदर्भ में अनेकानेक प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, जिनका उत्तर देने से अर्थशास्त्री बचते रहे हैं। यह कहना समीचीन होगा कि इसे विकास अर्थशास्त्र की विषय वस्तु ही नहीं बनने दिया गया है।

आर्थिक विकास की अवधारणा (सिद्धांत), दर्शन आदि पर पुनर्विचार के लिए यह अति आवश्यक है कि सोशल साइंसेज के यूरोकेन्द्रित और एंथोपोसेट्रिक बायस (नरकेन्द्रित पूर्वाग्रहों) पर गंभीरता से ध्यान दिया जाए। किसी भी बहस में यह मुद्दा सामान्यत: उपेक्षित ही रहता है और ज्यादातर ध्यान 'विकास अर्थशास्त्र' के प्रचलित अवधारणाओं, सिद्धांतों को सुधारकर स्वीकार करने तक ही सीमित हो जाता है।

वस्तुत: ऐसी सभी प्रयास अर्थहीन हैं क्योंकि जब तक विकास प्रक्रियाओं के अंतर्निहित तर्कों को पूरी तरह नहीं समझा जाएगा, तब तक वर्तमान अंतरराष्ट्रीय अर्थतंत्र (इंचटरनेशनल इकोनोमिक-आर्डर) में निहित शोषण प्रक्रिया बंद नहीं होगी। प्रचलित आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विकसित देशों को दुनिया के संसाधनों के इकतरफा हस्तांतरण की प्रक्रिया है। यह तथ्य सिद्धांतविदों में बहस का केंद्रीय मुद्दा बनना चाहिए- इसके ऐतिहासिक एवं वर्तमान स्वरूप पर गंभीर चिंतन होना चाहिए, अन्यथा कोई गंभीर पुनर्विचार असंभवहै।

आधुनिक आर्थिक विकास मानव जाति के इतिहास की एक अत्यंत असाधारण घटना है। असाधारण इस अर्थ में कि अभी तक (यानी इस आर्थिक विकास प्रक्रिया के उदय तक) किसी भी देश की उन्नति वहां के आंतरिक संसाधनों पर निर्भर करती थी। मोटे शब्दों में आर्थिक समृद्धि का स्तर और विकास का स्वरूप 'स्वदेशी' (इंडोजेनस) था। (विकास शब्द यद्यपि अत्यंत त्रुटिपूर्ण एवं भ्रामक है तदपि सुविधा के लिए हम इसका प्रयोग कर रहे हैं।) किन्तु आधुनिक आर्थिक विकास इसप्रक्रिया से पूरी तरह भिन्न है। इसकी

इस आर्थिक विकास प्रक्रिया/सभ्यता की विशिष्टता है 'स्व' से बाहर 'पर' के आर्थिक संसाधनों का प्रयोग और वह भी मात्र 'स्व' की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वरन् 'पर' पर आधिपत्य स्थापित करने के शस्त्र के रूप में। यहां ये सवाल अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि (1) क्यों ऐसी विकास प्रक्रिया यूरोप में ही जन्मी एवं वहीं विकसित हुई? (2) क्यों अन्य देशों/महाद्वीपों में इसका स्वाभाविक प्रस्फुरणा नहीं हुआ। (3) क्यों यह अन्य देशों में साम्राज्यवाद/उपनिवेशवाद के संग-संग गई। (4) क्यों आज संयुक्तराष्ट्र अमरीका इस सभ्यता का नायक है जहां के मूल बाशिंदों के पूरी तरह जाति-नाश (जेनोसाइड) के बाद वहां यूरोपीय मूल के लोग बसे? इन दोनों तथ्यों का अंतर्संबंध हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विशिष्टता है कि मानव जाति के इतिहास में पहली बार (पिछले 250-300 सालों में) कुछयूरोपीय देशों का आर्थिक विकास पूरी तरह निर्भर हुआ अपने आंतरिक संसाधनों पर नहीं वरन् बाह्य संसाधनों के शोषण पर, चाहे ये संसाधन मानवीय थे, पूंजीगत याप्राकृतिक। संपूर्ण 'विकास अर्थशास्त्र' इस अत्यंत महत्वपूर्ण, तथ्य या कहें निर्णायक तथ्य को सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं के दायरे से बाहर रखता है। प्रो. डडले सीपर्स ने यद्यपि बहुत ही प्रभावी ढंग से यह बताने का प्रयास किया कि आधुनिक काल में हुआ यूरोप का आर्थिक विकास किसी भी प्रकार से एक साधारण या सामान्यीकृत (जनरलाइज) की जा सकने वाली घटना नहीं है, जिसके आधार पर अन्य देशों के विकास के मॉडल खड़े किए जा सकें।

कुछ प्रश्न और भी हैं जिनका जवाब दिए बिना विकास-दर्शन पर समीचीन पुनर्विचार असंगत है।

गैर यूरोपीय सभ्यताओं ने उपभोग को ज्ञानपूर्वक मर्यादित रखा

यह तो एक असामान्य एवं विचित्र घटना (पीक्यूलियर केस) थी किन्तु उन्होंने भी इसतथ्य को पूरी तरह नजरअंदाज किया कि इस आर्थिक विकास प्रक्रिया/सभ्यता की विशिष्टता है 'स्व' से बाहर 'पर' के आर्थिक संसाधनों का प्रयोग और वह भी मात्र 'स्व' की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वरन् 'पर' पर आधिपत्य स्थापित करने के शस्त्र के रूप में। यहां ये सवाल अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि (1) क्यों ऐसी विकास प्रक्रिया यूरोप में ही जन्मी एवं वहीं विकसित हुई? (2) क्यों अन्य देशों/महाद्वीपों में इसका स्वबाविक प्रस्फुरणा नहीं हुआ? (3) क्यों यह अन्य देशों में साम्राज्यवाद/उपनिवेशवाद के संग-संग गई? (4) क्यों आज संयुक्तराष्ट्र अमरीका इस सभ्यता का नायक है जहां के मूल बाशिंदों के पूरी तरह जाति-नाश (जेनोसाइड) के बाद वहां यूरोपीय मूल के लोग बसे? इन दोनों तथ्यों का अंतर्संबंध है? (5) क्यों यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सभ्यता/ विकास प्रक्रिया सर्वप्रथम मध्य 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड में ही परिलक्षित होती है? (6) न्यूटोनियम विज्ञान और तकनीक जिससे यह विकास घनिष्ठ रूप से जुटा है, या कहें उसी पर आधारित है,वह न्यूटोनियन विज्ञान किस ब्रह्माण्ड-विज्ञान (कास्मोलॉजी) से जन्मा है? (7) किस दर्शन में उसकी जड़ें हैं? (8) पर्यावरण अर्थशास्त्र (जो विकास अर्थशास्त्र प्रभावों के कारण जन्मा) में चल रही बहस का यह कथन कि आधुनिक विज्ञान की जड़ें ईसाइयत में हैं, कहां तक सत्य है।

'हाईटमैंस बरडेन' की अवधारणा जो अनेकानेक राष्ट्रों की गुलामी को उचित ठहराने में सहायक थी, का उत्स ईसाई धर्म के उस दावे में अनेक विद्वान पाते हैं जिसके अनुसार ईसाई लोग गॉड के 'चुने हुए विशिष्ट जन' और गॉड के साथ उनसा इकरारनामा (कान्वेनेट) है कि ये गॉड की, मात्र गॉड की पूजा में (क्योंकि ईश्वर, भगवान या आम देवी-देवता झूठे हैं, बेकार हैं) अन्य मानवों को दीक्षित करेंगे तथा गॉड अपने 'चुने हुए लोगों' (चूजेन पीपुल) को विश्व का साम्राज्य देंगे। ये ही धरती के निर्द्वंद्व भोग के अधिकारी हैं। शेष मानव प्रकृति, (जड़-चेतन) पशु-पक्षी तो सब इनकी भोग सामग्री है। अनेकानेक विद्वानों, विशेषज्ञों एवं शोधकर्ताओं के अनुसार ईसाइयत का धार्मिक एवं अतीद्रिय भावबोध ही भौतिकवादी मूल्यों, भोगवादी जीवनशैली एवं दानवी औद्योगिक सभ्यता का स्रोत हैं। प्रो. लीनह्वाइट (जो कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में इतिहास के प्रोफेसर हैं, एवं मध्ययुगीन यूरोपीय सामाजिक इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान हैं तथा स्वयं एक निष्ठावान ईसाई हैं) के अनुसांर ईसाई मत दुनिया में सबसे ज्यादा मनुष्यकेन्द्रित (एंतोपोसेण्ट्रिक) मजहब है। उन्होंने बताया कि मानव स्वभाव एवं मानव नियति से संबंधित धारणाएं बहुत गहन रूप से पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। ईसाई मत के अनुसार प्रकृति की उपस्थिति मात्र मानवीय प्रयोजन के लिए है, उसकी अपनी कोई अस्मिता नहीं है। ईसाइयत में देवत्व की अवधारणा एवं परम्परा दोनोंही मानव केंद्रित व्यवस्था से भरी पड़ी है, जो मानवेतर जीव, वनस्पति, जड़-चेतन प्रकृति किसी को भी किसी भी प्रकार की तात्विक, अंतर्भुत अस्मिता नहीं देती। इस धारणा के अनुसार मानव संपूर्ण सृष्टि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नीढम की पुस्तक जो चीन के विज्ञान की उपलब्धियों के बारे में है, धर्मपाल का भारत के विज्ञान के बारे में ब्रिटिश अभिलेखागारों से ब्रिटिश प्रमाणों के आधार पर किया गया शोधकार्य एवं उसी प्रकार के अन्य कई शोध यह बताते हैं कि यूरोप के पास जो ज्ञान मध्य 18वीं शताब्दी में था (यानी न्यूटन के करीब 200 साल बाद) उससे उच्चतर ज्ञान उन्हीं विषयों में अन्य समाजों एवं सभ्यताओं में था तथा वह ज्ञान परम्परा अत्यंत प्राचीन काल से अक्षुण, निरंतर चली आ रही थी। तब भी उन समाजों ने इसका प्रयोग अमर्यादित भौतिक उपभोक के लिए नहीं किया क्योंकि सृष्टि, प्रकृति, मानव, मानवेतर प्राणियों के अंतरंग सहसंबंध के विषय का ज्ञान उन्हें ऐसा करने से वर्जित करता था, उसकी अव्यावहारिकता के विषय में स्पष्ट निर्देश देता था।

के शीर्ष पर है। प्रकृति इसकी दासी है, जननी नहीं।

आधुनिक आर्थिक विकास की अवधारणा इन्हीं ईसाई मूल्यों एवं आदर्शों में 'स्टेड' है। ईसाई विश्व दृष्टि को समझने के लिए आवश्यक है कि बाइबिल (विशेषत: ओल्ड टेस्टामेंट) में वर्णित सांस्कृतिक एवं मानवशास्‍ॅत्रीय विकास के तह तक जाया जाए, क्योंकि ईसाइयत वस्तुत: यहूदी (जूडाइक) धार्मिक सोद्‌देश्यवाद एवं प्रयोजनवाद की उपज है। तभी इसे जूडाइक-क्रिश्चियन परम्परा कहा जाता है।

विकास शब्द अंग्रेजी की दो अवधारणों 'ग्रोथ' और 'डेवलपमेंट' के लिए सामान्यत: समान रूप से व्यवहृत होता है। संवृद्धि (ग्रोथ) और विकास (डेवलपमेंट) ये दोनों ही अवधारणाएं पश्चिम में प्रचलित प्रोग्रेस की इस मान्य पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार धरती पर मानवजीवन को ग्राफ पेपर पर एक उर्ध्वांकार तिरछी रेखा के रूप में दिकाया जा सकता है।

डार्विन का 'इवोल्यूशन' और 'नेचुरल सेलेक्शन' का सिद्धांत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उपरोक्त विचार को आधार प्रदान करता है। विज्ञान के क्षेत्र में किसी सिद्धांत की प्रामाणिकता के लिए जितने साक्ष्य चाहिए उतने डार्विन के इस सिद्धांत के पक्ष उपलब्ध नहीं हैं एवं इसके स्थान पर 'डीएनए' सिद्धांत तथा 'मोरफिक रेजोनेंस' का सिद्धांत वैज्ञानिक जगत में प्रतिष्छित हो चुके हैं। तदापि इवोल्यूशन और नेचुरल सेलेक्शन का यह सिद्धांत पश्चिम के दर्शन विशेषत: सामाजिक विज्ञानों के दर्शन को तथा राजनीतिक को अध्यधित प्रभावित करता है। जीव विज्ञान के क्षेत्र में विकसित यह विचार ही सामाजिक विज्ञानों (अर्थशास्त्र सहित) में प्रगति की अवधारणा का (त्रुटिपूर्ण, भ्रामक) आधार बना हुआ है। इसके अनुसार टाइम-स्केल पर निरंतर विकास, प्रगति संभव है चाहे वह आर्थिक जगत हो, संस्कृति हो, मानव मस्तिष्क या मानवीय कोई अंग हो। यह तो सबको ज्ञात ही है कि पिछले 400 सालों में यूरोप में विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में अनेकानेक प्रगति (प्रगति के स्थान पर अब तो हलचल ही कहना ठीक होगा- यदि यह वास्तविक प्रगति होती तो प्रकृति का ऐसा भीषण नाश भला होता।) हुई। तत्कालीन विज्ञान के स्थान पर धर्म की मान्यता घटी, क्योंकि तब ईसायत वहां अत्याचार और आतंक का स्रोत ज्यादा था, शांति, ज्ञान एवं आनंद का स्रोत कम। तत्कालीन यूरोप में विज्ञान के प्रति गहन आकर्ष को तभी समझा जा सकता है जब वहां आर्मिक असहिष्णुता एवं निरंकुशता को ठीक से जाना जाए।

> *काल (टाइम) का भिन्न भाव बोध एक भिन्न प्रकार के विकास को इंगित करता एवं तद्नुसार ही जीवन को उसके भिन्न आयामों (जिसे आज की प्रचलित भाषा में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कहते हैं) में संगठित एवं संचालित करने का सुझाव न निर्देश देता था।*

यही 400 साल मोटा-मोटी यूरोप के (इन देशों के जो अटलांटिक के तट पर स्थित थे- स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैंड, इंग्लैंड, फ्रांस, (जर्मनी) संसार में फैलने का भी युग रहा है। इसे उपनिशवाद का भी युग कहा जाता है। उसी काल में उन्होंने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरती के अन्यान्य भू भागों पर अपना वर्चस्व कायम किया। वर्चस्व कायम करने के तरीके यद्यपि इतने घृषित, हिंसक एवं हीन रहे हैं कि अब ये भी बहुत शर्म से ही इसकी चर्चा कर पाते हैं। इस वर्चस्व के कारण दुनिया के तीन-चौथाई संसाधन प्राकृतिक मानवीय एवं पूंजीगत, इन्हें मनमाने इस्तेमाल के लिए उपलब्ध हुए और इन संसाधनों की कोई कीमत भी इन्हें नहीं देनी पड़ी। अर्थसास्ॅत्र में इसे ही 'ड्रेन थ्योरी' के नाम से बताया जाता है और भी कई नाम हैं, लेकिन थोड़े मेट्रोपोलिस सेटेलाइट, थ्योरी ऑफ कुमुलेटिव काजेशन इत्यादि। इंड्रे गुंडरुफ्रैंक इसे डेवलपमेंट ऑफ अंडर-डेवलपमेंट का सटीक नाम देते हैं।

यूरोप में स्थित संसार के 6 प्रतिशत जनसंख्या के लिए संसार की अकूत संपदा (एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और दोनों अमरीकी महाद्वीपों) उपलब्ध हो जाने के कारण टाइम स्केल पर निरंतर 'प्रगति' तो स्वाभाविक ही थी। यह बात और है कि सोशल साइंस में वह सारा श्रेय दियागया विज्ञान और तकनीकी को। पिछले 60 सालों में विभिन्न क्षेत्रों में हुए शोधों से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि प्रचलित विज्ञान एवं तकनीकी लागत-कुशल (कास्ट एफिसिएंट) श्रम कुशल (लेबर एफिसिएंट) तीनों ही नहीं है। यह भयंकर रूप से संसाधनों का अपव्यय करती है और इसी कारण 200 सालों में ही इसने एक-दो देशों् की नहीं, एकाध महाद्वीप की नहीं वरन् सम्पूर्ण धरती की संपदा को ही इस्तेमाल कर डाला, सो भी समस्त मानव जाति के लिए नहीं, वरन् विकसित देशों में 15 प्रतिशत जनसंख्या के लिए ही।

धरती की अकूत संपदा के अंधाधुंध प्रयोग से इस कल्पना या अवधारणा को पालना सहज हो सका, यूरोपियन मानस के लिए कि प्रगति ऊपर की ओर जाने वाली एक अनंत रेखा है। जिस विशिष्ट प्रकार का शोशल साइंस इस उपनिवेशवाद के युग में जन्मा और बड़ा हुआ, जिसका तथ्यों से कोई ताल्लुक नहीं था, जो भ्रांतिपूर्ण मान्यताओं पर आधारित था और जो निगमन प्रणाली (डीडक्टिव मेथड) से निष्कर्ष निकालता था, उसने इस भ्रम को पुष्ट करने और फैलाने में बारी मदद की।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किन्तु यह भ्रम अब टूट चुका है। पिछले 20-25 सालों के पाश्चात्य प्रकाशनों पर यदि नजर जालें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वहां प प्रचलित सामाजिक विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि इसभ्रम को अब पालने की स्थिति में नहीं रह चुके हैं। हां, भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में जहां उनके अपने ज्ञान-विज्ञान, विचार, शिक्षा आदि की प्रणाली गुलामी के दौर में खंडित कर दी गई थी, वहां जरूर इन त्रुटिपूर्ण भ्रामक अवधारणों को प्रचारित करने का काम सरकारी शिक्षा तंत्र कर रहा है। यहां के पाठ्यक्रमों में अभी भी अधुनातन शोधों का स्थान नहीं है।

> *विकास की वैकल्पिक अवधारणा के लिए अतिआवश्यक है कि वह जीवन को उसके संपूर्ण आयामों में संतुलित सम्यक् रूप से देख सकें। इस दर्शन को, इस दृष्टि को आज के माहौल में कैसे उतारें, यह एक चुनौती है, भारतीय मेधा के लिए, प्रज्ञा के लिए।*

इस पृष्ठभूमि में विकास की अवधारणा, सिद्धांत दर्शन पर पुनर्विचार के लिए आवश्यक है कि निम्न तथ्यों पर समुचित ध्यान दिया जाए-

(1) अपने संपूर्ण इतिहास में भारत और उनके जैसे अनेकानेक अन्य अशिाई, अफ्रीकी और अमरीकन देशों ने इस प्रकार का अऔपनिवेशिक शोषण कभी किसी का नहीं किया।

(2) इसके बावजूद भारत, चीन, जापान ईरान, इराक आदि अनेकानेक देशों ने समृद्धि के उच्च स्तर को प्राप्त किया। उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों का आधार उच्च भौमिक उन्नति थी, मात्र आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। यदि ऐसा न होता तो कैसे बटोर पाते वे अकूत संपदा जिसकी तलाश में निकला था यूरोप 400 साल पहले।

(3) उन देशों में भी जहां प्रकृति की अुदारता के कारण भौतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
समृद्धि का स्तर ऊंचा नहीं था (मसलन तिब्बत, मंगोलिया आदि) जीवन अपेक्षाकृत कठिन एवं संघर्षपूर्ण था- इन देशों ने भी अपनी समृद्धि के लिए न तो दूसरे समृद्ध समाजों को गुलाम बनाया और न ही प्रकृति के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण रखा।

(4) कुछ ऐसे देश भी थे, जहां प्रकृति अत्यंत उदार थी, भौतिक सुख समृद्धि का उच्चतम स्तर संभव था तदापि उन देशों ने सहज-सरल जीवन ही चुना, मसलन उत्तरी अमरीका महाद्वीप के अनेकानेक देश। वैसे इन देशों ने न तो प्रकृति का शोषण किया न ही अन्य समाजों को अपनी सेवा के लिए गुलाम बनाया।

(5) ये सभी समाज आर्थिक जीवन तथा विकास के प्रति एकदम भिन्न दृष्टिकोण रखते थे। इनमें आपस में से बहुत साम्यता थी किन्तु प्रचलित यूरोपीय दृष्टिकोण से मूलभूत भिन्नता।

विश्व दृष्टि (वर्ल्ड व्यू) और ज्ञान (पैराडाइज) को लेकर जो एकचर्चा पश्चिम के विज्ञान जगत विशेषत: क्वांटम फिजिक्स के क्षेत्र में चली उससे उत्पन्न साहित्य में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है- फ्रिट्जाफ कापरा की 'ताओ ऑफ फिजिक्स'। उसी परम्परा में लिखी गई अनेकानेक पुस्तकों ने यह बात बहुत साफ ढंग से साने रखी है कि पश्चिम का सम्पूर्ण आर्थिक विकास औद्योगिक विकास, विज्ञान एवं तकनीकी विकास किस प्रकार की आस्थाओं (एजंप्शंस, बीलीफ्स) के कारण हो सका (ध्यान दीजिएगा आस्थाओं, तथ्यों नहीं), ये आस्थाएं अनेकानेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों से संबंधित हैं, जिनका ऊपर से यद्यपि छिचले तौर पर अर्थजगत के साथ आपसी संबंध समझनहीं आता किन्तु जिनमें अटूट कारण कार्य संबंध (कागज रिलेशनशिप) है। ये महत्वपूर्ण आस्थाएं निम्न हैं-

(1) प्रकृति के स्वरूप के विषय में आस्था (ज्ञान नहीं)।

(2) मानव एवं प्रकृति के संबंध में आस्था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(3) मानव एवं मानवेतर जीवों के संबंध में आस्था।

(4) सर्वोच्च शक्तिमान ईश्वर के विषय में आस्था।

(5) सृष्टि के प्रयोजन के विषय में आस्था।

(6) इसके उद्भव के कारणों-तरीकों के विषय में आस्था।

(7) ब्रह्मांड में पृथ्वी एवं अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों के विषय में आस्था।

विज्ञान (विशेषत: क्वांटम भौतिकी) दर्शन, धर्म, खगोल, पुरातत्व, नृविज्ञान इत्यादि क्षेत्रों में हुए अध्ययन यह बताते हैं कि वर्तमान आर्थिक-वैज्ञानिक तकनीकी विकास आस्थाओं के जिस समूह की देन है, वह मानवीय इतिहास में अत्यंत विलक्षण, विचित्र एवं अोखी है। ऐसी आस्थाएं और किसी भी मानवीय समूह, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन ने नहीं स्वीकारी हैं सिवाय समेटि/बाइबिलीकल मजहबों के, जिनमें मात्र तीन आते हैं: यहूदीयत, ईसाइयत और इसलाम। ईसाइयत पिछले 2,000 सालों में संसार में आई अऔर इसलाम पिछले 1,400 सालों में। यहूदियत यद्यपि बहुत पुरानी है किन्तु तब यानी ईसाइयत के पहले एक अत्यंत छोटे वर्ग द्वारा ही उसकी मान्यताएं स्वीकार की जाती थीं।

संपूर्ण संसार ही, करीब अनंतकाल से ही इससे भिन्न प्रकार की आस्थाओं को स्वीकारता था, उचित समझता था और उन आस्थाओं के तहत अपने जीवन (व्यक्तिगत एवं सामूहिक) को संगठित एवं संचालित करता था। इन आस्थाओं में प्रकृति, सृष्टि, ईश्वर मानव, पशु-पक्षी, जड़, चेतन सब ही भिन्न रूप में उपस्थित थे। जीवन-मत्यु, उचित-अनुचित, करणीय-अकरणीय भी तदनुसार ही निश्चित एवं संचालित थे। भारत, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, अफ्रीका एवं अमरीकी महाद्वीप के जनसमूह (प्रमाण तो यहां तक मिलते हैं कि प्री-क्रिश्चियन यूरोप एवं प्री-इसलामिक अरब भी) अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में तदनुसार ही संचालित थे। प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण स्नेह संबंध को जीवन में सुख का कारण समझा जाता था (जहां प्रकृति सृष्टि के अर्थ में है)। सुख की तलाश में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभाव, गरीबी और भूख को दूर करने के लिए प्रकृति का उत्पीड़न या दोहन वांछित नहीं था। शायद यह संभव नहीं था क्योंकि उसके शोषण में स्वयं का शोषण और उत्पीड़न निश्चित है, ऐसा ज्ञान तब था और यही कारण था कि तत्कालीन समाजों ने उपलब्ध ज्ञान और विज्ञान का प्रयोग उन विशिष्ट प्रयोजनों के लिए नहीं किया, जिन प्रयोजनों के लिए पिछले 200 सालों में यूरोपीय समाजों में किया गया। नीढम की पुस्तक जो चीन के विज्ञान की उपलब्धियों के बारे में है, धर्मपाल का भारत के विज्ञान के बारे में ब्रिटिश अभिलेखागारों से ब्रिटिश प्रमाणों के आधार पर किया गया शोधकार्य एवं उसी प्रकार के अन्य कई शोध यह बताते हैं कि यूरोप के पास जो ज्ञान मध्य 18वीं शताब्दी में था (यानी न्यूटन के करीब 200 साल बाद) उससे उच्चतर ज्ञान उन्हीं विषयों में अन्य समाजों एवं सभ्यताओं में था तथा वह ज्ञान परम्परा अत्यंत प्राचीन काल से अक्षुण, निरंतर चली आ रही थी। तब भी उन समाजों ने इसका प्रयोग अमर्यादित भौतिक उपभोग के लिए नहं किया क्योंकि सृष्टि, प्रकृति, मानव, मानवेतर प्राणियों के अंतरंग सहसंबंध के विषय का ज्ञान उन्हें ऐसा करने से वर्जित करता था, उसकी अव्यावहारिकता के विषय में स्पष्ट निर्देश देता था।

काल (टाइम) का भिन्न भाव बोध एक भिन्न प्रकार के विकास कोइंगित करता एवं तदनुसार ही जीवन को उसके भिन्न आयामों (जिसे आज की प्रचलित भाषा में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कहते हैं) में संगठित एवं संचालित करने का सुझाव व निर्देश देता था। ऐहिक जीवन के संगठन की, संचालन की, एक ऐसी विद्या को दिग्दर्शित करता था, जो क्षण-भंगुर न हो, जो 100-150 साल में मानव अस्तित्व के ही विनाश की आशंका न खड़ी कर दे, जो मानवजीवन के मूल अवयवों जलवायु, आदि को इतना प्रदूषित न कर दे कि वे जीवन के स्थान पर रोक का कारण बनें एवं मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति, जड़-चेतन के शोषण एवं उत्पीड़न के बिना थोड़े लोगों के लिए भी अधिक विकास की दर को बनाए रखना संभव हो सके। यही तब अव्यावहारिक था क्योंकि देखने की दृष्टि भिन्न थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विकास की वैकल्पिक अवधारणा के लिए अति आवश्यक है कि वह जीवन को उसके संपूर्ण आयामों में संतुलित सम्यक् रूप से देख सकें। इस दर्शन को, इस दृष्टिको आज के माहौल में कैसे उतारें, यह एक चुनौती है, भारतीय मेधा के लिए, प्रज्ञा के लिए। किन्तु इस चुनौती को न स्वीकारना भारत की नियति को ही नकारना है। महात्मा गांधी ने बारंबार कहा है- 'भारत ही केवल कर्मभूमि है, अन्य भोग भूमि है। भारत, यूरोप, जापान, चीन नहीं है। इसकी नियति विशिष्ट है। इसे संपूर्ण संसार का मार्गदर्शन करना है। इसमें क्षमता है। आत्म- शुद्धि की। आलसी की तरह लाचरी प्रकट करते हुए इसे ऐसा नहीं कहना चाहिए कि पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता। अपनी और दुनिया की भलाई केलिए इस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली उसे बनना ही होगा। यह तपश्चर्या की अमर भूमि है। इसे अपनी नियति को स्वीकारना होगा। भारत के सामने इस समय अपने अस्तित्व को खोने का खतरा है और यह संभव नहीं है कि अपनी आत्मा को खोकर वह जीवित रह सके। इसमें अपना शुद्ध स्वरूप प्रकट करने की सहज क्षमता अभी भीहै। भारत ने आत्म-शुद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक जैसे प्रयत्न किया है उसका दुनिया में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। भारत की आत्मा की मृत्यु संपूर्ण विश्व की मृत्यु है।

•••

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय- 8

समृद्धि, सम्पत्ति और सुख भारतीय दृष्टि

समृद्धि, सम्पत्ति और सुख अर्थशास्त्रीय चिन्तन के मूल लक्ष्य हैं। समृद्धि, सम्पत्ति और सुख संबंधी दृष्टि ही किसी भी अर्थशास्त्र की मूल प्रकृति को रचती है। भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थशास्त्र को जन्म देती हैं।

समृद्धि क्या है? समृद्धि का शास्त्रीय अर्थ है पूर्णता। जो चीजें व्यक्ति, परिवार, समूह, समाज या राष्ट्र की अपूर्णता को दूर करें, उन वस्तुओं को प्राप्त करना, उन्हें अर्जित कर उन पर स्वामित्व पाना ही समृद्ध होना है। इस प्रकार सम्पत्ति शाली या सम्पत्तिवान व्यक्ति को ही समृद्धि कहा जाता है। सम्पत्ति क्या है? **किसी कर्म को सम्पादित करने के लिए अपेक्षित साधन ही सम्पत्ति हैं।**

अत: समृद्धि की धारणा इस आधार पर टिकी है कि कोई व्यक्ति, परिवार, समूह, समाज या राष्ट्र पूर्णता और अपूर्णता की क्या धारणा रखता है। अपूर्णता से मुक्ति और पूर्णता की प्राप्ति की समृद्धि है। इसी प्रकार, सम्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा इस दृष्टि, आस्था या मान्यता पर निर्भर है कि कोई व्यक्ति परिवार, समूह, समाज या राष्ट्र किन कर्मों के सम्पादन को श्रेयस्कर मानता है, उचित और वांछित मानता है, धर्ममय एवं श्रेष्ठ मानता है या फिर किन कर्मों को वह सुखकारक या आनन्दप्रद मानता है। इस तरह **पूर्णता और सुख की,**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समृद्धि और आनन्द की धारणा ही सम्पत्ति सम्बन्धी धारणाओं का आधार है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र जीवन-दृष्टि, मूल्य-दृष्टि, आदर्श-दृष्टि एवं विश्वदृष्टि का अभिन्न अंग है। अत: भिन्न-भिन्न विश्व-दृष्टियों एवं भिन्न-भिन्न सांस्कृतियों के अर्थशास्त्र होंगे। कोई एक सार्वभौम संस्कृति विश्व में आज तक नहीं रही है, न ही ऐसा होना वांछित है।

जिसे आधुनिक यूरो- अमेरिकी पदावली में 'कल्चर' (संस्कृति) कहा जाता है, उसके लिए भारतीय शास्त्रीय पद है- 'धर्म'। भिन्न-भिन्न कुलों, परिवारों, समूहों, जनपदों एवं राष्ट्रों के भिन्न-भिन्न धर्म होते हैं। परन्तु वे सब 'सामान्य धर्म' के अंतर्गत हैं। 'सामान्य धर्म' सार्वभौम हैं, सार्ववर्णिक हैं। महाभारत (राजधर्म-अनुशासन पर्व, 60.8) के अनुसार 'अक्रोध, सत्यवचन, धन का न्यायपूर्ण संविभाग, क्षमाशीलता, स्व-पत्नी से संतति उत्पन्न करना, आंतरिक एवं बाहरी पवित्रता, प्राणियों के प्रति द्रोह का अभाव, मन की ऋजुता तथा सेवक का भरण-पोषण- ये नौ धर्म सार्ववर्णिक सार्वभौम हैं। मनुस्मृति (6.62) के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रय-संयम-ये सामाजिक धर्म है, जो सभी के द्वारा पालनीय हैं।'

अन्य संस्कृतियों में धर्म अर्थात् संस्कृति की मान्यताएं भिन्न-भिन्न हैं। ख्रीस्त पंथ (क्रिश्चिएनिटी) जीसस, चर्च एवं होली घोस्ट में आस्था को तथा चर्च के अनुशासन में जीवन जीने को ही परम धर्म या श्रेष्ठतम जीवन-लक्ष्य मानता है। इस्लाम अल्लाह और पैगम्बर मुहम्मद में तथा उनके द्वारा प्रगट कुरान शरीफ और उनके द्वारा आचरित हदीस का आस्थापूर्ण पालन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन-लक्ष्य मानता है। मार्क्सवाद सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना के लिए पार्टी अनुशासन में रहकर किए गए कार्य को करने को ही सर्वश्रेष्ठ जीवन लक्ष्य मानता है ताकि भविष्य में कभी पूर्ण समतामूक भौतिकवादी समाज की स्थापना साकार हो सके।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस प्रकार क्रिश्चियन संस्कृति में, मुस्लिम संस्कृति में एवं कम्युनिस्ट संस्कृति में कोई भी सार्वभौम नियम या धर्म मान्य नहीं हैं। वहाँ स्वपंथ आस्था एवं अन्य पंथों का अनादर, तिरस्कार, विरोध या स्वपंथ में अन्यों के युक्तिपूर्वक तथा बलपूर्वक रूपांतरण को ही संस्कृति माना जाता है जो कि भारतीय दृष्टि से असांस्कृतिक एवं अधर्ममय दृष्टि है। केवल प्रबुद्ध यूरोअमेरिकी जनों में उभरी लोकतांत्रिक दृष्टि को भारतीय दृष्टि से सुसंस्कृत कहा जाएगा।

'वेल्थ' और 'मनी' : आधुनिक यूरोपीय दृष्टि

तदनुसार इन भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की अपनी-अपनी अर्थदृष्टियाँ हैं। आधुनिक यूरोपीय अर्थशास्त्र की अर्थदृष्टि के अनुसार 'वेल्थ' या सम्पत्ति की परिभाषा यह है कि किसी भी व्यक्ति की 'वेल्थ' उसके स्वामित्व की ऐसी समस्त चल-अचल वस्तुओं का कुल 'स्टॉक' है, जिन वस्तुओं की कोई 'मार्केट-वेल्यू' हो अर्थात् उन वस्तुओं के विनिमय स्वरूप धन या अन्य वस्तुएँ मिल सकती हों' इसका अर्थ है कि उनके स्वत्व यानी स्वामित्व का हस्तांतरण सम्भव हो। इसमें घर, स्टॉक, शेयर, बैंक एकाउंट आदि तो शामिल है ही, व्यापारिक एवं प्रोफेशनल 'कनेक्शन' तथा सम्बन्धित हुनर की कीमत भी शामिल है। इस दृष्टि से 'मानवीय सम्पत्ति' एवं 'गैर-मानवीय सम्पत्ति' का वर्गीकरण भी किया जाता है। सम्पत्ति (वेल्थ) का एक आधारभूत गुण है कि वह आय उत्पादन का एक जरिया है। आय वस्तुः 'वेल्थ' पर मिलने वाला 'रिटर्न' है। इसी अर्थ में मानवीय श्रम भी सम्पत्ति के (वेल्थ) है, क्योंकि वह भी आय-उत्पादन का जरिया है।

इस दृष्टि से धन (Money) की भी परिभाषा उल्लेखनीय है। यूरोप में पहले 'मनी' का प्रचलित अर्थ था सोने-चाँदी-जवाहरात, गाय-बैल-घोड़े तथा अन्य ऐसी वस्तुएँ जिनकी कीमत अंतर्निहित मान्य थी, क्योंकि उनके द्वारा भी भुगतान होता था। वस्तुः हर वह वस्तु 'मनी' है जो ऋण की अदायगी के साधन के रूप में सामान्यतः मान्य है। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था में 'मनी' का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामान्य अर्थ है। शासन अथवा बैंक की देयताएँ अर्थात् शासन एवं बैंकों पर व्यक्तायें के दावे (क्लेम)। शासन के स्तर पर नोट और सिक्के तथा बैंकों के स्तर पर बैंक-खाते ही व्यक्तियें की 'मनी' का प्रचलित रूप हैं। 'मनी' के इस स्वरूप का कोई स्वयं में अंतर्निहित मूल्य नहीं है, अपितु वह वस्तुओं के विनिमय में सार्वभौम रूप से स्वीकार्य उस 'विश्वास' का प्रतीक-चिह्न है, जो विश्वास व्यक्ति बैंकों एवं शासन पर रखते हैं। अत: 'मनी' इस प्रकार बैंकों पर और 'राज्य' पर लोगों के 'फेथ' का प्रतीक-चिह्न मात्र हैं क्रमश: बैंक खाते तथा नोटों-सिक्कों के रूप में। अर्थात् आधुनिक समय में जिसे सामान्यत: 'मनी' कहा माना जाता है, वह बैंकों एवं राज्यांगों पर लोगों के 'फेथ' का 'टोकन' है। यह टोकन राज्य या बैंक द्वारा सम्बन्धित लोगों की सम्पदा को किसी न किसी रूप में रेहन रख कर ही दिया जाता है। इस सम्पदा में मानवीय श्रम, सहित 'वेल्थ' के विविध रूप समाहित हैं- घर, जमीन, मकान, स्टॉक शेयर, बैंक खाता, व्यापारिक कनेक्शन्स, प्रोफेशनल कनेक्शन्स हुनर के हस्तांतरण से प्राप्त आय आदि। 'मनी' और सम्पत्ति (वेल्थ) की इस परिभाषा, मान्यता एवं दृष्टि में राज्य की सर्वोपरिता और व्यक्ति की राज्य द्वारा मान्य सीमा तक स्वतंत्रता एवं गतिशीलता अंतर्निहित है। इस प्रकार वर्तमान अर्थशास्त्र व्यवहार में, व्यक्ति एवं राज्य इन दो आधारभूत इकाइयों को ही मूलत: मान्यता देता है। राज्य की स्वीकृति से व्यक्तियों के विविध निकाय निर्दिष्ट मर्यादा में गतिशील एवं कार्यरत रह सकते हैं। यह है सम्पत्ति सम्बन्धी आधुनिक यूरो-अमेरिकी दृष्टि जो इन दिनों लगभग सार्वभौम है। भारत में भी सम्पत्ति की यही दृष्टि इन दिनों अधिकृत तौर पर मान्य एवं प्रभावी है। ऐसी स्थिति में समृद्धि के हिंसक या अहिंसक होने का परीक्षण राजकीय नीतियों एवं नियमों के आधारों का परीक्षण करके ही हो सकता है। क्योंकि सम्पत्ति के रूपों और सीमाओं तथा विनिमय एवं विनिवेश का स्वरूप-निर्धारण इन दिनों राज्य द्वारा ही नियंत्रित है।

सम्पत्ति : भारतीय दृष्टि

सम्पत्ति सम्बन्धी भारतीय (सांस्कृतिक) दृष्टि इससे नितांत भिन्न रही है। अधिकांश भारतीय धर्मशास्त्रों में सम्पत्ति दो प्रकार की कही गयी है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1. स्थावर, जैसे कि भूमि खंड और घर तथा 2. जंगम (बृहस्पति स्मृति एवं कात्यायन स्मृति दृष्टव्य)। याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में सम्पत्ति के तीन प्रकार कहे गये हैं- 1. भू (भूमि खंड और घर), 2. निबन्ध (बंधान) और 3. द्रव्य। यों द्रव्य चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्तियों का द्योतक माना गया है। 'निबन्ध' का अर्थ है वह स्थायी द्रव्य जो दान अथवा आवधिक शुल्क के रूप में किसी व्यक्ति या निकाय को राज्य द्वारा अथवा किसी संगठन (पंचायत, श्रेणी, निगम आदि) द्वारा दिया जाय।

सम्पत्ति को 'दाय' भी कहते हैं। भारतीय शास्त्रों में सम्पत्ति के लिए 'दाय' शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में भी 'दाय' शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण ग्रंथों में सम्पत्ति के अर्थ में 'दाय' शब्द प्रयुक्त है। इस प्रकार, दाय, सम्पत्ति और धन शब्द प्राय: पर्यायवाची हो जाते हैं। पैतृक सम्पत्ति को 'अप्रतिबंधदाय' कहा जाता है। दूसरी ओर, जब पैतृक सम्पत्ति अन्य कुटुम्बी को दी जाती है तो उसे 'सप्रतिबंधदाय' कहा जाता है। यों सभी दाय सप्रतिबंध ही होते हैं क्योंकि पिता या स्वामी की मृत्यु हो जाने अथवा उसके पतित हो जाने या संन्यासी हो जाने के उपरांत ही पुत्र, पौत्र, पुत्री, पत्नी आदि को दाय का स्वामित्व प्राप्त होता है। इसीलिए स्वत्व या स्वामित्व का प्रश्न सम्पत्ति के संबंध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वत्व के पाँच उद्‌गम या स्त्रोत है- 1. रिक्थ या वसीयत, 2. क्रय या खरीद, 3. संविभाग या विभाजन, 4. परिग्रह यानी बलपूर्वक ली हुई सम्पत्ति और 5. अधिगम यानी अनायास प्राप्त सम्पत्ति। गौतम स्मृति का कहना है कि ब्राह्मणों को दान से, क्षत्रियों को विजय से, वैश्यों को कृषि और व्यापार के लाभ से और शूद्रों को अनुग्रह से भी सम्पत्ति प्राप्त होती है जो कि पैतृत सम्पत्ति की तरह ही सम्पत्ति है। माना यह जाना है कि स्वत्व या स्वामित्व की एक लोकसिद्ध परम्परा चली आ रही थी और शास्त्रों ने केवल उनको व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया। सम्पत्ति के स्वामित्व को लेकर शास्त्रों में विशद विवेचना है। परन्तु आधुनिक राज्य सम्पत्ति का परम स्वामी 'राज्य' यानी स्वयं को मानता है। वह सम्पत्ति-सीमा, भूमि-हदबन्दी, आय-सीमा आदि भाँति-भाँति के कानूनों द्वारा दाय एवं सम्पत्ति का परिग्रह करता रहता है। यह धर्म-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्मत नहीं है। राज्य द्वारा नागरिकों की सम्पत्ति पर केवल राज्य का स्वत्व इस्लामा में मान्य नहीं है। यूरोक्रिश्चियन लॉ से संचालित राज्य और कम्युनिस्ट राज्य नागरिकों की सम्पत्ति पर परिग्रहपूर्वक राज्य का स्वत्व स्थापित करते हैं।

प्राचीनय भारतीय शास्त्रों में सम्पत्ति के दो वर्ग किये गये हैं–

1. संयुक्त कुल सम्पत्ति, 2. पृर्थक् सम्पत्ति। पृथक सम्पत्ति में स्वअर्जित सम्पत्ति भी सम्मिलित है। यह अर्जन दान, विजय, कृषि, व्यापार, वेतन या अनुग्रह के द्वारा हो सकता है। परिग्रह को धर्मसम्मत अर्जन नहीं माना जाता।

शास्त्रों ने विचार किया है कि यदि कोई व्यक्ति कुल की सम्पत्ति को हानि पहुँचाये बिना अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से कुछ अर्जित करता है तो वह सम्पत्ति पृथक् सम्पत्ति मानी जाएगी। विद्या और ज्ञान से प्राप्त धन को विद्याधन कहा जाता है और विद्याधन भी पृथक सम्पत्ति ही है। इसी प्रकार, यदि किसी सैनिक या कर्मचारी को शूरता प्रदर्शित करने पर शासक या स्वामी द्वारा कोई धन दिया जाता है तो उसे शौर्य धन कहते हैं। युद्ध में अथवा शत्रु को भगाकर प्राप्त किये जाने वाले धन को ध्वजाहत धन कहा जाता है। यह परिग्रह नहीं है। यह परिग्रह से भिन्न है और धर्मसम्मत शौर्य का एक रूप है। **राजा शत्रु या आततायी के धन का परिग्रह कर सकता है परन्तु समाज के किसी सामान्य व्यक्ति के धन का परिग्रह करने का अधिकार राज्य को भारतीय परम्परा में प्राप्त नहीं है।**

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में धन पर राज्य का स्वामित्व मान्य नहीं है। व्यक्ति का भी इस पर मूलभूत स्वामित्व नहीं है। सम्पत्ति का बहुलांश पैतृत होता है और उस सम्पत्ति पर कुल का स्वामित्व ही मान्य है। विद्या, ज्ञान, शूरता एवं सेवा आदि गुणों एवं कर्मों से प्राप्त पृथक सम्पत्ति पर अवश्य व्यक्ति का स्वत्व होता है परन्तु उसके भी उपयोग के विशद नियम हैं, जिससे कि कुल एवं समाज का उस पर बड़ी सीमा तक नियंत्रण रहता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यही कारण है कि श्रीमद्भगवद्गीता में 'कुलधर्मों' यानी कुलों के धर्मों को शाश्वत कहा है– 'कुलाधर्मांश्च शाश्वत:'। यह कुल-धर्म स्मृति एवं परम्परा से गतिशील रहता है। स्मृति संस्कार एवं शिक्षा से उत्पन्न होती है। सभी प्रकार की स्मृतियाँ आकांक्षाफलक होती हैं अर्थात् अकांक्षाओं को एवं संकल्पों को जन्म देती हैं। प्रत्येक आकांक्षा अपना संस्कार भी व्यक्ति-चित्त पर छोड़ती है। इस प्रकार स्मृति संस्कार की समरूपता से कुल धर्मों का शाश्वत प्रवाह चलता है। स्मृति एवं आकांक्षा के लोप से कुल धर्म भी विलुप्तक हो जाते हैं। परन्तु वर्तमान भारत में कुल एवं शिक्षा दोनों राज्य द्वारा नियंत्रित हैं। राज्य नियंत्रित शिक्षा कुलों की स्मृति एवं परम्परा को कोई महत्व एवं मान्यता नहीं देती। वह चित्त एवं मानस सम्बन्धी भारतीय शास्त्रों को भी कोई मान्यता नहीं देती। फलत: समकालीन भारत में कुल धर्म विलुप्त प्राय ही हैं। सामान्यत: सभी भारतीय व्यक्तियों की आकांक्षाएँ एवं संकल्प प्रदत्त परिवेश में यथासम्भव अधिकाधिक भोग-साधन प्राप्त करने पर एकाग्र हैं। इसमें रुचि-भेद के स्तर पर संस्कार-भेद अवश्य हैं। परन्तु कार्यक्षेत्र मुख्यत: राज्य द्वारा नियंत्रित हैं। आधुनिक भारतीय राज्य में भारतीय शास्त्रों को कोई अधिकृत मान्यता नहीं दी गई है। अत: व्यवहारत: सभी भारतीय शास्त्रीय सन्दर्भ समकालीन जीवन के लिए लगभग अप्रासंगिक या गौण हैं। वर्तमान स्थिति में राज्य को ही राष्ट्र के समस्त संसाधनों का अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति का स्वामी मान लिया गया है। तथापि व्यक्तियों को राज्य द्वारा पर्याप्त स्वतंत्रता भी प्रदान की गई है। ऐसी स्थिति में, व्यक्ति की समृद्धि राजकीय नियमों का पालन करते हुए सम्पत्ति के संचय पर निर्भर है। उस समृद्धि का उपयोग करने को व्यक्ति बड़ी सीमा तक स्वतंत्र है। अत: व्यक्तियों के स्तर पर प्रभावी विचार भी बड़ी सीमा तक सम्पत्ति के उपयोग का स्वरूप तय करते हैं। इस अर्थ में भारतीयों की समृद्धि आज भी एक सीमा तक अहिंसक ही कही जा सकती है। परन्तु अहिंसा के शास्त्रीय अर्थ में समस्त प्राणियों के प्रति सदा अद्रोह का होना ही अहिंसा है– 'सर्वथा सर्वथा सर्वभूतेषु अनभिद्रोह : अहिंसा' (योगसूत्र)। जबकि वर्तमान शासन प्रतिस्पर्धा एवं अन्यों के प्रति संवेदना की कमी की प्रवृत्तियों को प्रेरित करता है। अत: उस अर्थ में वह हिंसक मनोवृत्ति को प्रेरित करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शासन को समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति का स्वामी मानने की आधुनिक यूरो-क्रिश्चियन दृष्टि भारतीय परम्परा में अज्ञात रही है। यहाँ शासन का कार्य 'वर्णाश्रम धर्म-प्रतिपालन' अर्थात् 'सार्वभौम सुव्यवस्था' रहा है, न कि सम्पत्ति का स्वामित्व एवं विनिवेश। यों, वर्तमान शासन भी 'लॉ एंड ऑर्डर' को अपना कर्तव्य मानता है, परन्तु इसकी मूलभूत दृष्टि समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति के नियंत्रण एवं हस्तांतरण, विनियोजन आदि की है। 'लॉ एंड ऑर्डर' इस मूल दृष्टि का अनुवर्ती है। 'कन्ट्रोल और डॉमिनेशन' ही प्रधान दृष्टि है। परन्तु यह दृष्टि स्वयं में किसी सार्वभौम अर्थ-नीति का आधार बन ही नहीं सकती। क्योंकि जिनका 'कन्ट्रोल' किया जाएगा, जिन पर 'डॉमिनेशन' स्थापित किया जाएगा, वे स्वयं भी पलटकर कल वर्तमान राज्यकर्ताओं पर नियंत्रण एवं आधिपत्य करेंगे या करना चाहेंगे। अत: शासन की वर्तमान अर्थ-दृष्टि सार्वभौम नहीं है। वह 'कुछ' का शेष पर नियंत्रण एवं आधिपत्य स्थापित करने की व्यवस्था है। भारत शासन की वर्तमान अर्थ-दृष्टि भारतीय समाज के लोगों को दो स्पष्ट एवं नतांत भिन्न खंडों में बाँटती है- (1) राज्य (2) राज्य के नागरिक। राज्य में राज्य के विभिन्न अंगों के नीति नियामक एवं निर्धारक अधिकारी (मंत्री, अफसर आदि विधायिका, कार्यपालिका के अधिकारीगण और न्यायपालिका के माननीय न्यायाधीशगण) व्यक्ति सम्मिलित हैं। ये शेष नागरिकों की सम्पत्ति सम्बन्धी नियम बनाते, उन पर व्यवहार का स्वरूप तय करते तथा उनमें समय-समय पर परिवर्तन करते हैं। शेष नागरिक इन नियमों से मात्र नियंत्रित होते हैं। यों, विधायिका के अधिकारियों को चुनने का अधिकार शेष नागरिकों को भी प्राप्त है। परन्तु कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पहले से ही एंग्लो-सेक्शन लॉ से संचालित है, जिसका भारतीय नागरिकों की स्मृति-परम्परा से कोई भी संबंध नहीं है। स्वयं विधायिका का संचालन भी एंग्लो-सेक्शन लॉ से ही होता है। अत: विधायिका में नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न्याय, सम्पत्ति और व्यवहार संबंधी हिन्दू नागरिकों की प्राचीन परम्परा से नियंत्रित नहीं होते। अपितु एंग्लो-सेक्शन लॉ के भारतीय प्रतिरूप भारतीय संविधान से ही नियंत्रित होते हैं। ऊपर से, ये प्रतिनिधि तथा कार्यपालिका के अधिकारी मिलकर शिक्षा के सम्पूर्ण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
स्वरूप को नियंत्रित करते हैं और रचते हैं। यह शिक्षा धर्म, न्याय, औचित्य, मर्यादा, लोक-व्यवहार, सम्पत्ति, कुल-धर्म, राजधर्म आदि की भारतीय (हिन्दू) परम्परा को अपना स्त्रोत नहीं मानती। जबकि इंग्लैंड में एंग्लो-सेक्शन लॉ वहाँ की प्रोटेस्टेन्ट क्रिश्चियन परम्परा को अपना स्त्रोत मानता है। इसी प्रकार जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्पेन आदि तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका, एंग्लो-सेक्शन लॉ किसी न किसी क्रिश्चियन परम्परा को अपना स्त्रोत मानते हैं। इस प्रकार भारत में प्रचलित वर्तमान शासकीय अर्थ दृष्टि से संचालित व्यवस्था किसी भी भारतीय परम्परा से अपनी वैधता नहीं ग्रहण करती, अपितु भारतीयों पर एक विशिष्ट यूरोख्रीस्त परम्परा बलपूर्वक लादती है और भारतीय नागरिकों की सम्पत्ति को तदनुसार नियंत्रित करती एवं उस पर राज्य का स्वत्व स्थापित करती है। इस प्रकार यह व्यवस्था मूलतः हिंसक समृद्धि की जनक, पोषक एवं रक्षक है। परन्तु यह व्यवस्था विश्व-इतिहास में अपवाद है।

हिंसक समृद्धि का साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी स्वरूप

आधुनिक यूरोपीय उद्योगवाद एवं उससे जुड़े आधुनिक अर्थशास्त्र का विस्तार आज विश्वव्यापी है तथापि यह उद्योगवाद इतिहास की एक सामान्यधारा नहीं है। यह इतिहास की अत्यंत विशिष्ट घटना है। जिस स्तर पर आधुनिक उद्योगवाद के विश्व के संसाधनों के इकतरफा हस्तांतरण की प्रक्रिया द्वारा कतिपय क्षेत्रों को अद्वितीय हिंसक समृद्धि प्रदान की है, उस स्तर की आर्थिक समृद्धि की विश्वव्यापी पुनरावृत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसी स्मृद्धि केवल उसी देश या समाज के भीतर सम्भव है जो अपने आंतरिक संसाधनों की लूट के जरिए जुटाए तथा जिसकी हिंसक समृद्धि में जोशपूर्ण आस्था हो।

इससे पूर्व विश्वभर में विविध समाजों एवं राष्ट्रों ने जिन आर्थिक नियमों एवं नैतिक अनुशासनों के अंतर्गत सहस्त्राब्दियों तक प्रगति की, उनके नियम आधुनिक उद्योगवाद से भिन्न थे। अपने उन नियमों के साथ विश्वभर में इन समाजों ने एक अहिंसक समृद्धि अर्जित की और उसे टिकाए रखा। वे सभी आर्थिक समृद्धियाँ इस अर्थ में अहिंसक हैं कि उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वैसा निर्मम, व्यापक एवं सर्वभक्षी दोहन तथा शोषण कभी भी नहीं किया और प्रकृति को कभी भी मनुष्य का शत्रु नहीं समझा। न ही उन्होंने कभी भी बेकन की तरह यह मान्यता पाली कि प्रकृति को किसी स्त्री की तरह बलपूर्वक बाँह मरोड़कर वश में लाने पर ही वह प्रकृति अपने रहस्य आधुनिक मनुष्य के समक्ष उद्घाटित करेगी। इसके विपरीत इन सभी समाजों में प्रकृति मानव-जीवन का एक अविभाज्य एवं सम्मानित संदर्भ रही है और स्त्री तथा पुरुष के बीच ऐसा कोई भी विभेद न समाजों में नहीं रहा है। इस प्रकार स्त्री एवं प्रकृति, दोनों के ही प्रति इन सभी समाजों की दृष्टि प्रधानतः अहिंसक रही है। क्योंकि प्राणी अथवा प्रकृति के प्रति द्रोह या विरोध का भाव रखना ही हिंसा है और इनके प्रति आत्मीयता एवं मैत्री का भाव रखना और उस भाव के अनुरूप व्यवहार करना ही अहिंसा है। योग-शास्त्र में अहिंसा की यही परिभाषा प्रतिपादित है।'[1]

अहिंसक समृद्धिमूलक अर्थ-चिन्तन के मूल आधार : सत्य, ऋत, धर्म एवं यज्ञ

सत्य, ऋत, धर्म एवं यज्ञ- ये ही भारतीय अर्थ-चिन्तन के मूल आधार हैं। तप के द्वारा ही ये साध्य हैं। तप ही अर्थ की दिशा एवं साधन है। अहिंसक समृद्धि ही वास्तविक समृद्धि है। वही अर्थ पुरुषार्थ है।

मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ हैं: धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इनमें से तीन लोक-जीवन में साध्य पुरुषार्थ हैं यानी वे सामाजिक पुरुषार्थ हैं, लौकिक- पुरुषार्थ हैं। चौथा पुरुषार्थ निजी है, अलौकिक है। वह परम पुरुषार्थ है। परन्तु परम का अर्थ यहाँ मूल या मुख्य से नहीं है, अपितु 'सर्वोच्च' एवं 'सबसे परे' से है।

जीवन के लक्ष्यों को जिसके ज्ञान से अधिप्रमाणित किया जाता है, जो समस्त जीवन-लक्ष्यों के यथार्थ को और परमार्थ को प्रकाशित करता है, वह है परम पुरुषार्थ। अतः जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी भी एक कार्य या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवसाय में सर्वोच्च नहीं हो सकता यद्यपि सिद्धान्ततः प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च होने का प्रयास करने का अधिकार भी है और कर्त्तव्य भी हो सकता है, उसी प्रकार सर्वोच्च या परम पुरुषार्थ मोक्ष प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता यद्यपि वह प्रत्येक द्वारा प्राप्य है।

मनुस्मृति ने स्पष्ट कहा है कि सभी मनुष्यों के लिए तीन ही पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ एवं काम। वस्तुतः मोक्ष मनुष्यों का सामान्य धर्म या सर्वसामान्य लक्ष्य कभी भी नहीं माना गया है। मनुस्मृति स्पष्ट कहती है- 'धर्मार्थौ उच्यते श्रेयः, कामार्थौ धर्म एव च। अर्थ एवैह वा श्रेय : त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ।'[2]

(कुछ का मत है कि धर्म एवं अर्थ की साधना श्रेयस्कर है, कुछ के अनुसार काम और अर्थ की तथा कुछ के मत से केवल धर्म की। इस विषय में सम्यक स्थिति यह है कि धर्म, अर्थ एवं काम-ये तीनों ही (त्रिवर्ग) श्रेयस्कर हैं।)

मनु ने (6/35 में) स्पष्ट कहा है कि तीनों ऋणों (देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण) से मुक्त होकर ही मन को मोक्ष में निविष्ट करे (ऋणानि त्रीणि अपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत)।

ऋण चुकाए बिना जो मोक्षार्थी होता है, वह अधोलोकों में जाता है (अनपाकृत मोक्षं तु सेवमानो व्रजति अधः)। जो भी द्विज वेदों का अध्ययन किए बिना, पुत्रोत्पत्ति किए बिना एवं यज्ञ सम्पादन किए बिना मोक्ष की इच्छा करता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है।[3] स्पष्ट है कि जिनके मन किसी भी सामान्य गृहस्थी की आकांक्षा से मुक्त हैं, केवल वे ही जन्म-जन्मातर के अपने उन्नत संस्कारों के फलस्वरूप सीधे-मोक्ष-साधना में प्रवृत्त हो सकने के अधिकारी हैं। मनु ने ही स्पष्ट किया है- 'सर्वस्व दक्षिणा देकर, सन्यस्त होकर, समस्त प्राणियों को अभय देकर जो घर से निकलकर प्रव्रज्या करता है, उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं।'[4]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बृहदारण्यक उपनिषद ने स्पष्ट किया है कि 'वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप एवं उपासना के उपरांत ही व्यक्ति परम सत्य के ज्ञान के लिए पात्र बन सकता है।' ऐसा व्यक्ति पापविजयी हो चुकता है, रजोगुण से रहित हो चुकता है, संशयशून्य हो चुकता है। शान्त एवं दान्त (इन्द्रिय जयी) हो चुकता है। परम ब्रह्म से स्वयं की एवं संसार की अभिन्नता की उसे अनुभूति होने लगती है। यह है मोक्ष साधना की पात्रता। स्पष्टत: यह सामान्य धर्म यानी सर्व साधारण के द्वारा पालनीय धर्म नहीं है। अर्थ, काम एवं धर्म सामान्य धर्म हैं यानी मानव-मात्र का स्वभाव है कि वह स्वत: ही काम, अर्थ तथा धर्म-कर्त्तव्य के किसी न किसी रूप में रह रता है, प्रवृत्त रहता है। सम्यक रूप से अथवा असम्यक रूप में।

धर्म, अर्थ एवं काम त्रिवर्ग

त्रिवर्ग ही सामान्यत- धर्म है। मोक्ष-धर्म अति विशिष्ट धर्म है। वह समस्त पुरुषार्थों की निवृत्ति है, समाप्ति है। यहाँ 'धर्म' के अर्थों का सदा स्मरण आवश्यक है। जो जिसका सहज स्वभाव एवं सहज कर्त्तव्य हैं, वह उसका धर्म। जो समस्त मानवों द्वारा करणीय कर्त्तव्य है, वे हैं सामासिक धर्म या सामान्य धर्म। फिर, अपनी विशेष स्थिति के अनुरूप करणीय कर्त्तव्य हैं अपना विशेष धर्म या स्वधर्म। इस प्रकार धर्म का एक व्यापक अर्थ है और एक विशिष्ट। व्यापक अर्थ में जो कुछ भी कर्त्तव्य है, वह सब धर्म ही है। अत: गकाम एवं अर्थ भी जहाँ तक करणीय है, वहाँ तक वे धर्म ही हैं। इसीलिए धर्ममय काम एवं धर्ममय अर्थ ही साध्य हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है-

''धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'' - ''प्राणियों में धर्म का अविरोधी काम मैं स्वयं हूँ।''

यहाँ काम का अर्थ शृंगारादि मात्र नहीं है, अपितु कामनाएँ मात्र, आकांक्षाएँ मात्र काम है। कामना करना ही काम है। मोक्ष की कामना करना भी 'काम' पुरुथार्ष ही है। मोक्ष की साधना करना 'धर्म' पुरुषार्थ है। मोक्ष की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिद्धि मोक्षार्थी के लिए 'अर्थ' पुरुषार्थ है। उस सिद्धि के उपरांत की जो स्थिति है, वह मोक्ष-लाभ की स्थिति कही जाती है। इस प्रकार समस्त कामनाएँ 'काम' पुरुषार्थ का अंग है। उनकी सिद्धि या सफलता 'अर्थ' पुरुषार्थ का अंग हैं। उन्हें सार्वभौम नियमों, सामासिक धर्मों के अनुशासन में रहकर प्राप्त करना 'धर्म' पुरुषार्थ है। 'काम' को केवल सेक्स या श्रृंगारादि और अर्थ को केवल धन समझना गलता है। स्वधर्म के अनुरूप कामनाएँ करना ही काम पुरुषार्थ हैं। इस प्रकार, अर्थ एवं काम दोनों धर्म के अधीन हैं। धर्म-निरपेक्ष 'काम' एवं धर्म-निरपेक्ष 'अर्थ' की प्राप्ति के लिए कार्य करना अधर्म है, धर्म-च्युति है। इसी प्रकार स्वधर्मानुकूल ही कर्त्तव्य-सम्पादन (यानी धर्म-पालन) धर्म पुरुषार्थ है। स्वधर्म त्याग कर यदि धर्म-वर्ग के (यानी पूजापाठादि, भक्ति आदि, दानादि, मंदिर एवं देव-दर्शन, ऋषि-दर्शन, साधु-दर्शन आदि) कार्य भी करे तो उससे अन्य हानि न होने पर भी वे कर्म धर्म-पुरुषार्थ नहीं कहलाएँगे। क्योंकि उससे स्वधर्म की हानि हो रही होगी। इसी प्रकार मोक्ष के नाम पर भी यदि धर्म-मर्यादा का उल्लंघन किया जाए तो वह अविवेक का लक्षण होगा एवं दंडनीय अथवा शासित किए जाने योग्य होगा। जिनका स्वधर्म मोक्ष ही बन चुका हो, जो मोक्ष धर्म के पात्र एवं साधक हो चुके हों-वीतराग, इच्छाशून्य, वासना शून्य हो चुके हों, केवल उनकी मोक्ष-साधना ही मोक्ष पुरुषार्थ है। शेष तो मोक्षवाद या मुक्तिवाद है। जहाँ तक वह मोक्ष-साधना की आकांक्षा जगाने में कारक या प्रेरक बने, वहीं तक वह पुण्य भाव कहा जा सकता है।

अर्थ : प्रयोजन-सिद्धि

इस पृष्ठभूमि में 'अर्थ' पुरुषार्थ पर विचार सहज है। अर्थ यानी सिद्धि, कार्यसिद्धि, सफलता, प्रयोजन सिद्धि। अर्थ से आशय धन नहीं है। केवल धनार्थी के लिए धन ही अर्थ है। या फिर, किसी प्रयोजन-विशेष के लिए साधन-रूप में धन-संग्रह अर्थ पुरुषार्थ का अंग है। धन के लिए ही धन-संग्रह पुरुषार्थ नहीं है, रुग्णता है। वैसे भी, वस्तुतः धन के लिए धन कोई नहीं जुटाता या कमाता। किसी न किसी लालसा-पुत्र-कलत्र, यश राज्य, प्रभुत्व अथवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कार्यसिद्धि के लिए ही धन कमाया या जुटाया जाता है। अतः भारतीय अर्थ-चिन्तन में यदि अर्थ को धन के ही अर्थ में लें, तब भी अर्थ-संग्रह एवं अर्थव्यवस्था सत्य, धर्म एवं यज्ञ से अनुशासित होनी चाहिए।

अर्थ-चिन्तन सांस्कृतिक दृष्टि का अभिन्न अंग है

अर्थ-चिन्तन को धर्म-चिन्तन यानी सांस्कृतिक दृष्टि से अलग करके देख पाना सम्भव नहीं। यह केवल भारत के विषय में सत्य नहीं है। विश्वभर के लिए सत्य है। आधुनिक यूरोपीय अर्थशास्त्र स्वयं भी यूरोईसाई धर्म-चिन्तन (सांस्कृतिक दृष्टि) यानी लौकिक अभ्युदय एवं 'साल्वेशन' आदि या 'लिबरेशन' आदि सम्बन्धी यूरोईसाई चिन्तन का अंग है। यहाँ तक कि भारत में, यह अर्थ-चिन्तन केवल अर्थशास्त्रीय चिन्तन से नहीं चल रहा है। समकालीन भारतीय शिक्षा केंद्रों एवं संचार-माध्यमों तथा विचार माध्यमों में चल रहे दर्शनशास्त्रीय, राजनीति शास्त्रीय, इतिहास-सम्बन्धी एवं समाजशास्त्रीय चिन्तन एवं मान्यताओं से अभिन्न रूप में जुड़ा है समकालीन भारत में प्रतिष्ठित अर्थ-चिन्तन। अतः केवल अर्थनैतिक क्षेत्र में अथवा केवल किसी राजनैतिक दल में उस विषय में नया विचार या भारतीय परम्परा का विचार भर कर लेने से यह भारतीय अर्थ-चिन्तन भारत में व्यवहार में लाया नहीं जा सकेगा। इसे समझने के लिए थोड़ा विस्तार अपेक्षित है।

राजकोषीय भारतीय चिन्तन

'राज्यकर्ता के लिए कौटिल्य ने ठीक ही कहा है कि ''कोशमूला : कोशपूर्वा सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्वं कोशं अवेक्षेत।''[5]

(समस्त व्यापार कोशपूर्वक एवं केशमूलक ही आरम्भ हो सकते हैं। अतः राज्यकर्ता को सबसे पहले कोश पर ध्यान देना चाहिए।) महाभारत में भी यही कहा है-

''कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः। कोशमूला हि राजान : कोशो वृद्धि करो भवेत।।'' (शांतिपर्व)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(राजा के द्वारा सतत यत्नपूर्वक कोश रक्षणीय है। क्योंकि राज्य कोशमूलक है। कोश की सदा वृद्धि करणीय है। कामन्दकीय नीतिसार, शुक्रनीति सार, मनु-स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि के भी ऐसे ही वचन हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी में तत्कालीन कश्मीर नरेश की राजकोशीय सजगता की प्रशंसा की है। कोश का मुख्य साधन है कर-ग्रहण। इस विषय में भारतीय परम्परा यह रही है-

1. राज्य केवल वे ही कर लगा सकता है, जो स्मृतियों एवं परम्पराओं द्वारा निर्धारित हैं। वह मनमानी नहीं कर सकता। सभी स्मृतियों का यही मत है।[6]

2. सामान्यतः राज्य सामान्य कृषि उत्पादन का बारहवाँ, अष्टमांश या छठा भाग तक कर-रूप में ले सकता है। (मनुस्मृति, विष्णुधर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र आदि)[7]

3. आपत्तिकाल में राज्यकर्ता भारीत कर लगा सकते हैं, परन्तु इसके लिए प्रजा से स्नेहपूर्ण अनुरोध (प्रणय) करना चाहिए- (...'इति व्यवहारिषु प्रणयः'- अर्थशास्त्र)। वह भी एक आपत्तिकाल में केवल एक बार। (सकृद एवं न द्विः प्रयोज्यः)।[8]

4. आपत्तिकाल में भी धर्मस्थलों की सम्पत्ति न छीनी जाए (विविध स्मृतियाँ)।[9]

5. राजद्रोहियों एवं धर्मविरुद्ध चल रहे लोगों की सम्पत्ति आपत्तिकाल में छीन ली जाए (विविध स्मृतियाँ)।[10]

6. राज्यकर्ता धनियों को आदर-सम्मान देकर अनुरोध करें कि आप लोग प्रजा पर अनुग्रह करें, अनुग्रह में राज्य का साथ दें (विविध स्मृतियाँ)।[11]

7. क्रेताओं-विक्रेताओं द्वारा राज्य में लाने-राज्य से ले जाने वाले सामानों पर शुल्क लगना उचित है। (कौटिल्य एवं अन्य)।[12]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

8. दंड से (आर्थिक दंडों से) प्राप्त धन राजकोष की सम्पत्ति है (विविध स्मृतियाँ)।[13]

9. यदि कोई कृषक तालाब, कुँआ, जलाशय आदि बनाए या वर्षों से अकृष्ट (अनजोते), पड़े खेत को जोते तो उससे तब तक कर न लिया जाए, तब तक वह व्यय किए धन का दुगुना प्राप्त नहीं कर लेता। यह 'परिहार' है। (श्कुरनीति एवं अन्य)।[14]

10. राज्य कृषकों को बीज, पशु एवं धन अग्रिम देने की व्यवस्था करे जो बाद में आसान किश्तों में वापस ले लिया जा सके। यह राजकीय 'अनुग्रह' है। (कौटिल्य)[15]

11. अनुग्रह एवं परिहार ऐसे किया जाए कि कोश बढ़े न कि ऐसे कि कोश घटे। (अनुग्रह परिहारौ चैभ्य: कोशवृद्धिकरौ दद्यात-कौटिल्य)[16]

12. शुल्क के विशद नियम गौतम धर्मसूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णुधर्मसूत्र आदि में निरूपित हैं।[17]

13. विवाह-सामग्री, वधू द्वारा पितृ-गृह से ससुराल ले जाया जा रहा सामान या भेंट की वस्तुएं, यज्ञ-सामग्री, प्रसूति सामग्री, देवपूजन सामग्री, उपनयन-उपकरण, व्रत-उपकरण, गोदान-सामग्री तथा विशिष्ट उत्सवों या संस्कारों में उपस्थित वस्तुओं पर नहीं लग सकता। (कौटिल्य)[18]

14. दुर्लभ बीज दूसरे देशों से बिना कोई शुल्क दिए व्यापारी, कृषक आदि लोग मँगा सकते हैं।[19]

15. सामान्यत: आयात पर वस्तुओं का 1/5, /1/6, /1/10, 1/15, 1/20 या 1/25 भाग (वस्तु पर निर्भर है) कर-रूप में लिया जाए (कौटिल्य)।[20]

16. निर्यात पर भी याथोचित शुल्क लगाया जाए (कौटिल्य)।[21]

17. नाव से पार होने या सामान ले जाने सम्बन्धी शुल्क-नियम विस्तृत वर्णित हैं।[22]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

18. वेलापुरों (बन्दरगाहों) की विशेष रक्षा की जाए। अपने देश के नाविक एवं व्यापारी सामान लेकर दूर देश से आएँ तो सामानों का 1/10 भाग शुल्क लें। विदेशियों से अधिक शुल्क लिया जाए। बिना अनुमति लिए विदेशी नावें आ जाएँ तो सारा सामान जब्त कर लिया जाए या चाहे तो थोड़ा-बहुत छोड़कर शेष सर्वस्व ले लिया जाए। (बौधायन धर्मसूत्र, शुक्रनीतिसार आदि)[23]

19. विद्वानों, स्त्रियों, बच्चों, गुरुकुलवासी छात्रों, धर्मज्ञ साधुओं, सेवक शूद्रों, अधिक वय वाले वृद्धों (सत्तर वर्ष से ऊपर के) तथा रोगियों, अंधों, बहरों, लूलों, गूँगों से शुल्क नहीं लिया जाए। (गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति आदि)[24]

20. खानों से निकली प्रत्येक वस्तु राज्य की है। (विष्णुधर्मसूत्र)। मनुस्मृति ने ऐसी वस्तुओं का आधा या षष्ठांश या अष्टभांश राज्य द्वारा लेने की व्यवस्था दी है। कौटिल्य ने खानों से प्राप्त वस्तुओं पर कर के दस प्रकार बताए हैं।[25]

21. मार्ग-कर के विशद विधान हैं।[26]

22. जुआड़ियों, नटों, संगीतज्ञों, वेश्याओं आदि से नियमित कर की व्यवस्था थी।[27]

23. विशाल एवं सबल सैन्य-व्यवस्था राज्य का विशेष कर्त्तव्य है। (कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामन्दक नीतिसार, शुक्रनीतिसार, साथ ही महाभारत-विशेषत: शांतिपर्व, विराटपर्व एवं भीष्मपर्व, रामायण इत्यादि)।[28]

24. पृथ्वी (देश) सबकी है, केवल शासकों की नहीं। पृथ्वी पर सम्राट एवं अन्यों के स्वामित्व में समान अधिकार हैं (जैमिनिसूत्र, व्यवहार मयूख आदि)। राज्य जिस भूमि को स्वयं खरीदे, उसी पर उसका पूर्ण अधिकार है। भूमि पर सामान्यत: राज्य का स्वामित्व नहीं है। वह रक्षा के कर्त्तव्य के कारण कर-ग्रहण का अधिकारी है। (मनुस्मृति)।[29]

25. उपज का अंश, विविध शुक्ल तथा दंड से प्राप्त धन-ये तीन राज्य के प्रमुख आय-साधन हैं (विविध स्मृतियाँ)।[30]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

26. कर-वृद्धि क्रमशः हो। एक समय पर कम ही हो (शांतिपर्व एवं अन्य)।[31]

27. महाभारत एवं मनुस्मृति का निर्देश है कि व्यापारियों पर कर लगाते समय क्रय में लगा धन, भाड़ा, सुरक्षा-व्यय, विक्रय सम्भावनाएं तथा न्यायोचित लाभ का विचार किया जाए।[32]

28. शिल्पियों पर कर लगाते समय दक्षता, परिश्रम आदि का विचार किया जाए (शांतिपर्व)।[33]

राज्य और समाज : अर्थ चिन्तन के संदर्भ में

अत्यंत प्राचीनकाल से भारतवर्ष में यह ज्ञान प्रवाहित है कि सनातन धर्म, जिसका शास्त्रों (श्रुति एवं तदाश्रित स्मृति तथा आगम एवं आप्तवचनों) में निरूपण है, शाश्वत है, दैवी है, राज्य से वह बहुत ऊपर है। धर्म-पालन सभी का समान कर्त्तव्य है। राज्य का भी राज्यकर्ताओं का भी। बृहदारण्यक उपनिषद का कथन है ''धर्म ही श्रेयस्कर है। वही राज्यकर्ता (क्षत्रिय) का भी राज्यकर्ता (क्षत्र) है। धर्म से बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म ही सत्य है। सत्य ही धर्म है। धर्म एवं सत्य एक ही हैं।''[34]

सदा राजनीति-लक्षण होता है अर्थशास्त्र

अतः राज्य केवल राजधर्मानुसार अर्थनीतियाँ एवं अर्थानुशासन चलाने का अधिकारी है। मनुस्मृति की टीका में मेधातिथि (आठवपीं-नौंवी शताब्दी ने बताया है कि राज्यकर्ता को वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध तथा शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध कदापि नहीं जाना है। वह शास्त्र की व्यवस्थाओं के अविरोध में चले, यही कर्त्तव्य है। वह शास्त्र की व्यवस्थाओं के अविरोध में चले, यही कर्त्तव्य है। यही बात 17वीं शताब्दी ई. में 'राजनीतिप्रकाश' में कही गई है। वेद, शास्त्र, शरीति, सम्बद्ध कुलों की रीतियाँ, कृषकों, व्यापारियों, महाजनों, शिल्पकारों की सर्वमान्य (पंचायती) परम्पराएँ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विवेकपूर्ण तर्क तथा तीनों वेदों (ऋग्, यजु, साम) के विद्वानों की सभा द्वारा निर्णीत सम्मतियों के ही प्रकाश में राज्यकर्ता को नियम बनाने चाहिए।

ब्राह्मण (अविद्वान नहीं), ग्राम का प्रमुख या मुखिया तथा राजन्य तीनों समानरूप से महत्वशाली एवं समृद्धिशाली हैं। शुक्रनीतिसार का कहना है कि ग्राम में छः प्रकार के अधिकारी होते हैं- ग्रामनेता, भागहार (राजस्व वसूलने वाला क्षत्रिय), लेखक (गणनाध्यक्ष), शुल्क ग्राह (वैश्य), साहसाधिपति (दंडाधिकारी-क्षत्रीय) तथा प्रतिहार (रक्षक-शूद्र)। इनके कर्त्तव्यों का स्पष्ट एवं विशद निरूपण है।

राइस डेविड्स की 'बुद्धिस्ट इंडिया', श्री रमेशचन्द्र मजूमदार की 'कारपोरेट लाइफ इन एंश्येंट इंडिया' आदि में ग्राम-सभाओं द्वारा स्थानीय शासन का स्वरूप वर्णित है, जो विविध शास्त्रों के अध्ययन पर आधारित है। व्यापारिक निगमों, श्रेणियों एवं अन्य परम्पराओं को, जब तक वे धर्म की विरोधी नहीं हों, पूरा आदर दिया जाना आवश्यक है। अतः भारतीय अर्थ-चिन्तन में राज्य का अधिकार केवल राजधर्म के अंतर्गत मर्यादित है। **समस्त समाज की समस्त आर्थिक सम्पदा एवं क्रियाशीलता का स्वामी भारत में राज्य कभी नहीं माना गया। अतः कोई राजनैतिक समूह या राज्यतंत्र समस्त राष्ट्र की समस्त सम्पदा पर अपना स्वामित्व मानकर उनके बारे में नीतियों का स्वयं निर्णय करें, यह भारत में परम्परा से अकल्पनीय है।** परन्तु राष्ट्र की प्रत्येक गतिविधि एवं सम्पत्ति का यथासम्भव अधिकतम व्यावहारिक ज्ञान रखकर आवश्यक नीतियाँ बनाना सदा से राजधर्म मान्य है। यह तो साम्राज्यवादी दौर का पाप है कि राज्य ही राष्ट्र की सम्पदाओं का स्वामी है।

इस प्रकार, भारतीय अर्थ-चिन्तन की दिशा यही हो सकती है कि समाज में धर्म, सत्य, न्याय, यज्ञ (जीवन-चक्र तथा सृष्टि-चक्र जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है।) और समृद्धि के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ किस प्रकार लागू की जाएँ। इसीलिए भारतीय परम्परा में अर्थशास्त्र एवं दंडनीति पर्याय है। राज्य के स्तर पर दंडनीति एवं व्यवस्था-विधान ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अर्थशास्त्र का आधार है। दंडनीति का आधार है- धर्मनीति। इसीलिए राजधर्म का एक अंग है- दंडनीति या वार्ता-नीति अथवा अर्थनीति। अर्थशास्त्र सदा राजनीति-लक्षण होता है, राजनीति का अंग होता है।

इसके लिए राज्यकर्ताओं को धर्मज्ञ विद्वानों की विद्या को प्रवाहित रखने में आवश्यक सहायता करनी चाहिए, दान देना चाहिए, उन्हें सम्मानित करना चाहिए और समस्त प्रजा का पिता बनकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। साम, दान, भेद एवं दंडा का आश्रय लेकर सम्यक शासन करना चाहिए। केवल साम (शांतिपूर्ण व्यवस्था) से समाज की रक्षा नहीं हो सकती। केवल दान के द्वारा सबकी अर्थसिद्धि सम्भव नहीं। जिन्हें अपने किसी न किसी प्रकार केबल का दर्प है और इसलिए जो धर्मोल्लंघन करते रहते हैं, वे भेद से भी वश में नहीं आते, त: वे दंडनीय हैं।[35]

नीतिवाक्यामृत के कथन- **'वीरभोग्या वसुन्धरा'** को इन दिनों बहुधा उद्घोषित किया जाता है। परन्तु परम्परा के ज्ञान के बिना इसका अर्थ नहीं स्पष्ट होगा और अनर्थ ही होगा। जो अधर्मरत है, वह वीर नहीं है। इसी प्रकार जो धर्मनिष्ठ नहीं है, वह वास्तविक भोग में भी समर्थ नहीं है। भोग के नाम पर अमर्यादा, अविवेक, रोग वैर एवं दंड को ही वह आमंत्रित करेगा। जो सचमुच दर्पमय विजिगीषु भाव से पृथ्वी को भोगना चाहे, उसके लिए श्रीमद्भागवत का यह कथन स्पष्ट कथित है कि 'ऐसे दर्पित राजाओं को देखकर पृथ्वी हँसती है कि अहो! मृत्यु के ये क्षुद्र खिलौने मुझे जीतेंगे, मुझे भोगेंगे।'

(' दृष्टवेदं जये व्यग्रान्नृपान् हसति भूरियम् । अहो मां विजिगीषन्ति मृत्यो : क्रीड़नका : नृपा:।।')

केवल पुत्र-भाव से, विनम्र भाव से, कृतज्ञतापूर्वक अपने अंश का सेवन ही वीरतापूर्ण भोग है। भोग का व्यापक अर्थ है। प्रत्येक रसानुभूति भोग ही है। ब्रह्मानन्द भी भोग ही है। ईश्वर इस समस्त ब्रह्माण्ड का कर्ता, भोक्ता,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साक्षी, स्वामी इसी अर्थ में कहा जाता है। **भोग का अर्थ रमण या विषय-सेवन भर नहीं है।** वैसा समझना शास्त्र विरुद्ध है। विविध राज्यकर्ताओं द्वारा पृथ्वी या भारत प्रदूषित करना वीरतापूर्ण भोग नहीं समझ लिया जाना चाहिए। परम्परा के अज्ञान से किसी एक वाक्यांश को सार्वभौम कथन मान लिया जाना है। जिन्होंने विश्व में नारकीय अशांति फैलाई, वे साम्राज्यवादी लोग भारतीय अर्थों में वीर नहीं थे, कायर थे, विकृत थे।

अत: भारतीय अर्थ-चिन्तन इस प्रकार का पापिष्ठ '**वीर**' (यानी विकृत रुग्ण) बनने की प्रेरणा राज्यकर्ताओं को कभी नहीं देता, यह स्मरण रखना आवश्यक है। राज्य एवं प्रजा सभी को धर्ममय वीर बनने की ही यहाँ प्रेरणा दी गई है।

ज्ञानबल, कोश-बल, विक्रम-बल: त्रिविध-बल

भारतीय अर्थ-चिन्तन में तीन शक्तियों पर बल है, जैसा अर्थशास्त्र में कौटिल्य कहते हैं - " शक्तिस्त्रिविधा। ज्ञानबलं मंत्र शक्ति :, कोशबलं प्रभु शक्ति:, विक्रमबलम् उत्साहशक्ति:। "

महाभारत (आश्रमवासिक पर्व), कामन्दकीय नीतिसार, नीतिवाक्यामृत, सरस्वतीविलास आदि में भी यही निरूपण है। तदनुसार अर्थशक्ति त्रिविध है- मंत्र शक्ति यानी ज्ञान-बल, प्रभु (प्रभाव एवं प्रभव) शक्ति यानी कोष-बल तथा उत्साहशक्ति यानी विक्रम-बल। कोश-बल या कोष-बल में सैन्य-बल भी सम्मिलित है, ऐसा कामन्दक ने स्पष्ट किया है। उत्साह एवं उत्थान राज्यकर्ता का प्रथम गुण कहा है। महाभारत कहता है- 'वृद्धों (वृद्धि-प्राप्त ज्ञान सम्पनों) के वचनानुसार जो उत्थान में लगता है, वह यथाशीघ्र सम्यक फल पाता है। उत्साहपूर्ण कर्म ही राजधर्म का मूल है।' कौटिल्य ने यह भी स्पष्ट किया है कि उत्साहशक्ति से प्रभुशक्ति महत्तर है तथा प्रभुशक्ति से भी महत्तर है मंत्रशक्ति यानी ज्ञान-बल। उपाय का तथा धर्माधर्म-विवेक का ज्ञान ही मंत्रशक्ति है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इष्टापूर्त एवं दान

स्थानीय स्वशासन धर्ममय विधि से चले, यह देखना भी राजधर्म है। इसी प्रकार राजकीय कोष की समृद्धि ही नहीं, समाज में इष्टापूर्त की परम्परा और दान की परम्परा को प्रवाहित, संरक्षित एवं संवर्धित रखना भी राजधर्म का अनिवार्य अंग है। अर्थ-संबंधी अधिकांश व्यवस्थाएँ श्रेष्ठ स्थानीय स्वशासन से, इष्टापूर्त-परम्परा से तथा दान-परम्परा से भलीभांति होती रहती हैं।

'इष्टापूर्त' ऋग्वेद का पद है।[36] जो यज्ञ के लिए दिया गया है, वह इष्ट है। जो समाज के अभाव की पूर्ति के लिए किया जाए, वह पूर्त है। वैश्वदेव कर्म, अतिथि-सत्कार एवं यज्ञीय दान इष्ट हैं। सार्वजनिक उद्यान (आराम), देवमन्दिर, कूप, वापी, तालाब, जलाशयों आदि का निर्माण कराकर लोकहितार्थ उनका समर्पण पूर्त है। रोगियों, दु:खियों की सेवा, अन्नदानादि भी पूर्त है। महाभारत में इष्ट एवं पूर्त की सम्यक व्याख्या है। इष्ट एवं पूर्त सामान्य धर्म हैं यानी मुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि या तो इश्ट एवं पूर्त दोनों करे या पूर्त कर्म अवश्य करे। इष्ट-कर्म सब नहीं कर सकते। परन्तु यथाशक्ति पूर्व कर्म सभी का कर्त्तव्य है। यज्ञीय दान नित्य इष्ट कर्म है। लोकहितार्थ दान पूर्त कर्म हैं। किसी प्रयोजन विशेष से दान काम्य दान कहलाता है। विशेष पर्वों, अवसरों-विवाह, ग्रहण आदि पर दिया गया दान नैमित्तिक दान है। कुएँ, बावड़ी आदि का लोकार्थ समर्पण ध्रुव दान है। सात्विक, राजसी एवं तामसी- ये दान के त्रिविध वृत्ति-भेद हैं।[37]

'दानधर्म' की महाभारत में, धर्मसूत्रों में तथा स्मृतियों में विशद विवेचना एवं महत्ता है। दान के प्रकार, दान के सुपात्र एवं कुपात्र, स्वीकार्य एवं अस्वीकार्य दान, देय तथा अदेय पदार्थ, दान के विविध समय (काल), दान के स्थल, दान के देवता, दान की विधियाँ, दान की दक्षिणा, प्रजा द्वारा दान, राजा द्वारा दान आदि पर विशाल साहित्य भारतीय परम्परा में है। वह सब अर्थ-चिन्तन का ही अनिवार्य एवं अतिमहत्वपूर्ण अंग है।[38]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कपिला गौ का दान, स्वर्णदान, अश्वदान, भूमिदान, घर बनाकर दान देना, कन्यादान, तिलदान, सहस्त्रगौओं का दान, स्वर्णपात्र का दान, रत्नदान आदि को महादान कहा गया है (कुल 16 प्रकार के महादान विशेषत: वर्णित है)। महादानों की विधि अलग से विस्तार में पुराणों में वर्णित है। इसी प्रकार गोदान की महिमा स्मृतियों एवं पुराणों में वर्णित है। पशुओं, पुस्तकों आदि के दान भी प्रशंसित हैं। आरोग्यशालाओं की स्थापना की बड़ी महिमा है। यह सब अर्थ-चिन्तन का अंग है। पूर्त-कर्म के रूप में कपों, वापियों, तड़ागों, पुष्करिणी एवं अन्य विविध जलाशयों का निर्माण तथा लोकहितार्थ उत्सर्ग भारतीय अर्थ-चिन्तन में विशेषत: महत्व रखते हैं। वृक्षारोपण भी पूर्त-कर्म है। महाभारत, मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रों में वृक्षों की सेवा का महत्व गाया गया है। इसी प्रकार वाटिका एवं सार्वजनिक बड़े बागीचे (आराण) के निर्माण कराकर लोकहितार्थ उत्सर्ग करने की महिमा गाई गई है। इसी प्रकार देव-प्रतिष्ठा एवं मंदिर निर्माण की प्रभूत महिमा है। मंदिर और मठ सार्वजनिक सांस्कृतिक जीवन, विद्या, उत्सव, संस्कार-प्रशिक्षण एवं आनन्दवर्धन के केंद्र होते रहे हैं।[39] अत: भारतीय अर्थ-चिन्तन में इनका विशेष स्थान है।

संक्षेप में यही है, भारतीय अर्थ-चिन्तन का स्वरूप। विदेशियों द्वारा लादी गई शर्तों के अनुसार उत्पादन तथा प्रबंध में राज्यकर्ताओं का डूबे रहना भारतीय अर्थ-चिन्तन एवं धर्म-चिन्तन की दृष्टि से अनुचित है।

अर्थशास्त्र एवं दंडनीति परस्पर सम्बद्ध हैं

समाज के प्रति सुरक्षा एवं न्याय -व्यवस्था तो मुख्य राजधर्म है ही, प्रजारक्षण सम्बन्धी अन्य धर्म भी राजधर्म का अंग हैं। परन्तु मुख्य राजधर्म है- समाज में धर्म को खंडित या क्षतिग्रस्त करने वालों, अधर्म एवं अमर्यादा फैलाने वालों के लिए दंड व्यवस्था। दंडनीति ही प्रधान नृपनीति है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि राज्यकर्ता अपनी मनमर्जी से नयम बनाकर उनके उल्लंघन पर दंड दें, अपितु धर्मोल्लंघन के लिए ही दंड देना दंडनीति है। मनमाना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दंडविधान तो पापाचार है। विदेशी एवं विधर्मी विधान-परम्परा का अंधानुसरण भारतीय दृष्टि से अधर्माचरण एवं पाप-कर्म ही है।

अर्थशास्त्र एवं दंडनीति परस्पर सम्बद्ध हैं। कामसूत्र में वात्स्यायन ने कहा है कि शिक्षा, भूमि, पशु, धान्य, बर्तन एवं उपकरण तथा वांछित समस्त भोगृ-विषयों का परिवर्धन, मित्रों का परिवर्धन तथा पारलौकिक कल्याण एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की व्यवस्था ही अर्थ पुरुषार्थ है। इन सबकी वृत्ति का निरूपण अर्थशास्त्र है। इस अर्थ-समृद्धि यानी विविध समाजकार्यों की सिद्धि और उत्कर्ष के लिए शासन एवं दंड-विधान दंडनीति है।

धर्म-सधना के लिए ही है अर्थ का महत्व

अर्थशास्त्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवन-लक्ष्य धर्म को माना गया है। धर्म-साधना के लिए ही अर्थ का महत्व है। परन्तु राजधर्म यति-धर्म नहीं होता। वह ब्राह्मण-धर्म से भी भिन्न है। **मनुस्मृति के जिस 'दशकं धर्मलक्षणम्'** (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध) की इधर बहुत चर्चा हुई है, उसे सम्यक सन्दर्भ से हटाकर प्रस्तुत किया जाता है। वे वस्तुत: गृहस्थ ब्राह्मणों के लिए विशेष साध्य हैं तथा सामान्यत: सभी सद्गृहस्थों द्वारा अपने विशेष कर्त्तव्यों के साथ ही वे साध्य हैं।

राजधर्म की विलक्षणता

राजधर्म इस ब्राह्मण-धर्म, द्विजधर्म तथा गृहस्थ धर्म से विशिष्ट, भिन्न एवं विलक्षण है। सर्वतेजोमय रहना, शासन करना, सबकी रक्षा करना एवं अधर्म को दंडित करना राजधर्म है। जगत में सब अपना-अपना भोग भोगें, दूसरे का भोगांश न छीनें, इसके लिए दंड-भय अत्यावश्यक है (दण्डस्य हि भयात् सर्वं जगद् भोगाय कल्पते- मनुस्मृति 7/22)। दंडनीति दूषित हो तो समस्त समाज दूषित हो जाता है। अत: राज्यकर्ता की वाणी तो मधुर एवं विनम्र होना कर्त्तव्य है, परन्तु हृदय तीक्ष्ण एवं तेजस्वी रहना चाहिए (शांतिपर्व)। दुष्ट से या शत्रु से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
किसी कारण विनम्र व्यवहार करना पड़े तो काम हो जाने पर उसे क्षत-विक्षत कर देना राजधर्म है, जबकि गृहस्थ के लिए यह छल हो सकता है। ध्यान रहे, शठता केवल शठ के साथ ही करणीय है, सो भी राज्यकर्ता द्वारा। शांतिपर्व में भीष्म ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत' राजधर्म के अंग के रूप में कहा है और वहां भी स्पष्ट बल दिया है कि सामान्यत: राज्यकर्ता ऋजु (सरल निश्छल) मार्ग पर ही चले। अत: अपने साथ के और पड़ोस के साधारण लोगों को भी शठ कहकर कोई गृहस्थ यों ही 'शाठ्यम्' करने लगे तो यह स्वयं उस गृहस्थ व्यक्ति की शठ्ता ही कही जाएगी, धर्म नहीं। ऐसी शठता इसीलिए राज्य द्वारा दंडनीय है। परन्तु राज्यकर्ताओं को स्वधर्म-सम्पादन के लिए छल एवं शठत्व की छूट है।

विद्या, यज्ञ एवं दान का रक्षण, संवर्धन एवं व्यवस्था राजधर्म है। प्रजापालन परम राजधर्म है। राज्य के शत्रुओं को युद्ध, छल-घात, कूटनीति एवं नय के द्वारा हराना राजधर्म है। दुष्टों को दंड देना एवं न्याय करना राजधर्म है। राष्ट्र, दुर्गों कोश, मंत्रिगण एवं सैन्यबल सहित स्वयं प्रधान शासक-इन सप्तांगों का संरक्षण, संवर्धन, पोषण एवं समृद्धि राजधर्म है। भारत के तीनों प्रमुख वेदों एवं धर्म परम्पराओं का गहन ज्ञान, आन्वीक्षिकी का ज्ञान, वार्ताशास्त्र का ज्ञान एवं दंडनीति का ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक राजधर्म है। अत: मंत्रियों, सांसदों, प्रशासकों एवं विधायकों को इसका ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिए। तभी वे भारतीय अर्थ-चिन्तन का पोषण कर सकते हैं। बिना विद्या से अर्जित अनुशासन के दंडनीति की पात्रता नहीं आती। वार्ता की चिन्ता न की जाएगी तो राष्ट्र नष्ट हो जाएगा और वार्ता का ज्ञान श्रुतियों तथा शास्त्रों के ज्ञान पर ही संभव है, यह वाल्मीकि रामायण (अयोध्या कांड) तथा महाभारत (शांतिपर्व एवं सभापर्व) में सुस्पष्ट प्रतिपादित है। वार्ता का अर्थ है-कृषि, वाणिज्य, व्यापार, शिल्प, पशुपालन, खानों का उपयोग आदि। इस प्रकार वार्ता का अर्थ है आर्थिक व्यवस्था। कृषि, पशुपालन एवं शिल्प संवर्धन पर महाभारत, मनु, कौटिल्य, याज्ञवल्क्य आदि ने तथा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुराणों ने विशद विमर्श किया है। राजधर्म के पालन द्वारा ही राज्यकर्ता को मोक्षसिद्धि होती है। अतः राज्यकर्ताओं के लिए राजधर्म एवं मोक्षधर्म परस्पराश्रित है, परस्पर भिन्न नहीं।

व्यवहार : राजधर्म

निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी को दंड देना राज्य के प्रमुख कार्यों में से है।[40] लोगों के विवादों को निपटाने की न्यायपूर्ण व्यवस्था राजधर्म है। मनुस्मृति ने न्याय-शासन को ही धर्म का पर्याय कहा है।[41] याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि निष्पक्ष न्याय से वही फल मिलता है, जो पवित्र वैदिक यज्ञों से मिलता है।[42] मनु कहते हैं कि जिस राज्य में नरपराधी दंडित हों व अपराधी छूट जाएँ, उस राज्य के राज्यकर्ता पापी हैं तथा नरक में पड़ेंगे।[43] रामायण एवं महाभारत दोनों में राजा ने न्याय-व्यवस्था करने कहा गया है। इसीलिए व्यवहार पदों पर हमारे यहाँ विस्मृत विचार हुआ। धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन ये चार किसी भी विवाद में अंतिम निर्णय के पाद हैं। अइभयोग, उत्तर परीक्षण, क्रिया एवं निर्णय ये चार न्याय प्रक्रिया के चरण हैं। इन सबकी सम्यक व्यवस्था भी अर्थ-चिन्तन का अंग है। इस तरह भारतीय अर्थ-चिन्तन-परम्परा अति विस्तृत, गंभीर, व्यावहारिक एवं फलप्रद है।

स्पष्ट है कि भारतीय अर्थ-चिन्तन का आधार भारतीय दृष्टि एवं भारतीय धर्म-परम्परा के अंग के रूप में ही होगा। इस विषय में कुछ स्पष्टताएँ आवश्यक हैं। भारतीय बौद्धिक परम्पराएँ बहुत समय से यथोचित रूप से प्रतिष्ठित नहीं रही हैं, इसलिए ये स्पष्टताएँ अपेक्षित हैं।

•••

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. पातंजल योगदर्शनम्, साधन पाद-30 का व्यास भाष्य, पहली पंक्ति- 'तत्र अहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोह:।'
2. मनुस्मृति, 2/224
3. मनुस्मृति, 6/35, 36, 37
4. उपर्युक्त, 6/39
5. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, 2/2
6. पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय खंड अध्याय 7 (हिन्दी अनुवाद, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रकाशित) तृतीय संस्करण 19821
7. मनुस्मृति, 7/130, विष्णुधर्मसूत्र, 3/22-23, गौतम धर्मसूत्र 10-24
8. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, 5/2
9. उपर्युक्त।
10. वही।
11. महाभारत, शांतिपर्व 88/29-30
12. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् 2/1 से 28
13. काणे-पूर्वोद्धृत, खंड 3, अध्याय 7
14. काणे- पूर्वोद्धृत, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-2, अध्याय 25
15. वही, खंड-3, अध्याय 7
16. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, 2/1
17. काणे- पूर्वोद्धृत, खंड-3, अध्याय 7
18. वही।
19. वही।
20. वही।
21. वही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

22. वही।

23. वही।

24. वही।

25. विष्णुधर्मसूत्र, 3/55

26. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, 2/21, शुक्रनीति, 4/2/129 इत्यादि।

27. बृहत्पाराशर, 10

28. काणे-पूर्वोद्धृत, खंड-3, अध्याय 8

29. जैमिनि पूर्वमीमांसा सूत्र, 3/7/3, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/318 एवं 2/114, मनुस्मृति, 7/130-32 तथा 8/39 एवं 9/44

30. महाभारत, शांतिपर्व 71/10, मनुस्मृति, 7/128/133 तथा 10/119-120 इत्यादि।

31. काणे-पूर्वोद्धृत, खंड-3, अध्याय 7, कोश (5)

32. वहीं।

33. वहीं।

34. बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/4

35. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकांड, सर्ग 18, श्लोक 28 से 40 द्रष्टव्य।

36. ऋग्वेद 10/14/8, अथर्ववेद 2/12/4 भी द्रष्टव्य।

37. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 17, श्लोक 20, 21 एवं 221

38. महाभारत, उद्योग पर्व 30/60, अत्रिस्मृति, 44 वाँ एवं 46 वाँ श्लोक , साथ ही 'दानमयूख' ग्रंथ द्रष्टव्य।

39. एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द 1 तथा जिल्द 6 एवं जिल्द 18 विशेषतः द्रष्टव्य।

40. महाभारत, शांतिपर्व 68/1-4, मनुस्मृति, 7/144, रघुवंशम् 14/67, राजनीतिप्रकाश, पृष्ठ 254-255, शुक्रनीतिसार, 1/14, विष्णुधर्मोत्तर, 3/323/25-26

41. मनुस्मृति 8/1-3 तथा 8/12 एवं 24

42. मनुस्मृति 8/1-3 तथा 8/12 एवं 24

43. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/359-360

●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by NKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय- 9

हमारी समस्या

अब तक के विवेचन से यह सम्भवत: स्पष्ट हो रहा होगा कि अल्पविकास की हमारी समस्या की जड़े कहाँ हैं?

यह एक पीड़ाप्रद तथ्य है कि इन जड़ों को भली-भांति देख परखकर अपने राष्ट्र के विकास की दिशा में गम्भीरतापूर्वक कदम बढ़ाने का कोई प्रयास आज तक किया ही नहीं गया है। क्योंकि वास्तविक विकास की दिशा में बढ़ना केवल तभी सम्भव है, जब हम इस वर्तमान शोषणपरक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से अपने को अलग कर लें। परन्तु वह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था तो यथावत है और सदृढतर होती जा रही है। उसके अंग के रुप में हम 'विकसित होने की हजारो कोशिशें का नतीजा यह रहा है कि योजना के हमारे मॉडल और विकास के हमारे प्रयास-दोनो का ही एकमात्र परिणम यह रहा है कि हमारा सत्त्व तथाकथित विकसित देशों द्वारा निचोड़ा जाता रहे- यह प्रक्रिया हमने निरन्तर सुगम बनाई है। उस प्रक्रिया को रोकने की दिशा में हमारे यहाँ कोई विचार तक अनुपस्थित है।

अपनी मूलभूत समस्याओं में से एक का भी समाधान हल नहीं कर पाए हैं। सभी क्षेत्रों में, सभी मोर्चों पर हम बुरी तरह विफल हुए हैं। चाहे वह गरीबी की समस्या हो, चाहे बेरोजगारी की या मुद्रास्फीति की अथवा विदशों पर हमारी निर्भरता बढ़ते जाने की समस्या हो एक का भी समाधान हम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कर नहीं पाए हैं। 1947 में हमने राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त की परन्तु आर्थिक स्वाधिनता हम आज तक नहीं प्राप्त कर सके हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से (1984 में) 4 अरब डालर का कर्जा स्वीकार कर हमारी स्वाधीन भारत सरकार ने भारत की अर्थव्यवस्था को विकसित देशों के यहाँ रेहन रख दिया है। इससे भारत की भावी पीढ़ियों का भविष्य कीलित ही हो गया दिखता है।

पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र ऐसे राष्ट्रीय विवरणों से भरे परे हैं जो हमारी आर्थिक विषमता की दु:स्थिति को दर्शाते हैं। स्वयं सरकारो प्रकाशन, योजना- आयोग के समय समय पर प्रसारित दस्तावेज तथा भारतीय रिजर्व बैंक के बुलेटिन यदि गहराई से जांचे-परखे जाएँ तो वे स्वाधीन भारत की सरकारों पर गम्भीर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ नजर आते हैं। कई गम्भीर अर्थशास्त्री एक अरसे से इस जांच पड़ताल में जुटे हैं कि हमने देश को आर्थिक विकास की जो दिशा बताई एवं जो कदम सुनाए, उनमें चूक कहाँ हुई, गलती क्या रही। परन्तु हमारी अर्थ-व्यवस्था तो औपनिवेशिक ही बनती चली जा रही है। कारण यह है कि हमारे प्रसिद्ध व अधिकृत अर्थशास्त्री, राजनेता एवं नीति निर्माता अभी भी ' उन्नत''प्रचुरतामय''आधुनिक' अर्थव्यवस्था की धटना के प्रति मुग्ध-लुब्ध ही नजर आते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो फिर औद्योगिक विकास के नाम पर ऐसे ही उद्योग क्यों लगातार बढ़ाए जा रहे हैं जो न तो आधारभूत ढांचे के निर्माण में सहायक हैं, न ही देश के उपयोगकर्त्ताओं की अनिवार्य जरुरतों, की पूर्ति में सहायक हैं।

उन कुछ क्षेत्रों में जहाँ हमने ऐसे बड़े उद्योगों को स्थापित किया भी जिनकी हमें जरूरत थी, आखिर हमने ऐसी तकनीक क्यों अपनाई जो संसाधनों की हमारी सम्पदा एवं समृद्धि को पूरी तरह अनदेखा करने वाली तकनीकें थी। वह भी तब, जब हमें अंतर्राष्ट्रीय बाजार में ही ऐसी वैकल्पिक प्रौद्योगिकी/तकनीकें सरलता से सुलभ थीं जो हमने परिवेश के अनुरूप भी थीं और जिनके भुगतान की स्थिति से बच सकते थे।

उदाहरणार्थ, जैव गैस (बायो-गैस) की प्रौद्योगिकी का मामला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लें। खाद्य पदार्थों के उत्पादन पर आग्रह के चलते सरकार ने लगातार रासायनिक उर्वरकों के उपयोग पर बल दिया। जबकि स्वाधीनता के बाद भी वर्षों मे भारतीय किसान रासायनिक उर्वरकों का आत्मत्य प्रयोग कर रहे थे अतः कीटनाशकों का भी प्रयोग बहुत कम कर रहे थे और अपनी खेत में उन मशीनों का भी प्रयोग बहुत ही कम कर रहे थे जो तथाकथित विकसित देशों के कृषि-व्यवसाय की अपेक्षाओं की पूर्ति में सहायक चीजों के उत्पादन में विशेष सहायक हों। परन्तु 'हरित क्रांति' का अभियान चलाकर स्थिति उलट दी गई। इसमें ऐसी नई कृषि-प्रोद्यौगिकी को बढ़ावा दिया गया जो खेति में आधुनिक मशीनों और रसायनों के प्रयोग पर बल दें। इस 'हरित क्रांति' को बढ़ावा दिया विकसित देशों के बड़े बहुराष्ट्रीय व्यापारियों से जुड़े प्रतिष्ठानों ने। फलस्वरूप भारत में और अन्य तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों में कृषि-रसायनों का एवं खेती की आधुनिक मशीनों का बाजार कई गुना फैल बढ़ गया। इससे उन विदेशी कम्पनियों का धंधा भारत में तेजी से फूला-फला जो कृषि-रसायन, कृषि-यंत्र, कृषि-संयंत्र तथा आधुनिक खेतिहर तकनीकी की बिक्री का व्यवसाय कर रही थीं। (द्रष्टव्य-भारत डोगरा, ईथिक्स ऑफ ट्रांसफींग जेनेतिक रिसोर्सेज, इकानामिक एंड पालिटिकल वीकली, 16अगस्त 1986)। सर्वविदित है कि रासायनिक उर्वरक या तो विदेशी कम्पनियों या विदेशी सहयोग से चल रही कम्पनियों के रासायनिक संयंत्रो द्वारा ही उत्पादित हो रहे थे। हमारे सुरक्षित विदेशी मुद्रा भंडार की एक बड़ी रकम रासायनिक उर्वरकों के आयात में खर्च हुई जो भी रासायनिक उर्वरकों भारत में ही उत्पादित हो रहे हैं, वे भी पेट्रोलियम के आयात पर ही निर्भर हैं जिसका अर्थ हे कच्चे माल के लिए भी हमारी विदेशों पर निर्भरता।

जबकि जैव -गैस प्रौद्योगिकी जो प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की जरूरतों की पूर्ति के लिए विकसित की गई थी, अत्युच्च कोटि की जैविक खाद का भी महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो रही है। सजीव खाद आधार तो है ही, मिट्टी की संरचना को भी बेहतर बनाती है। भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर के प्रो.ए.के एन. रेड्डी ने रासायनिक उर्वरक संयंमों की तुलना में जैव-गैस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संयंमों से मिलने वाले आर्थिक एवं विकासात्मक लाभों का प्रमाणपूर्वक विवरण उपस्थित किया है। उन्होंने दिखाया है कि ग्राम-स्तरीय 26150 जैव-गैस संयंम उतनी ही मात्रा में उर्वरकों का उत्पादन कर सकते हैं जितना उर्वरक कोयले पर आधारित एक बड़ा रासायनिक उर्वरक संयंम पैदा करता है। अंतर यह है कि एक बड़े रासायनिक उर्वरक संयंम निर्माण में 14 करोड़ डालर की लागत आएगी(वर्ष 1986 के अनुमान) और 550 गांवो की जरूरत भर के ईधन के समतुल्य कोयला उसमें खतप होगा। साथ ही इस लागत की आधी (70 करोड़ डालर की) रकम विदेशी मुद्रा में देय होगी। और इस रासायनिक संयंम के लिए तकनीकी जानकारी भी विदेशी से ही आयातित करनी होगी। जबकि उसी के समतुल्य स्थापित होने वाले जैव -गैस -संयंम की(1) लागत साढ़े बाहर करोड़ डालर होगी यानी डेढ़ करोड़ डालर क (2) उसमें विदेशी तकनीकी रगन की कोई जरूरत न पड़ेगी तथा (3) ईधन की खपत होना तो दूर जैव-गैस संयंम ईधन की जरूरतों की पूर्ति करेगा और (4) उक्त रासायनिक संयंम में जितने लोगों को रोजगार मिलेगा जैव-गैसस संयंम में 130 गुना लोगों को रोजगार मिलेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण कार्यक्रम ने भी जैव-गैस संयंत्रों की स्थापना को हार्दिक समर्थन दिया है और रासायनिक उर्वरक संयंत्रों की तुलना में जैव-गैस संयंमों को ही अधिक अच्छा माना है।[1]

स्वाधीन भारत में भी हमने भारतीय उद्यमियों की तुलना में विदेशी कम्पनियों को प्रमुखता देना आखिर क्यों जारी रखा है? सुंदरम एवं दत्ता ने अपनी पुस्तक इंडियन इकॉनामी के पृष्ठ 662 पर कहा है कि भेल द्वारा जो विद्यत जनरेटर बनाए जा सकते थे, ऐसे (निश्चित क्षमता वाले) विद्युत 'जनरेटर्स' का जर्मनी से इसलिए आयात किया गया क्योंकि (क) अंतर्राष्ट्रीय उद्यमियों ने 'सौम्य ऋण एवं विदेशी सहायता का वायदा किया तथा (ख) विदेशी पक्ष से सौदेबाजी के दौरान भारतीय अफसरों को 'कतिपय' लाभ प्राप्त हो सके।

1986 में इकानामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली में छपी एक रिपोर्ट में बताया गया कि किस प्रकार विगत ढाई वर्षों में राजनेताओं के संरक्षण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारत के औद्योगिक क्षेत्रों के प्राथमिकता वाले तथा राजनैतिक महत्व वाले क्षेत्रों में प्रवेश पाने में सफलता पाई। यह सब 'आधुनिकीकरण के नाम पर किया गया (वेस्टलैंड, निपन, स्टील, पेप्सीकोला जैसे नाम तो अखबारी सुर्खियों में छाए रहे हैं, पर बहुतेरी और भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हैं जो बिना शोर के लगातार भारत में गहरे पैठती-फैलती जा रही है)। ये प्रयास अब केवल शीर्षस्थ राजनेताओं और अफसरों के द्वारा ही नहीं सफल हो रहे हैं वरन् संयुक्त राज्य अमरीका में बसे अनिवासी भारतीय इसमें बड़े सहयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

इस समस्त घटनाचक्र के पीछे का यथार्थ बहुत लज्जाजनक एवं अकीर्तिकर पहलुओं को समेटे है। उक्ट रिपोर्ट बताती है कि अनिवासी भरतीयों ने 'मैंनेजमेन्ट एण्ड टेक्नालाजीज इन्टरनेशनल इन्कारपोरेशन' ('एस टी आई' प्रबन्ध एवं प्रौद्योगिकी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थापन) नामक एक कम्पनी बनाई है। योजना आयोग के एक पूर्व सदस्य तथा इंजीनियर इंडिया लि. के अध्यक्ष एम.एस. पाठक की इस कम्पनी में 51 प्रतिशत की हिस्सेदारी (शेयर होल्डिग) है। भेल, सेल, तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, राइटेस, इरकॉन, ई.आई.एल., सी.आई.एल. एवं सार्वजनिक क्षेत्र की अन्य अनेक कम्पनियों को भारत शासन ने निर्देश दिया है कि वे कम्पनियॉ उक्त कम्पनी 'एम टी आई' के साथ संयुक्त व्यापार का जोखिम उठाएँ। इस साझेदारी में 51 प्रतिशत शेयर- आधार कम्पनी का ही होगा। बताया गया है कि जब उक्त 'एम टी आई' अस्तित्व में ही नहीं आई थी, तभी इन भारतीय सार्वजनिक क्षेत्रीय कम्पनियों ने उसके साथ एक अनुबंध-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए थे। लोकसभा में बहस के दौरान यह बात उजागर हुई। प्रौद्योगिकी के आयात के नाम पर आधुनिकीकरण की आड़ में ऐसे-ऐसे अनेक कार्य हो रहे हैं जो स्वदेशी अनुसंधान एवं स्वदशी विकास की सम्भावनाएँ नष्ट कर रहे हैं।

'उन्नत बीजों के आयात के सन्दर्भ में भी ऐसे ही तथ्य सामने आए हैं। पूर्वोद्धृत अंक में अपने एक लेख में भरत डोगरा बताते हैं- विदेशी वैज्ञानिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत में रोगकारक किस्मों की धान के बीज भेजते रहे हैं। ....भारत के उच्च पदस्थ अफसरों-नेताओं से इन विदेशी वैज्ञानिकों के घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इन सथर्कों के कारण ये विदेशी वैज्ञानिक भारत में बड़े पैमाने पर रोगकारक या रोगों की सम्भावनाओं वाले धान-बीजों का आयात करवा सकें। भारत के प्रतिभाशाली, परिश्रमी वैज्ञानिकां द्वारा सतत अध्यवसायपूर्वक जो रोगरोधी धान-किस्में पहचानी और चुनी गई थीं वे उपेक्षित पड़ी रही और आयातित किया गया इन रोग-उन्मुख किस्मों को। एक भारतीय वैज्ञानिक ने धान की किस्मों की विशाल संख्या का एक जीवाणु-कोष ही संग्रहीत कर लिया था। जब उस वैज्ञानिक ने आयात की उक्त अनुचित नीति के पक्ष में झुकने से इन्कान कर दिया तो विदेशी रबावों द्वारा उस भारतीय वैज्ञानिक का भविष्य नष्ट कर डाला गया। उसे अपने पद से हटा दिया गया और धान को किस्मों का वह बहुमूल्य संग्रह विदेशों के कब्जे में पहुँच गया। रासयनिक खाद का उत्पादन तीव्र करने के एक सघन कार्यक्रम के नाम पर पाठक ने जापान की तोयो कम्पनी से निजी स्तर पर सौदेबाजी की। भारत में रासायनिक उर्वरक संयंमों की स्थापना के लिए सहयोग एवं ऋण प्राप्त करने के लिए तोयों कम्पनी से हुई यह सौदेबाजी 1970 के दशक की शुरूआत में चर्चा में आई थी। बाद के वर्षों में यह सौदेबाजी व्यापक हुई और कलुषित आयामों तक जा पहुँची। (द्रष्टव्य-14 जनवरी 1986 के ई.पी.डब्लू. में बलराज मेहता का लेख 'परामर्शदाता' के नाम की आड़ में विदेशी तकनीको के दलाल')

दुर्लभ राष्ट्रीय प्राकृतिक-संसाधनों का, जिनके नवीनीकरण की प्रक्रिया सहज गतिशील नही रहती -हमने ऐसी स्थिति में व्यापक खनन और दोहन क्यों होने दिया, जब हमारी अपनी आर्थिक वृद्धि के लिए उनके खनन की कोई योजना हमारी थी ही नहीं? क्या केवल विदेशी मुद्रा पाने के लिए इन दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा प्रचंड खनन आवश्यक था? क्या इस प्रकार हमने अपने बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों की उस यूरोप -अमरीका को नीलामी नहीं कर दी जो स्वयं फिजूलखर्च देश हैं और विश्व भर के संसाधनों की बर्बादी अपने तात्कालिक सुख-विलास के लिए कर रहे है। 'आर्थिक वृद्धि के इंजन में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यापार के उपयोग द्वारा विदेशी मुद्रा भंडार का संग्रह करने को अच्छा मान लिया गया और इसी के लिए उन दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का खनन कर उन्हें बेच डाला गया, यह कहाँ तक न्यायपूर्ण था। राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों की बिक्री द्वारा विदेशी मुद्रा कमाना किस विकास वृद्धि का अंग है।

अपनी पुस्तक 'इनसाइड द थर्ड वर्ल्ड' में पाल हेरिसन लिखते हैं:- उत्तरी अमरीका और पश्चिमी यूरोप मिलकर समस्त संसार के अश्मीभूत ईंधन के आयात का दो तिहाई हिस्सा स्वयं खपत करते हैं। कच्चे खनिज तथा लौह एवं इस्पात के विश्व-आयात का तीन चौथाई हिस्सा इनके यहाँ खपत होता है और गैर -लौह धातुओं तथा अधातुओं का चार पंचमांश ये स्वयं खपाते हैं। 1975 में विश्व की कुल ऊर्जा खपत का आधे से अधिक हिस्सा यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका ने अपने यहाँ जलाकर फूँक उड़ाया।[2]

उक्त अवधि में यूरोपीयों ने प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 4000 किलो कोयले के समतुल्य ईधन खर्च किया उत्तरी अमरीकियों ने 11000 किलो कोयले के समतुल्य प्रति व्यक्ति वर्ष ईधन खर्च किया। जबकि लैटिन अमेरिका में प्रति व्यक्ति खपत का औसत 813 किलो कोयले का समतुल्य ईधन रहा एशियाई देशों का औसत 545 किलो प्रति व्यक्ति रहा और अफ्रीकी देशों का औसत मात्र 395 किलो कोयले का समतुल्य प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रहा। इससे स्पष्ट है कि विश्व के ससाधनों के लिए किसकी आबादी आज सबसे बड़ा खतरा बनी हुई।

हमारे देश की औद्योगिक प्रगति एवं वृद्धि के लिए जिन वस्तुओं के आयात की कोई आवश्यकता ही नहीं थी और जो उपयोग्य वस्तुएँ भिन्न ब्रान्डों एवं नामों से भारत में पहले ही प्रचुरता से सुलभ थीं और जो भारतीय उद्यम के द्वारा देश के भीतर ही उत्पादित की जा सकती थीं, उन वस्तुओं का विदशों से आयात हमने क्यों जारी रखा? आयातित वस्तुओं की सूची से वे वस्तुएँ हटाई क्यों नहीं गई? जो विदेशी मुद्रा इतनी बहुमूल्य है कि उसे पाने के लिए आप अपनी धातुएँ व आधातुएँ खदानों से खोद-खोदकर विदेशों को बेच

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे हैं, यह जानते हुए भी कि ये प्राकृतिक संसाधन सामान्य प्रक्रिया में नवीनीकृत होने वाले संसाधन नहीं है (यानी ये गए तो शताब्दियों के लिए गए), वही विदेशी मुद्रा आप ऐसी चीजों के आयात में क्यो फूँक रहे हैं जो चीजें देश के भीतर सुलभ हैं या सुलभ हो सकती हैं?

उपयोग्य वस्तुओं का जो उद्योग है, वहाँ मुनाफे की दर बहुत अधिक है। उस क्षेत्र में भी हमारे देश में स्वदेशी उद्यमों को हतोत्साह किया जाता है और विदेशी नाम ही प्रचारित हैं एवं प्रसिद्धि उन्हें ही दी गई है। बाटा नामक विदेशी कम्पनी के कारण जूता बनाने के उद्योग के क्षेत्र में सैकड़ों - हजारों जूता निर्माता बाजार में जगह ही नहीं पा रहे है। एक साधारण पीड़ानाशक ओषधि के क्षेत्र में एस्प्रो, एनासिन, सेरिडोन, क्रोसीन, एनाल्सिन तथा दर्जनों अन्य विदेशी नाम छाए हुए हैं। एंटीबायोटिक तथा अन्य सामान्य ओषधि के क्षेत्र में भी ऐसे ही दृष्टान्त भरे पड़े हैं। एक ही सामान्य टूथपेस्ट बिनाका, कोलगेट, मैकलीन्स, फोरहेन्स आदि दर्जनों नामों से प्रचारित हैं। टेलक्म पाउडर एक ही है, वही पॉन्डस, जॉन्सन्स, कॉलगेट, कटीकर्टा इत्यादि ब्रान्ड नामों से प्राचारित है। सौम्य पेयों के क्षेत्र में भी कोकाकोला, फेन्टा जैसे विदेशी नाम ही छाए हैं। भारत के गांव -गांव में जो तम्बाकू सुलभ हैं, वही ऊँचे दामों पर विल्स, केप्टेन, सिजर्स, बर्कले, रेड एण्ड व्हाइट आदि ब्रांड नामों से विशिष्ट उत्पादन के रूप में प्रचारित है। बोर्नविटा, काम्प्लान, पैरेक्स, केडबरीज, पेटज लिप्टन्स, नेस्कैफे, लीबर, रेकसोना, लक्स आदि सैकड़ों विदेशी उत्पादन आज भारत में घर-घर में उपयोग की वस्तुएँ बने हैं। इनमें वही विदेशी मुद्रा वर्षों से लुटाई जाती रही है जो दुर्लभ प्राकृतिक संसाधन बेच-बेचकर जुटाई गई थी।[3]

अपनी प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के विकास के लिए हमने विदेशों से आखिर उस प्रौद्योगिकी का आयात क्यों किया, जिसके प्रतिकूल प्रभावों की जानकारी सबको थी, जिसमें प्रति यूनिट उत्पादन-लागत बहुत ऊँची थी और जो विदेशों पर हमारी निर्भरता को एक अत्यंत महत्वपूर्ण अर्थ में और भी अधिक बढ़ाने वाली थी? उदाहरणार्थ उन्नत बीजों की प्रौद्योगिकी का प्रकारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लें। बताया गया था कि यह प्रौगिकी भारत के खाधान्न उत्पादनों को बहुत अधिक बढ़ा देगी और तब भारत खाधान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जाएगा। परन्तु यदि निवेश और निर्गत की लागत का विश्लेषण आयतित निवेशों की लागत को सम्मिलित करते हुए किया जाय (केवल आयातित रासायनिक उर्वरकों की लागत भर का नहीं, अपितु ट्रैक्टरों एवं अन्य कृषि यंत्रो कीटनाश में रोगाणुनाशकों, कृषि-रसायनों तथा संबंधित तकनीकी जानकारी आदि सभी का जो इन उन्नत बीजो की उपज के लिए आयातित किए गए) तो खाधान में आत्मनिर्भरता का दावा खोखला और वंचक ही सिद्ध होगा। आधुनिक दौर में उछाले गए कई अन्य जुमलों की ही भांति एक कपटपूर्ण नारा मात्र।

उन्नत कहे जा रहे बीजों के बारे में जो बात अधिक प्रचारित नही है, वह यह कि ये बीज रोगाणुओं एवं विकारों की चपेट में बहुत जल्द आ जाते है और व्यापक स्तर पर प्रभावित होने हैं। फलस्वरूप यदि कोई फसली क्षेत्र इनका अधिक उपयोग करेगा तो वह बरबाद हो जाएगा। यह स्थिति भारत के परम्परागत बीजों से बिल्कुल भिन्न है। हमारे परम्परागत बीजों में तो एक खेत में रोग लगेगा तो अन्य खेत उससे अछूते रहे आ सकते है। परन्तु इन उन्नत बीजों का रोग तो महामारी की तरह पूरे इलाके में फैलता है। साथ ही यह भी है कि यदि किसी एक किस्म का उन्नत खाद्यान्न बीज ऐसी महामारी की चपेट में आया तो उसकी जगह दूसरा उन्नत खाद्यान्न बीज पाने के लिए भारत एवं अन्य विकासशील देशों को विकसित देशों के शोध-संस्थानों का ही मुँह ताकना होगा क्योंकि ऐसे सभी बीज इन शोध-संस्थानों के ही अधीन एवं नियंत्रण में होंगे। जैविक अस्त्रों और जैविक युद्धों के इस दौर में जब खाद्यान्न को हथियारों की तरह प्रयोग में लाया जाता है, बीजों पर नियंत्रण किसी भी राष्ट्र या क्षेत्र की फसलों को नष्ट करने का माध्यम बन सकता है और इस प्रकार उस राष्ट्र को समर्पण के लिए विवश बना सकता है। ऐसी स्थिति में खाद्यान्न के क्षेत्र में तथाकथित आत्मनिर्भरता ऐसी महामारी के एक ही झटके में छिन्न विच्छिन्न हो जाएगी। इन उन्नत बीजों की जो गुणवत्ता है, वह महामारियों के सर्वथा अनुकूल है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस सन्दर्भ में ये कतिपय तथ्य सनसनी फैला देने वाले एवं डरावने हैं-

(1) नई (आयातित) कृषि प्रौद्योगिकी रसायनों के प्रयोग का आग्रह रखती है। अत: एग्रो-बिजनेस के कई प्रतिनिधि विगत दिनों यह योजना बनाते रहे हैं कि बीजों का प्रयोग इस प्रकार से लोकप्रिय बनाया जाए ताकि उनके अपने (द्वारा उत्पादित) कृषि-रसायनों का बाजार फैल सकें। यथा फ्लोरिडा यूनिर्वसिटी (अमरीका) की टमाटर उत्पादकों की एक रिपोर्ट में कहा गया कि वे टमाटर-उत्पादक अपने टमाटरों की पैदावार की ऐसी प्रणाली पर जोर दे रहे हैं जिसमें निश्चित रसायनों का छिड़काव अनिवार्य होगा क्योंकि इस छिड़काव के बाद ही वे टमाटर पकेंगे।

(2) पेट राय मूनी की बहुचर्चित पुस्तक सीड्स आफ द अर्थ (धरती के बीज) बताती है कि वनस्पतियों -पौधों की विविध प्रजातियों का संग्रह करने के लिए बने अंतर्राष्ट्रीय तंत्र तथा बीजों के जनन द्रव्य के संग्रहण के अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क के सन्दर्भ में ये तथ्य ध्यान देने योग्य हैं कि अफगानिस्तान,ईरान और कोरिया में जहां कृषि सम्बन्धी नैसर्गिक विविधताएँ रही हैं, वहाँ अब कृषि में एकरूपता वृद्धि पर है जिसका परिणाम यह होगा कि उन तीनों ही देशों के स्वदेशी गेहूं-बीजों की अधिकांश किस्में जब लुप्त हो जाएँगी तो वे लगभग सभी लुप्त गेहूं -बीज किस्में संयुक्त राज्य अमेरिका से प्राप्त की जा सकेंगी क्योंकि वहाँ वे सुरक्षित संग्रहीत होंगी। पुस्तक बताती है कि केन्या और लीबिया से पौधों की अनेक किस्में विकसित देशों को ले जाई गई और ऐसी रिपोर्टें हैं कि बाद में इन देशों में पौधों की वे स्वदेशी किस्में जब विलुप्त हो गईं तब इन देशों को अपनी उन्हीं स्वदेशी किस्मों के बीज व्यावसायिक दरों से यानी बाजार-दरों पर विकसित देशों से खरीद कर आयातित करने पड़े।

(3) यही सज्जन पेट राय मूनी 'डेवलपमेंट डायलाग' पत्रिका के अंक 1,सन् 1985, में छपे अपने लेख "सीड वार्स ऑव द वर्ल्ड" (विश्व-स्तरीय बीज-युद्धों का विवरण) में बताते हैं (यह लेख "कामर्स" पत्रिका के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2 अगस्त 1986 के अंक में पुन: प्रकाशित हुआ) कि विकसित देशों ने पौधों की 'जेनेटिक रिसोर्सेज' के संरक्षण एवं सग्रहण की जो कई संस्थाएँ बनाई हैं, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था ''इन्टरनेशनल बोर्ड फॉर जेनेटिक रिसोर्सेज '' का नवीनतम चिन्तन इस दावे की धज्जियां उड़ा देता है कि ''जेनेटिक रिसोर्सेज'' का स्थानान्तरण खुले स्तर पर तथा न्यायोचित ढंग से हो रहा है। वस्तुत: यह एक दिखाऊ तौर पर निर्दोष दिख रहा वक्तव्य मात्र है''(भरत डोगरा पूर्वोद्धृत)

(4) ''हरित क्रान्ति '' के बहुप्रचारित सरकारी लक्ष्यों की सचाई रामचन्द्र गुह ने 'इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली के 12 अप्रैल 1986 के अंक में प्रकाशित अपने लेख 'इकॉलॉजिकल रूट्स ऑफ डेवलपमेंट क्राइसिस' में और लन्दन से छपी पुस्तक ''द व्हीट ट्रेप: ब्रेड एंड डेवलपमेंट इन नाइजीरिया'' (गेहूँ का फन्दा: नाइजीरिया में रोटी एवं विकास का एक वृत्तान्त) में भी इसी से मिलते जुलते दृष्टान्त दिए गए हैं जिनसे पता चलता है कि रोटी और विकास के नारे की आड़ में चले गेहूँ के इस फन्दे में मुख्य सहयोगी हैं- संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न निगम, गेहूँ -व्यापारी,मिलमालिक लोग और कृषि--यंत्रों के सेल्समैन तथा उनका गहरा रिश्ता है नाइजीरिया के सरकारी तंत्र से, स्थानीय राजनैतिक अभिजनों से, नाइजीरियाई उद्यमियों एवं व्यापारियों से।

(7) आखिर क्या कारण है कि हरेक बजट में तथा प्रत्येक योजना में संसाधनों में मितव्ययिता तथा संयम बरतने के नाम पर कटौती होती है-विकास-व्यय में। जिसका सीधा असर पड़ता है गरीबी-उन्मूलन की और रोजगार-वृद्धि की योजनाओं एवं कार्यक्रमों पर। जबकि उसी बजट और उसी योजना में प्रशासनिक खर्चे और गैर-प्राथमिकता वाले विकास व्यय निरन्तर अनावश्यक रूप में बढ़ाए जाते रहते हैं (यहाँ हम प्रशासनिक व्यय में रक्षा के मद वाले व्यय को सम्मिलित नहीं कर रहे हैं, उसे बाहर करने पर भी शेष प्रशासनिक-व्यय प्राथमिकता क्षेत्र वाले विकास-व्यय की तुलना में लगातार बढ़ाए जा रहे हैं)।

(8) भारतीय मुद्रा का, विरोधों एवं चेतावनियों की अनसुनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते हुए, बारम्बार अवमूल्यन आखिर क्यों किया जाता है? जबकि इसमें मुद्रास्फीति बढ़ती है, खाद्यान के दाम बढ़ते हैं और गरीब आदमी पर सबसे ज्यादा मार पड़ती है और यह मुद्रा-अवमूल्यन किया जाता है देश की वृद्धि व विकास की दुहाई देते हुए। बताया यह जाता है कि इससे आयात घटेगा और निर्यात को प्रोत्साहन मिलेगा।

(9) हर बार बजट के समय सरकार क्यों कतिपय अत्यन्त विशिष्ट वस्तुओं पर से ही उत्पाद-शुल्क या आयात-शुल्क हटाने या घटाने की घोषणा करती है। (निश्चय ही यह सब ''आम आदमी'' के नाम पर किया जाता है)।[1]

संघनित दुग्ध, डिब्बाबंद सूखी सब्जियों तथा फल (जैसे अनन्नास की फांके), सॉसिज, ग्लूकोज, चूइंग गम, मिठाइयाँ एवं मुरब्बे, चॉकलेट, बिस्कुट, जेम, स्क्वैस, इन्सटैन्ट कॉफी, सॉस (चटनियाँ) तथा 100 लिटर तक की क्षमता वाले छोटे रेफ्रिजरेटर।'' देश के कल्याण के रखवालों ने इन राहतों को 'आम उपभोक्ता के हित' में बताया था।

(10) क्या कारण है कि अपने घोषित लक्ष्यों की सिद्धि की दृष्टि से हमारा रिकार्ड बहुत निराशाजनक है, तब भी अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक हमारी पीठ थपथपाते रहते हैं, आखिर क्यों?

(11) हम लेटिन अमरीकी देशों के अनुभवों से कोई सबक क्यों नहीं सीख रहे हैं? उन देशों में दो अंकों तक मुद्रास्फीति दर का पहुँचना आम बात है। वहाँ विदशी ऋणों को अदा करने की समस्या ने गम्भीर सामाजिक एवं राजनैतिक विघटन पैदा कर दिया है, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की ऋण अदायगी की शर्तो ने विघटन पैदा किए हैं, लिये गए विदेशी कर्जो की किश्तें अदा करने के लिए अनुकूल परिवेश रचने की दृष्टि से जहाँ अत्यन्त दमनकारी आर्थिक उपाय बलपूर्वक लादे जाते हैं और कार्य की अदायगी सुनिश्चित बनाने के लिए वहाँ एक के बाद एक सैनिक तानाशाहियाँ सत्ता में बिठाई जाती रहती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विदेशी ऋणों पर ब्याज अदा करने के मद में अर्जेन्टीना की निर्यात से कमाई गई कुल विदेशी मुद्रा का 52 प्रतिशत प्रतिवर्ष देना पड़ रहा है, बोलिविया में कुल का 57 प्रतिशत, मेक्सिको में 36.5 प्रतिशत, पेरु में 35.5 प्रतिशत, ब्राजील में 36.5 प्रतिशत तथा चिले में 45.5 प्रतिशत।

(12) आखिर ऐसा क्यों है कि जिन (यूरो-अमेरिकी) क्षेत्रों से और उनके द्वारा निर्देशित जिन विधियों से हमने अब तक अपनी समस्या के समाधान तलाशे हैं, उनसे हमारी अर्थव्यवस्था का दम घुट रहा है और वे रास्ते हमारे लिए मन्द विष से घातक सिद्ध हो रहे हैं,तब भी हम वहीं से वे ही विधियाँ एवं प्रक्रियाएँ ग्रहण करते जा रहे हैं, उन्हीं से अधिकाधिक चिपटते जा रहे हैं?

सम्भवत: इसलिए क्योंकि हममें औपनिवेशिक शासन और औपनिवेशिक संरचना के बीच भेद का विवेक बचा ही नहीं। हमने यह विश्वास पाल लिया कि हमारे आर्थिक ठहराव और पिछड़ेपन का मूल कारण था औपनिवेशिक शासन। हमने यह आस्था पाल ली कि राजनैतिक पराधीनता की दशा के कारण हम पर ये शोषणमूलक नीतियाँ बलपूर्वक लादी जा सकीं। फलत: हमने यह आस्था भी पाल ली कि जैसे ही एक बार हम राजनैतिक स्वाधीनता अर्जित कर लेंगे, हमारा औपनिवेशिक आर्थिक शोषण बचेगा ही नहीं। हम अपनी स्वतंत्र आर्थिक नीतियों पर चलने को मुक्त होंगे और अपने देश का जैसा विकास हम चाहेंगे, कर सकेंगे। यह बुनियादी सचाई अनदेखी कर दी गई कि राजनैतिक स्वाधीनता तो हमने पा ली है परन्तु अंतर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक आर्थिक संरचना से हमारी व्यवस्था अभी भी पूर्ववत् जुड़ी बंधी है, हमने उस श्रृंखला से स्वयं को मुक्त ही नहीं किया है। उपनिवेश की प्रत्यक्ष राजनैतिक समाप्ति के बाद की अवधि में भी अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की औपनिवेशिक संरचना न केवल बनी रही अपितु अधिकाधिक प्रचण्डता एवं तीव्रता के साथ वह व्यापक एवं स्थायी बनती गई।

हमारे जो औपनिवेशिक स्वामी थे, वे हम पर से अपनी राजनैतिक पकड़ हटा चुके थे सो उस कमी की भरपाई औपनिवेशिक संरचना के विशदीकरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
एवं स्थायीकारण द्वारा की गई। हाँ, यह अवश्य हुआ कि अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विश्व स्तर पर इसकी राजनैतिक स्वीकार्यता की दृष्टि से इस औपनिवेशिक संरचना में कतिपय संशोधन परिवर्तन किए गए। हमारे नीति निर्माता राजनेता तथा (आश्चर्य की बात तो यह है कि) विद्वज्जन भी इस फन्दे में फंस गए। ऐसा क्यों हुआ। वे बहुत अधिक आशावादी उत्साह में इस जाल में जकड़ते गए या फिर वे इस विषय में सचमुच भोंदूपन की हद तक भोले थे? यदि यह भोलापन है तो भी भारत सहित (तथाकथित) तीसरी दुनिया के अन्य अधिकाँश देशों को यह भोलापन बेहद मंहगा पड़ा है। उन्हें अपना बहुत कुछ गंवाना पड़ा है। हमारे समाजशास्त्रियों (सोशल साइन्टिस्ट्स) का यह अज्ञान राष्ट्र की बहुत भारी पीड़ा है। उन्हें इस विषय में कम से कम समकालीन राजनेताओं एवं नीति निर्माताओं को सावधान तो करना था। पर वे क्या सावधान करते? वे तो स्वयं ही ऐसे ही भोले-भोंदू बनने से होने वाले लाभों में अपना भी हिस्सा प्राप्त करने में लग गए। उसके लिए वे रास्ते तलाशकर इसी औपनिवेशिक संरचना को सुदृढ़तर करने में जुट गए। फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से उनकी ही शर्तों पर घनिष्ठ सम्पर्क एवं सहयोग की वकालत हमारे समाज वैज्ञानिक करने लगे। निश्चय ही हमारे अर्थशास्त्री इनमें सबसे आगे रहे। यह दासता और समर्पण का मार्ग है।

संभवत: हमारे समाज वैज्ञानिक ऐसे भोले-भोंदू इसलिए बने रहे क्योंकि अपनी देशभक्ति की भावना के बावजूद वे आक्सब्रिज (ऑक्सफोर्ड-केम्ब्रिज में प्राप्त) अकादमिक प्रशिक्षण एवं दीक्षा के प्रभाव से स्वयं को पूर्णत: मुक्त नहीं कर सके। यूरोपीय उदार विद्वत्परम्पराओं से उनकी आसक्ति इतनी प्रचंड रही कि विदेश में 10-15 वर्ष रहकर वहाँ इसी यूरो ईसाई विद्वत्ता की परम्परा से बौद्धिक पोषण उन्होंने प्राप्त किया था कि जिसमें वे सच्चाई को केवल यूरोपीय दृष्टि से ही देख पाते थे, अन्य दृष्टियों को जानने -समझने की क्षमता वे पूरी तरह खो बैठे थे। अपने देश भारत की समस्याओं को वे केवल यूरोपीय जैसी बनाने का प्रयास करते रहे हैं। अपने टिके रहने के लिए उन्हें यह जरुरी लगता रहा है। इसके लिए विजेता समूह विजित राष्ट्र में स्वतंत्र जिज्ञासावृत्ति को अंकुरित ही नहीं होने देते। वे उन विजित देशों को सदा विदेशी विजेता राष्ट्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की बोध रूपों में, विदेशी समझ में और सोचने की विदेशी पद्धतियों में दीक्षित करते रहते हैं। 19वीं शताब्दी ईस्वी की उदार शिक्षा का मर्मभाग एवं सत्व यही है। यूरोपीय उदार शिक्षा विजित राष्ट्रों के शिक्षित जनों को आत्मविमुख तथा पराया बनाने का माध्यम बनी। जो लोग यूरोप नहीं गए, भारत में ही रहे, वे भी यथार्थ का विदेशी बोध ही सच्चा मानते रहे और उसे ही अपनाते रहे। क्योंकि भारत में पढ़ाई जा रही पाठ्यपुस्तकों एवं विविध विषयों के साहित्य में चुन - चुनकर ऐसे प्रसंग इस प्रकार रखे जाते रहे कि यथार्थ का विदेशी बोध ही एकमात्र बोध मान्य हो। फलतः हमारे विद्वानों ने विश्व को अपनी दृष्टि से नहीं, अपने विदेशी परामर्शदाताओं की दृष्टि से देखा। यहाँ तक कि स्वयं को अपने समाज को अपने देश को अपने लोगों को और अपनी अर्थव्यवस्था को, वे विद्वान, अपने इन विदेशी परामर्शदाताओं की अपेक्षा के अनुरुप ही देखते समझते रहे। औपनिवेशिक शासन तो समाप्त हो गया, औपनिवेशिक शिक्षाशास्त्र, शिक्षानीति एवं शैक्षणिक दृष्टि जारी रही।

हमारे ये विद्वान आपनी अकादमिक प्रतिभा की मान्यता के लिए जिन विदेशी (यूरोपीय) क्षेत्रों का मुँह जोहते रहे थे, वहाँ किसी समस्या को उपनिवेशवाद के तीक्ष्ण विश्लेषण के साथ समझने के बौद्धिक उपक्रम को अकादमिक संकीर्णता करार देकर एक बासी सिद्धांत ठहराते हुए रद्द कर दिया जाता था। उसी विदेशी दीक्षा में हमारे ये देशी विद्वान दीक्षित तो थे ही। अतः विदेशी यूरोपीय आर्थिक सिद्धांतों को इन पूर्वउपनिवशों के विद्वानों ने अपने अपने देश में भीषण गम्भीरता से अपनाकर ये उन्हें ही देश पर लागू करने लगे। उससे हटकर इधर-उधर ध्यान देना उन्हें अधर्म लगा, भले ही वे यूरोपीय सिद्धान्त बार-बार विपत्तियों एवं अनर्थों को ही जन्म देते चले गए।

सम्भवतः इसलिए क्योंकि

हम स्वाधीन हो गए, तब भी हमारा सन्दर्भ क्षेत्र या विद्वत्ता का अधिकारी समूह यूरोप अमरीका ही बना रहा। भारतीय यथार्थ की हमारी समझ पर इसका परिणाम होना ही था, यहाँ की समस्याएँ भी हमारे अपने ऐतिहासिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अनुभवों के प्रकाश में नहीं देखी समझी गई और उनके समाधान भी इस प्रकाश में नहीं ढूँढे खोजे गए। यूरोप से उधार लिए गए प्रत्ययों, पदावलियों, प्रश्नों, मूल्यों एवं तार्किक निगमनों के आधार पर ही समस्या को देखा गया और वहाँ के ही बताए गए समाधानों को बिना विवेक के यहाँ अपनाया गया।

आज अर्थशास्त्री स्वयं को बड़े श्रेष्ठ स्तर का सुपीरियर समाजवैज्ञानिक मानते हैं और विश्व को तथा वैश्विक यथार्थ को समझने जैसा सामान्य कार्य वे अपनी हेठी समझते हैं। राजनीतिशास्त्र या इतिहास जैसे अपेक्षाकृत हीन कोटि के अनुशासनों का यह कार्य मानकर उनके लिए ही वह क्षेत्र छोड़ दिया है। अपनी बौद्धिक ऊर्जा वे बचाकर सुरक्षित रखते हैं ताकि अधिक विशेषज्ञता वाली परिष्कृत वैज्ञानिक एवं गणितीय बौद्धिक प्रक्रियाओं में उसे खपाएँ। गणितीय, सांख्यिकीय और अर्थतांत्रिक कतिपय ट्रिकों का प्रयोग कर प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री की मान्यता पाना आज वैसे भी आसान हो गया है। खास शब्दावलियों वाले ऊँचे-ऊँचे शब्दजाल में बात को रखना, बीजगणितीय पदों का प्रचुर प्रयोग करते हुए असम्प्रेषणीय रुप में की गई प्रस्तुतियाँ, उन्हें एक वैज्ञानिक का प्रभामंडल देती हैं, जहाँ से वे समाज की वास्तविक सांसारिक जीवन की समस्याओं को बड़े तिरस्कार से ताकते है।

सम्भवतः इसलिए क्योंकि

संख्याओं के प्रति अपने प्रचण्ड सम्मोहन के कारण इस विश्वास के कारण कि मात्रात्मक अभिव्यक्ति में जो प्रस्तुत न किया जा सके, वह वैज्ञानिक नहीं है और इसी कारण ध्यान देने योग्य भी नहीं है, इन अर्थशास्त्रियों ने और उनके पोषक नीति -निर्माताओं ने भारतीय यथार्थ को भारतीय दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं मानी। अर्थशास्त्र आज सम्प्रभु अनुशासन बन गया है। उसे भाषा के रुप में केवल गणित तथा प्रमाणीकरण की प्रणाली के रुप में मात्र सांख्यिकी की आवश्यकता है, यह मान लिया गया है। अपने सिद्धान्तों के सम्भावित दृष्टान्त वह केवल इतिहास के उदाहरणों से देता है। ए.एम. खुसरो ने स्वाधीन भारत के अर्थशास्त्रियों की चार पीढियां गिनाई हैं और उनके बारे में जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विवरण दिए हैं, वे बहुत कुछ कह जाते हैं। वे कहते हैं, पहली पीढ़ी के अर्थशास्त्री थे, सी.एन. वकील, जी.डी.कर्वे ज्ञानचन्द, जे.के.मेहता, डी.आर.गाडगिल, वी.आर.के.वी.राव, पी.सी. महालनोविस, पी.एस. लोकनाथन, बी.आर.शेनाय तथा.ए.के.दासगुप्त। ये सभी मार्शल के अर्थशास्त्र के ही विशेष जानकार थे। कीन्स के अर्थशास्त्र को समझना उन्होंने बस शुरु ही किया था। उनकी मुख्य दक्षता यह थी कि वे यूरोप से सीखे हुए अर्थशास्त्रीय प्रत्ययों को भारतीय परिदृश्य में लागू करने में निपुण थे। कई अन्य ऐसे थे जो द्वितीय विश्वयुद्ध में तथा उसके बाद ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में ट्रेनिंग लेकर भारत लौटे थे तथा यहाँ रिजर्व बैंक आफ इंडिया, योजना आयोग, भारतीय विश्वविद्यालयों और केन्द्रीय मंत्रिमंडल में पदारूढ़ हो गए थे।

तीसरी पीढ़ी के अर्थशास्त्री भारतीय अर्थव्यवस्था ठीक से जानते भी नहीं थे। अधिकांशत: वे विदेशों में पढ़े थे और वहीं शोध -कार्य किया था। अमरीकी एवं ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में शिक्षित ये लोग अपनी प्रतिभा और हुनर पर ज्यादा भरोसा रखते थे बनिस्बत भारतीय यथार्थ को व्यापकता से जानने के। उसकी (भारतीय यथार्थ की) सीमित जानकारी ही वे पर्याप्त मानते थे। भारत के परिदृश्य को और उसके मर्म को समझना वे उतना जरुरी नहीं मानते थे और अपने (ब्रिटिश-अमरीकी) सैद्धांतिक उपकरणों एवं सांख्यिकी आँकड़ों पर आधारित विश्लेषणों पर ही वे अपना काम करते थे। इनका जो हुनर था और जो दक्षता थी, उसके कारण संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में उनकी सदा ही माँग रहती थी और प्राय: विदेशी संस्थाएँ उन्हें खींचती रहती थीं।

चौथी पीढ़ी के अर्थशास्त्रियों में बड़ी संख्या उनकी है, जो दक्ष विशेषज्ञ है। वे मॉडल बनाने में तथा गणितीय एवं अर्थतांत्रिक उपकरणों के उपयोग में और कम्प्यूटरों के प्रयोग में तीसरी पीढ़ी वालों जैसे ही दक्ष हैं। यह पीढ़ी इन उपकरणों एवं शोध तकनीकों को लेकर अति व्यस्त एवं संसक्त है। भारतीय वास्तविकता की और अर्थनैतिक यथार्थ की अपेक्षाकृत उपेक्षा ही वे करते हैं। यहाँ तक कि उनमें से कई तो तकनीक के लिए तकनीक का प्रयोग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
करते हैं, उनकी समाज के लिए कोई उपयोगिता है भी या नहीं यह कभी उनकी चिन्ता की चीज ही नहीं बनती। (ए.एम.खुसरो इकॉनामिस्ट्रिक्स एण्ड द इंडियन डेवलपमेन्ट, द इंडियन इकानामिक जर्नल, खण्ड 32, अंक। 1984)।

कतिपय प्रतिष्ठित विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में लेख का छपना, विदेश के किसी विश्वविद्यालय में या अंतर्राष्ट्रीय संगठन में कोई नियुक्ति पाना, किसी विदेशी प्रतिष्ठित परियोजना का निदेशक पद पाना या किसी प्रतिष्ठित विदेशी प्रतिष्ठान में फेलोशिप, छात्रवृत्ति आदि पाना कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया है बनिस्बत भारतीय आर्थिक-सामाजिक यथार्थ की समझ और समस्या के वास्तविक समाधान के।[5]

या सम्भवतः इसलिए क्योंकि

अकादमिक विद्वान भी केरियरिस्ट हो चुके हैं अन्य किसी भी केरियस्टि की तरह उनके लिए भी समाज के प्रति जवाबदेही सामाजिक जिम्मेदारी, नैतिकता, आदर्शनिष्ठा आदि पुराने, बीते दौर की मूल्यनिष्ठ, पारम्परिक लुप्तप्राय धारणाएं है जिनपर आज ध्यान देना व्यर्थ है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ का ध्यान रखे।
शेष सबका ध्यान तो अदृश्य हाथ रखेगा।
कौन कहता है एडम स्थिम मर चुका है?

स्वदेशी विद्याबुद्धि और विद्या केंद्रों की आवश्यकता

वस्तुतः मानवीय बुद्धि जिन जानकारियों को जिस रूप में ग्रहण करती है, सामान्यतः उनसे उसका ममत्व हो जाता है, जो धृति के रूप-विशेष में सामने आता है। आज तक अभी अपरा विद्या के क्षेत्र में कोई सार्वभौम भाषा और सार्वभौम चिन्तन प्रणाली या बोध प्रक्रिया विकसित नहीं हुई है। इसलिए अपरा विद्या के क्षेत्र में जो भी ज्ञान होता है, वह ग्रहण की गई अपरा विद्या के स्वरूप पर आश्रित होता है। प्रत्येक सभ्यता में हजारों या लाखों साल के बौद्धिक तथा चारित्रिक तप एवं पुरुषार्थ रूपों के कारण अपरा विद्या के अलग-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अलग स्वरूप विकसित हुए हैं। समाज, राष्ट्र, समाज व्यवस्था, समाज की इकाइयाँ, जीवन के लक्ष्य, उन लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रियाएँ, विश्व के विषय में अलग-अलग दृष्टियाँ- ये सब इन्हीं अपरा विद्याओं के क्षेत्र की चीजें हैं। अत: प्रत्येक सभ्यता को अपनी ही ज्ञान परम्परा का निरन्तर अर्जन और प्रसार करना होता है, उसी क्रम में विश्व की भी ज्ञान-परम्पराओं को जानना होता है। प्रत्येक ज्ञान-परम्परा के अपने बोध-रूप और अपनी पदावली होती है। उसी में ज्ञान व्यक्त होता है।

जिसे 1950 ईस्वी में अमेरिकी राष्ट्रपति के भाषण के बाद से 'डेवलपमेंट' के पर्याय के रूप में विकास कहा जाने लगा है, वह मानवीय सभ्यता में नितान्त नई चीज है और उसका पश्चिमी यूरोपीय तथा आधुनिक अमेरिकी सन्दर्भ है। यह तथाकथित विकास वस्तुत: अन्यों के संसाधनों पर आधिपत्य और उनके नियन्त्रण की एक चालाकी भरी और बरगलाने वाली पदावली मात्र है। समस्त पश्चिमी यूरोप की समृद्धि भारत सहित दुनिया से लूटे गए धन और संसाधन पर टिकी है। संयुक्त राज्य अमेरिका की समृद्धि तो उस पूरे क्षेत्र की धरती तथा सम्पदाओं की भयावह लूट और वहाँ के लोगों के जीवन के विनाश पर टिकी है। यदि प्रचार की चकाचौंध से तथाकथित विद्वान भी अपने विश्लेषणों में ये तथ्य ही भुला दें, तो उन्हें विद्वान मान पाना ही असंभव हो जाएगा।

अभी भी भारत सहित इन सब देशों में ऐसी सरकारें रहें और इनकी आर्थिक नीतियाँ ऐसी रहें कि व्यापार की शर्तें उनके अपने (भारत आदि) देशों के विरुद्ध तथा पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के पक्ष में हों, इसका प्रयास सघन रूप से चलता रहता है। वस्तुत: स्थिति यह है कि भारत में या भारत जैसे अन्य देशों में कौन सत्ता के शीर्ष पर होगा, इसका निर्णय केवल लोगों के चित्त की सहज गति से नहीं होता। लोक-चित्त कैसे प्रभावित होगा, उस पर कब, किन आवेगों को उभारना है और किन्हें मन्द कर देना है, कैसे चुनाव के समय कोई एक भावावेग तीव्र बनाकर लोगों के मन को मुग्ध या स्तब्ध कर दे, इस पर भारत आदि देशों में भी और उनके विषय में संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहुत काम लगातार होता रहता है। भारत के विद्वान सम्भवतः विश्लेषण के समय इन तथ्यों को संज्ञान में उसी प्रकार नहीं लेते, जिस प्रकार अर्थशास्त्र में विकास के सिद्धांतों के विश्लेषण के समय औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी लूट से प्राप्त पूँजी का कोई संज्ञान नहीं लिया जाता और तथाकथित विकास के सिद्धान्त रचे जाते रहते हैं। सभी जानते हैं कि ये सिद्धान्त अपने मूल में ही सत्य के बड़े अंश की अनदेखी करते हुए रचे जाने के कारण आधारहीन होते हैं।

वस्तुतः यदि भारत को सचमुच विकास करना है, तो उसकी अपनी सभ्यता और अपनी ज्ञान-परम्परा के साधना केन्द्रों के रूप में स्वदेशी विद्या केन्द्रों यानी हिन्दू विद्या केन्द्रों या भारतीय विद्या केन्द्रों का बड़ी संख्या में विकास और पोषण आवश्यक है। तभी विश्व के विषय में भारतीय दृष्टि से यानी सत्य दृष्टि से राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्म शास्त्र, समाजशास्त्र आदि क्षेत्रों में ज्ञान जीवन्त हो सकेगा और तभी वस्तुतः भारत का विकास हो सकेगा। अन्यथा विकास की रट के बीच राष्ट्रीय संसाधनों का कुछ क्षेत्रों और कुछ समूहों के पक्ष में तथा अन्य क्षेत्रों और अन्य समूहों के विरुद्ध हस्तांतरण जारी रहेगा और उसे ही विकास प्रचारित किया जाता रह सकता है।

●●●

संदर्भ

1. कुसुमलता केडिया-ए क्रिटीक ऑव टेक्नालॉजी: सोशल कास्ट्स वर्सेस सोशल बेनिफिट्स, जर्नल आफ सोशल साइंस, समाज विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पत्र।
2. पॉल हेरिसन -इनसाइड द थर्ड वर्ल्ड, पृष्ठ 352
3. इकॉनॉमिक टाइम्स, वार्षिकी 1975 ईस्वी
4. इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 21 मार्च 1987
5. सुखमय चक्रवर्ती - द टीचिंग ऑफ इकानामिक्स इन इंडिया: इकानामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 5 जुलाई 1986.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-10

उदारीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया

स्वाधीनता के बाद या औपनिवेशिक सत्ता का हस्तांतरण श्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व वाली कांग्रेस टीम को किए जाने के बाद भारत ने सोवियत ब्लॉक के एक अंग के रूप में समाजवादी नीतियों को अपनाया। यद्यपि श्री नेहरू एक चतुर राजनीतिज्ञ थे और उन्होंने स्वयं को यथा अवसर पश्चिमी यूरोप, विशेषकर इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका से भी जोड़े रखने के लिए तटस्थता की एक नई नीति अपनाई। तटस्थता आन्दोलन की स्थापना 1961 ईस्वी में युगोस्लाविया के राष्ट्रपति जोसफ ब्रोज टीटो, भारत के श्री जवाहरलाल नेहरू, इजिप्त के राष्ट्रपति गमाल अब्दुल नासिर, घना के राष्ट्रपति क्वामे एंक्रुमा, इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो तथा इथियोपिया के सम्राट हेल सिलासी ने मिलकर की थी। कामरेड कृष्ण मेनन ने इस नीति को परिकल्पित किया और 1953 ईस्वी में संयुक्त राष्ट्र संघ में इसकी सैद्धांतिक घोषणा भी की। कामरेड कृष्ण मेनन जवाहरलाल नेहरू के और सोवियत संघ के- दोनों के परम विश्वस्त फेलो ट्रेवलर थे। सोवियत संघ से परामर्श के साथ उक्त वामपंथी नेताओं को अमेरिका और पश्चिमी यूरोप से भी कर्ज आदि लेते रहने की सुविधा के लिए यह नीति रची गई थी। कम्युनिस्ट नेता फिडेल कास्ट्रो ने 1979 ईस्वी में हवाना में इसकी व्याख्या की थी, जिसमें साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, नवउपनिवेशवाद, नस्लवाद और सभी प्रकार के विदेशी आक्रमणों से संघर्ष को इसके लक्ष्य बताया था। यह भाषा ही स्पष्ट कर देती है कि यह आन्दोलन मूलतः सोवियत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कम्युनिस्ट ब्लॉक का बच्चा था। सोवियत संघ अपना आधार बढ़ाने के लिए और इतने अधिक देशों को एक साथ पूरी सहायता देने की हैसियत में नहीं होने के कारण अपनी स्थिति को बचाने के लिए इस आन्दोलन का रणनैतिक सर्जक पर्दे के पीछे से बना। यह तत्कालीन सोवियत संघ की बहुत बड़ी सफलता थी। इस रणनीति के अन्तर्गत ही भारत वर्ष की समस्त बौद्धिक गतिविधियों को- शिक्षा, संचार सहित- राजकीय नियंत्रण में लाकर भारत में कम्युनिस्ट बौद्धिकता को ही एकमात्र अधिकृत बौद्धिकता के रूप में 60 वर्षों तक प्रस्तुत किया जाता रहा। क्रमशः इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव भी बढ़ता गया और घुसपैठ होती गई। 1992 ईस्वी में इसकी मंत्री स्तरीय बैठक न्यूयार्क में हुई। भारत में इसे जनगण की वैधता दिलाने के लिए और किसी सांस्कृतिक आधार से इसका सम्बन्ध होने का भ्रामक आभास देने के लिए ही इसे 'पंचशील' के रूप में प्रस्तुत किया गया और इसके साथ ही सामुदायिक खेती के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारतीय किसानों को अनुकूलित करने के लिए आचार्य विनोबा भावे के साथ परामर्श कर श्री नेहरू ने भूदान आन्दोलन को भरपूर सरकारी संरक्षण और प्रोत्साहन दिया। इसकी आड़ में किसानों की भूमि और समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति पर राज्य का स्वामित्व भारतीय इतिहास में पहली बार 1950 से स्थापित किया गया। अंग्रेजों ने इसका प्रयास किया था, परन्तु वे लगभग आधे भारत में ही आंशिक सफलता पा सके थे। शासन के सर्वाधिकारी होने के कारण और भारतीय ज्ञान परम्परा का कोई भी सक्षम राजनैतिक नेतृत्व नहीं होने के कारण इस कम्युनिस्ट किस्म के राजकीय एकाधिकारवाद को अद्‌भुत गौरव प्रदान करते हुए भारतीय संस्कृति से इसका कोई सम्बन्ध होने की भी भ्रांति रची गई। एक दल के रूप में भारतीय जनसंघ इन सिद्धांतों का पूर्ण विरोधी था, परन्तु उसका कोई अन्तर्राष्ट्रीय आधार नहीं बन पाने से और नई प्राप्त स्वतंत्रता के प्रति भारतीयों में भावुक लगाव होने से कांग्रेस जनसंघ को उभरने नहीं देने में सफल रही। ऊपर से गांधीजी की हत्या होने देकर उसके लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को तथा हिन्दू महासभा अर्थात्- स्वातंत्र्यवीर सावरकर को उत्तरदायी ठहराकर दमन चक्र चलाकर कांग्रेस के विरोध की प्रत्येक भारतीय सम्भावना को कुचल दिया गया और केवल वामपंथी संभावनाओं को ही छूट दी गई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब भी, यह एक तथ्य है कि श्री जवाहरलाल कम्युनिस्ट लॉबी से जुड़े रहकर भी पूँजीवादी लॉबी से भी गहरी आत्मीयता रखते थे और इस अर्थ में वे सच्चे राजनीतिज्ञ या कूटनय-विशेषज्ञ थे। तटस्थता आन्दोलन में सुहार्तो जैसे कम्युनिज्म विरोधी नेताओं को भी जगह मिली। 12वर्षों के भीतर यह आन्दोलन स्वयं में प्रभावी बन गया और 1974 ईस्वी में संयुक्त राष्ट्र संघ की आमसभा के 2229वें अधिवेशन में नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का घोषणा पत्र प्रस्तुत किया। जो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्वीकार कर लिया गया। तटस्थ देशों का कच्चा माल पश्चिमी यूरोप और अमेरिका तथा रूस जिस प्रकार सस्ते दामों में हथिया रहे थे, उसे रोकने के लिए इसमें दबाव बनाया गया। इस प्रकार यद्यपि कम्युनिस्ट और क्रिश्चियन दोनों ही मतवादों के प्रभाव के कारण नेहरू के नेतृत्व में उभरा एक नया शासक वर्ग अपने हित को ही राष्ट्रीय हित और मानवीय हित की तरह प्रस्तुत करने में पटु हो गया था, तथापि इस बौद्धिक सजगता के चलते वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सौदेबाजी की हैसियत में भी आ गया, जो एक बड़ी उपलब्धि थी। यदि यह बौद्धिक सजगता किसी राष्ट्रभक्त राजनैतिक समूह में आई होती, तो इसका बहुत बड़ा लाभ हो सकता था। यह लाभ बहुत बाद में 1998 ईस्वी में लिया जा सका।

तटस्थता आन्दोलन में अनेक धाराओं के अपने-अपने एजेंडे रहे हैं। पूँजीवादी और समाजवादी खेमे में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद दो खेमों के बीच संतुलन का कौशल अप्रासंगिक हो गया। अब उसे पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के एकाधित्य का विरोध भी करना है और उनसे सहयोग का रिश्ता भी रखना ही है। सितम्बर 1998 में डरबन में आयोजित अपने सम्मेलन में तटस्थता आन्दोलन ने अल्पविकास, गरीबी और सामाजिक अन्याय को शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा बताते हुए चिन्ता जताई है। साथ ही तटस्थता आन्दोलन अमेरिकी विदेश नीतियों की आलोचना करता रहा है और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संरचनाओं पर संयुक्त राज्य अमेरिका के नियंत्रण का भी विरोध करता रहा है। इसके साथ ही टिकाउ विकास की बात उसने शुरू की है और दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में अधिक सहयोग बढ़ाने के लिए '77का समूह'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनाया है। ये सब आन्दोलन के नेताओं की बौद्धिक सजगता के प्रमाण हैं। परन्तु अभी तक इन नेताओं ने अपने-अपने देशों में सम्पूर्ण राष्ट्र की वास्तविक चिंता के कोई प्रमाण नहीं दिए हैं।

इसी पृष्ठभूमि में वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की प्रवृत्तियों को समझना होगा। वैश्वीकरण वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का अंग है। विश्व में अत्यंत प्राचीनकाल से परस्पर मानवीय अंतः क्रियाएँ होती रही हैं। विभिन्न सभ्यताएँ और समाज तथा राष्ट्र परस्पर निकट आते रहे हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया ने इतिहास चक्र में लिखा है कि यह निकटता दो प्रकार की रही है- 1. मैत्री पूर्ण सन्निकटन और 2. बलात्कारी सन्निकटन। कम्युनिज्म और पूँजीवाद दोनों ने ही बलात्कारी सन्निकटन की प्रक्रिया को बढ़ाया है। इसके पूर्व रेशमी पथ (सिल्क रोड) जैसी अनेक गतिविधियाँ मैत्रीपूर्ण सन्निकटन को बढ़ावा देती रही हैं। रेशमी पथ ने एशिया, यूरोप और अफ्रीका को हजारों वर्ष पूर्व से परस्पर जोड़ रखा था। अमेरिकी महाद्वीप से भी भारत का प्राचीनकाल से सम्बन्ध रहा है, इसके प्रचुर प्रमाण मिले हैं। वह सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण सन्निकटन था। परन्तु 19वीं और 20वीं ईस्वी शताब्दी में क्रिश्चियन मतवाद से प्रेरित यूरोपीय देशों ने अन्य समाजों और संस्कृतियों के साथ बलात्कारी सन्निकटन का प्रयास किया। जिसका प्रचण्ड विरोध होना स्वाभाविक था। दूसरी ओर लगभग 100 वर्ष पहले हवाई जहाज और तेज रफ्तार वाहनों की खोज ने परिवहन और सन्निकटन की गति बहुत बढ़ा दी। इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के बाद तो मोबाइल फोन और इंटरनेट ने इस सन्निकटन को अभूतपूर्व विस्तार दिया है।

विचार के स्तर पर वैश्वीकरण एक ईसाई अवधारणा के रूप में अधिक स्पष्ट रही है। अन्य सभ्यताओं ने वैश्वीकरण के अपने विचारों को अधिक स्पष्टता से नहीं रखा है। वैश्वीकरण की मुस्लिम अवधारणा बहुत स्पष्ट रूप में ईसाई अवधारणा जैसी ही है। परन्तु प्रबुद्ध यूरोपीयों एवं अमेरिकीयों ने मूल ईसाई अवधारणा में बहुत से संशोधन कर उसे एक सुसंस्कृत विश्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाज में बोले जाने योग्य रूप में पुनः प्रस्तुत किया है। जबकि मुस्लिम अवधारणा मध्ययुगीन शब्दावली को ही अपनाए है। इसलिए उसके प्रति विश्व जनमत आकर्षित नहीं हो पाता।

प्रबुद्ध यूरोपीय वैश्वीकरण की अवधारणा में विश्व के विभिन्न समाजों और देशों का अंतः सम्बन्ध विकसित किए जाने पर जोर है। इसमें सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को भी वैश्विक स्तर पर विकसित करने पर जोर है। दुनियाभर में ईसाई मिशनरियों के द्वारा प्रेरित और संचालित गैरसरकारी संगठन (एन.जी.ओ.ज) इसके माध्यम हैं। कुछ गैर ईसाई संगठन भी उसी के अनुसरण में चलते हैं। परन्तु इसमें मुख्य समस्या यह है कि आर्थिक परस्परता की बात तो की जाती है, परन्तु बौद्धिक और आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से केवल पश्चिमी यूरोपीय एवं अमेरिकी (क्रिश्चियन) देशों के प्रमुख लोगों एवं संगठनों द्वारा शेष विश्व को अपनी ही योजनाएँ, भावनाएँ और विचार सम्प्रेषित करने की बात होती है। शेष विश्व को केवल गृहीता और स्वयं को दाता मानकर चला जाता है। इस प्रकार भौतिक बलात्कारी सन्निकटन का स्थान सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक बलात्कार ने ले लिया है। यूरोपीय देश और अमेरिका यह मानने को तैयार ही नहीं हैं कि उनके जैसी ही बुद्धि सुसंस्कार और अनुभव तथा उन्नत चेतना एशिया-अफ्रीका के देशों और लोगों में भी है। इसलिए इस वैश्वीकरण की राह में बहुत सी बाधाएँ हैं। क्योंकि शेष विश्व स्वयं को केवल गृहीता मानने को तैयार नहीं है। वह स्वयं को दाता भी मानता है। तथ्य तो यह है कि एशिया-अफ्रीका के देश आर्थिक संसाधनों के मामले में भी दाता ही रहे हैं। पश्चिमी यूरोप तथा वर्तमान सं.रा. अमेरिका की समृद्धि इन दाता देशों से गृहीत संसाधनों पर ही सम्भव हुई है। अतः वे देश कभी भी अपने दाता होने की अनुभूति कर सकते हैं और इसके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। इसके लिए प्रबुद्ध क्रिश्चियन देशों का प्रयास यह है कि एशिया और अफ्रीका में उनके भक्त और समर्थक ही सत्ता में रहें। ताकि वे सदा स्वयं की भूमिका दाता की दर्शाते रहें। परन्तु आर्थिक क्रियाशीलताओं का जो स्वरूप पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के नियंत्रण में विकास के नाम पर चल रहा है, वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विषमताओं और आर्थिक संकट को निश्चय ही बढ़ाता रहेगा। अत: एशिया और अफ्रीका में उनके भक्तों का ही राज्य बना रहे, यह इतना आसान नहीं है। लोकतन्त्र में तो सत्ता परिवर्तन अवश्यंभावी है। तानाशाह देशों में भी तानाशाहों पर वहाँ के मज़हबी या सांस्कृतिक संगठन गहरा प्रभाव रखते हैं और इस प्रकार पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका की वैश्वीकरण की योजनाओं पर सदा संकट की छाया बनी रहती है। इंटरनेट की दुनिया ने विचारों के मुक्त आदान-प्रदान के अनन्त अवसर खोल दिए हैं। अत: वैचारिक स्तर पर एकाधिपत्य के तमाम प्रयासों के बाद भी इन देशों का संकट बना ही रहता है। देश और काल के स्तर पर परिवर्तन की विराट प्रक्रिया के परिणाम क्या होंगे, इसकी पूर्वकल्पना सम्भव नहीं है। विस्तार, सघनता, वेग और प्रभाव की सघन अंत: क्रियाएँ क्या रूप लेंगी, कोई भी स्पष्ट नहीं बता सकता। भारतीय दृष्टि से कहें, तो केवल दैव ही यह जानते हैं। अत: कल क्या होगा, यह महाकाल ही जानें। देशों और समाजों का भाग्य केवल अधिष्ठान, कर्ता और करण तथा क्रियाओं पर निर्भर नहीं है। दैव एक पाँचवां तत्व है। इसे ही कालप्रवाह भी कहा जाता है।

स्वीडिश पत्रकार थॉमस लेर्सन ने अपनी पुस्तक 'दि रेस टु दि टॉप: दि रियल स्टोरी ऑव ग्लोबलाइजेशन' में कहा है कि दूरियाँ भले ही सिकुड़ रही हैं और वस्तुएँ अधिकाधिक पास आ रही हैं। परन्तु इससे होने वाली अंत: क्रियाएँ किसी एक पक्ष को ही लाभ पहुँचाएँ, यह आवश्यक नहीं हैं। इस प्रक्रिया में दोनों ही पक्ष लाभान्वित हो सकते हैं।

अत: एक मैत्रीपूर्ण विश्व तो टिकाऊ वैश्वीकरण का आधार हो सकता है, परन्तु शिखर पर रहने की संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी यूरोप की योजना से किया जा रहा वैश्वीकरण उनकी योजना को साकार कर पाएगा, इसमें शंका है।

पश्चिमी एशिया के लिए गठित संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक एवं सामाजिक आयोग ने वैश्वीकरण को इस प्रकार निरूपित किया है- 'व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होने वाला पद-वैश्वीकरण-अनेक रूपों में परिभाषित हो सकता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। आर्थिक संदर्भों में इसका अर्थ है-वस्तुओं, पूँजी, सेवाओं और श्रम के प्रवाह को विभिन्न राष्ट्रों के मध्य बिना किसी बाधा के प्रवाहित होने देने की व्यवस्था, परन्तु श्रम के प्रवाह में तो अनेक अवरोध रहे ही आते हैं। वैश्वीकरण कोई नितान्त नया विचार नहीं है। यह 19वीं शताब्दी ईस्वी के अंत में शुरू हुआ है, परन्तु 1914 से 1975 ईस्वी तक बाधित रहा है।'

केटो इंस्टीट्यूट के सीनियर फेलो टॉम जी. पामर का कहना है- 'राज्य द्वारा अपनी सीमाओं से बाहर वस्तुओं और श्रम के विनिमय पर लगाए गए प्रतिबन्धों में कमी लाना या उनको समाप्त करना ही वैश्वीकरण है, जिससे कि उत्पादन और विनिमय की वैश्वीकरण की जटिल प्रक्रिया गतिशील रह सके।' पत्रकार थॉमस फ्रायडमैन ने ज़् फ्लैट वर्ल्ड' (समतल दुनिया) शब्द उछाला है। उनका कहना है कि 'व्यापार के वैश्वीकरण, आउट सोर्सिंग, आपूर्ति शृंखला का विश्व व्यापी विस्तार और नई राजनीतिक शक्तियों ने विश्व को पूरी तरह बदल दिया है। यह बेहतर हुआ है या बदतर, कहा नहीं जा सकता, परन्तु यह जारी रहेगा और व्यापार पर इसका प्रभाव बढ़ता रहेगा।'

अर्थशास्त्री ताकिस् फोटोपोलोस का कहना है- 'वस्तुओं, पूँजी और श्रम के बाजार पर लगे प्रतिबन्धों के हटने से तथा दुनिया में उनके आ-जा सकने का अवसर खुलने से आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया चल पड़ी है।' उनका यह भी कहना है कि इस प्रक्रिया में एक वैश्विक अभिजन वर्ग का उदय हुआ है, जिससे राष्ट्र-राज्य क्रमशः विलुप्त हो जाएंगे। इससे सांस्कृतिक वैश्वीकरण की संभावना भी है और विचारधारात्मक वैश्वीकरण की भी।

2000 ईस्वी में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने वैश्वीकरण के चार मुख्य पहलू निरूपित किए-

1. व्यापार और लेनदेन :- विकासशील देशों ने विश्व व्यापार में अपना हिस्सा 1971 ईस्वी के 19 प्रतिशत से बढ़ाकर 1999 ईस्वी में 29 प्रतिशत कर दिया है। परन्तु विकासशील देशों के बीच भी क्षेत्रगत विषमताएँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। कुछ देशों का व्यापार अधिक बढ़ा है, दूसरे देशों का कम। एशिया में नई औद्योगिक अर्थव्यवस्थाएँ उभरी हैं, जबकि अफ्रीकी देशों की भूमिका कमजोर रही है। किसी देश का आयात उसकी सफलता का सूचक है। उत्पादित वस्तुओं का निर्यात बढ़ रहा है। अनाज तथा खाद्य पदार्थ और कच्चे माल का उत्पादन विकासशील देश ही करते रहे हैं। विकासशील देशों का कुल निर्यात बढ़ा ही है।

2. पूँजी और निवेश :- विकसित देशों की गैर सरकारी पूँजी का निवेश विकासशील देशों में बढ़ा है। सरकारी पूँजी राज्य को सहायता (एड) के रूप में दी जाती थी। 1980 के दशक के बाद 'एड' में कमी लाई गई है। अब गैर सरकारी पूँजी का निवेश बढ़ाया जा रहा है। विदेशी पूँजी का सीधा निवेश एक महत्वपूर्ण श्रेणी बनकर उभरा है।

3. लोगों की गतिमयता और प्रवास :- पिछले 30 वर्षों में मजदूरों का प्रवास या देशांतर गमन दुगना हो गया है। परन्तु यह प्रवास विकासशील देशों से अत्यल्प विकसित देशों की ओर ही अधिक हुआ है।

4. ज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रसार :- सूचना और प्रौद्योगिकी का विनिमय वैश्वीकरण का अभिन्न अंग है। तकनीकी के हस्तांतरण से विकासशील देशों और अत्यल्प विकासशील देशों को लाभ हुआ है। मोबाइल फोन इसका एक बड़ा उदाहरण हैं।

इससे स्पष्ट है कि जिसे 'नॉलेज एण्ड टेक्नालॉजी' का प्रसार कहा जाता है, वह मुख्यत: तकनीक़ी ज्ञान से ही सम्बन्धित है। भारत में अनेक उत्साहीलाल इसे ज्ञान का विस्फोट आदि जाने क्या-क्या कहकर केवल भ्रम फैलाते हैं। वस्तुत: ज्ञान की जो भारतीय परिभाषा है, उसकी दृष्टि से विगत 65 वर्षों में भारत में लगातार अज्ञान ही बढ़ा है। परन्तु तकनीकी और प्रौद्योगिकी का विस्तार अवश्य सराहनीय रूप में हुआ है। यदि इसके साथ ज्ञान भी बढ़ता तो इनका सदुपयोग सुनिश्चित था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरकारी सहायता में कमी लाकर गैर सरकारी पूँजी निवेश को बढ़ाना यूरोपीय देशों और अमेरिका की बहुत बड़ी चतुराई है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध से यूरोप जर्जर हो गया था। औद्योगिक क्रांति का अग्रणी नेता माने जाने वाला ब्रिटेन खोखला हो गया था। ब्रिटेन और मित्र देशों की विजय में सबसे बड़ा हाथ भारत की वीर सेनाओं का था, जो अब उनके नियंत्रण में नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अचानक यूरोप के प्रबुद्ध लोगों में साम्राज्यवाद के द्वारा किए गए अत्याचारों के प्रति ग्लानि का भाव आया। उस भाव से भरकर, हवा में से वह भाव हल्का हो इसके लिए इन देशों ने विकासशील देशों को सहायता (एड) की रणनीति प्रचारित की। ताकि ये देश यह तथ्य भूल जाएँ कि पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका की समस्त समृद्धि दूसरे देशों और समाजों की लूट से ही सम्भव हुई है। किसी भी प्रकार की प्रौद्योगिकी का उसमें कोई विशेष योगदान नहीं है। लूटे गए देश लूट का हर्जाना या क्षतिपूर्ति अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में जाकर न माँगें, इसके लिए तेजी से इन देशों में अपने मन के समूहों को सत्ता का हस्तांतरण करने के बाद सहायता का यह घटाटोप प्रचार किया गया। इसके वांछित परिणाम निकले। इन देशों में एक नितांत नया और स्वदेशी लोगों के लिए अजनबी तथा साम्राज्यवादी समूहों के लिए परम आत्मीय बौद्धिक वर्ग तैयार हो गया। जो साम्राज्यवादी समूहों के प्रति अद्‌भुत कृतज्ञता का भाव रखता है और समाज में इसे प्रचारित भी करता है। शक्ति के इस खेल में सफल होने के बाद सहायता की सारी प्रक्रिया बंद कर दी गई और गैर सरकारी पूँजी अर्थात् महाजनी पूँजी को विकासशील देशों में अपनी शर्तों पर निवेश करने की व्यवस्था बनाई जा रही है, ताकि साम्राज्यवादी लूट की चर्चा तक न उठे और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ निजी व्यापार की सभी शर्तों के साथ पूँजी लगाएँ और जमकर मुनाफा पाएँ। इस तरह वैश्वीकरण वस्तुतः विश्व इतिहास को झुठला देने की प्रक्रिया का एक अंग है। ऊपर से इस पूँजी निवेश को अनुग्रह बताते हुए इसके पक्ष में शासन और मीडिया से इसकी महिमा प्रचारित की और कराई जाती है तथा इसके लिए शासन से अधिकतम संभव छूट और सुविधाएँ प्राप्त करने का प्रयास होता है। जो लोग इनके विरोधी हैं, वे बौद्धिक रूप से पर्याप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिश्रमी और समर्थ नहीं हैं। वर्तमान परिवेश में वे एक अलग-थलग राष्ट्रीय बाजार की बात कर केवल नारेबाजी कर रहे हैं। क्योंकि एक तो वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रियता के बिना आप अपनी बात मनवा ही नहीं सकते। दूसरे, प्रत्येक देश में जो सर्वाधिक धनी और समर्थ व्यापारी तथा उद्यमी हैं, वे पहले से ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कारोबार कर रहे हैं। अत: वे अपने प्रभाव का सम्पूर्ण उपयोग अलग-थलग होने के विरुद्ध करेंगे। कोई भी राजनैतिक कदम समकालीन स्थितियों और शक्तियों के विचार के बिना तय नहीं किया जाता और करने पर सफल नहीं होता।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को लेकर जो एक व्यापक 'एग्रीमेंट' है, जिसे 'गैट' कहा जाता है, उस पर अनेक देश पहले से ही सहमत हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई पहल के कारण 'उरुग्वे सम्मेलन' में 123 देशों ने भाग लिया था। इसी सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) अस्तित्व में आया, जिसमें गैट के 75 देश संस्थापक सदस्य बने और बाद में 52 अन्य देश उसके सदस्य बने। फिर 21 और देश सदस्य बने तथा भारत सहित कुल 153 देश इसके सदस्य हैं। ऐसी स्थिति में सौदेबाजी की दक्षता वाला समूह ही इन व्यापारिक समझौतों और अनुबंधों के लिए किसी भी देश द्वारा तैयार किए जाने पर अपेक्षित परिणाम मिल सकेगा। बिना किसी गम्भीरता के केवल 'मॉस मोबिलाइजेशन' के लिए नारेबाजी और प्रचार अलग वस्तु है।

यह तो सही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप इन तमाम संगठनों में अपनी हैसियत बढ़ी हुई रखते हैं और अपना नियंत्रण भी रखते हैं। परन्तु इसके समकक्ष एक शक्ति बनने के लिए उसी स्तर का अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क बनाना आवश्यक है।

भारत में नई आर्थिक नीतियाँ अपनाकर स्वयं को सरकारी नौकरशाही के भयंकर नियंत्रण पर आधारित पूँजीवाद से मुक्त किया है। परन्तु इससे आगे जाकर भारत को टिकाऊ समृद्धि का भारतीय मार्ग अपनाना होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पश्चिमी क्रिश्चियन विश्व ने शेष विश्व को अपने रेलिजन की श्रेष्ठता अथवा विचारों और मूल्यों की श्रेष्ठता एवं उच्चता के कारण नहीं जीता है। भले ही अन्य सभ्यताओं के कुछ सदस्यों को पश्चिमी क्रिश्चिएनिटी में धर्मान्तरित करने में उसने सफलता पायी हो। **पश्चिमी क्रिश्चियन सभ्यता की विजय तो संगठित हिंसा की उसकी अपेक्षाकृत अधिक शक्ति के कारण ही संभव हुई है।** पश्चिमी क्रिश्चियन समाज के लोग इसे भूल सकते हैं परन्तु गैर-पश्चिमी एवं गैर-क्रिश्चियन समाज तथा सभ्यताएँ इसे कभी भी नहीं भूल सकतीं।''[1] ऐसी स्थिति में यदि वैर और प्रतिशोध -भाव जीवित रहता है, तो हिंसा का चक्र चलता जायेगा तथा हिंसा की आसुरी सामर्थ्य में जो भी देश या समूह अधिक बलशाली होगा, वह औरों का वैसा ही व्यापक विनाश और उनके संसाधनों का वैसा ही इकतरफा हस्तांतरण करता रहेगा, जैसा साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद ने किया है। परन्तु यह तो अनन्त नरक का मार्ग है। भारत जैसे समृद्ध, परिपक्व एवं अहिंसक संस्कृति के मर्मज्ञ समाजों को विकास का वह मार्ग पकड़ना लज्जास्पद है, जो मार्ग हिंसक समृद्धि की लालसा वाले यूरोख्रीस्त समाजों ने अपनाया था।

वस्तुत: यदि भारत अभी की तरह विकास के यूरोख्रीस्त मार्ग का और हिंसक समृद्धि का विमूढ़ अनुकरण जारी रखता है तो यह विश्वशांति के लिए विनाशकारी, विघातक एवं अशुभ सिद्ध होगा। भले ही, भारत का वर्तमान राजनैजिक, प्रशासनिक एवं अकादमिक नेतृत्व इसे शांति का मार्ग प्रचारित करता रहे। सोवियत मॉडल का अनुसरण कर भारत के शासक-प्रशासक पहले ही भारतीय संसाधनों का भयंकर विनाश एवं इकतरफा हस्तांतरण करते आये हैं। **कम्युनिस्ट, इस्लामी एवं ख्रीस्तीय आतंकवाद, अलगाववाद एवं उग्रवाद के प्रति भयावह सहिष्णुता, उदासीनता एवं उदारता दर्शाकर भारत के ये शासक -प्रशासक विश्वशांति भंग करने एवं अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का पोषण करने का गम्भीर अपराध कर रहे हैं। यह मार्ग भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के नितांत विपरीत है।** आशा करनी चाहिए कि भारत पुन: अपनी संस्कृति की, सनातन धर्म की साधना में प्रवृत्त होगा तथा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रकाश, तेजस्विता, संयम, सात्विकता, मर्यादा, आत्मीयता, प्रेम और वीरता का जीवन जीने का संकल्प लेगा। आज भले ही यह असम्भव दिखता है, परंतु यह कभी भी सम्भव हो सकता है। **काल-प्रवाह विराट है, परम प्रबल है और वही विश्व-इतिहास का वास्तविक नियामक है।** आज भले यह अप्रत्याशित लगे। वस्तुत: विश्व इतिहास में अप्रत्याशित घटनाएँ घटती ही रहती हैं। मंगोल सभ्यता के प्रकाशपूर्ण स्पर्श से जिस प्रकार क्रिश्चियन यूरोप में विज्ञान तथा समृद्ध सुसंस्कृत जीवन का प्रसार हुआ और पुनर्जन्म की रोमन सांस्कृतिक धारणा के सहसा उन्मेष के साथ जिस प्रकार सम्पूर्ण यूरोप में 'प्रि-क्रिश्चियन' ज्ञान-विज्ञान की अद्‌भुत ललक जगी, वह भी एक अर्थ में तो अकल्पनीय ही थीं। यह बात अलग है कि एक स्तर पर ज्ञान-विज्ञान का विश्वव्यापी आदान-प्रदान लगातार चल रहा था। तब भी मध्ययुगीन चर्च की कठोर जकड़न को नितांत अहिंसक तरीकों से वहाँ के प्रबुद्ध एवं आत्मबलसम्पन्न व्यक्तियों ने तथा वहाँ की अहिंसक वीरता से सम्पन्न वीर स्त्रियों ने जिस प्रकार तोड़-फोड़कर रूपांतरित ही कर डाला और व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा स्त्री-स्वातंत्र्य का जो युग प्रकट हुआ, वह भी अप्रत्याशित ही था। विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की भारत से मात्र 90 वर्षों में विदाई भी एक अप्रत्याशित घटना थी, विशेषकर अहिंसक संग्राम की सौम्य प्रकृति को देखते हुए। इस प्रकार इतिहास में अकल्पित घटना ही रहता है। इसे ही भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में काल -प्रवाह कहा जाता है।[2]

तब भी, मोटे तौर पर तो समकालीन प्रमुख प्रवृत्तियों के संदर्भ में ही भावी सम्भावना का पूर्वानुमान किया जाता है। अत: इन प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में यदि आर्थिक समृद्धि की अहिंसक समझ के विश्व में पुन: प्रतिष्ठित होने की सम्भावना का पूर्वानुमान किया जाए तो दोनों ही प्रकार की सम्भावना बराबर-बराबर नजर आती है। एक ओर अभी की प्रभावी शक्तियाँ हैं जो विगत कुछ शताब्दियों के विश्व-विजय-अभियानों के संस्कारों के आवेश में हैं। विश्वव्यापी एक ही सभ्यता के आधिपत्य को ये शक्तियाँ भविष्य का यथार्थ मानकर चल रही हैं।इनमें सर्वोपरि है-क्रिश्चियन सभ्यता को ही यूरोपीय सभ्यता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

मानकर उसकी भूमिका में विश्वभर में एकाधिपत्य चाहने वाली दृष्टि।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन के प्रेसीडेन्ट रह चुके प्रोफेसर सेमुएल पी. हन्टिंगटन भविष्य में सभ्यताओं का संघर्ष देखते हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन्स एंड द रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड ऑर्डर' (The Clash of Civilizations and The Rrmaking of World Order) के अनुसार इस समय विश्व में 8 सभ्यताएँ प्रभावशाली हैं- 1. पश्चिमी यूरो-अमेरिकी सभ्यता एवं अफ्रीकन पश्चिमी सभ्यता, 2. लैटिन अमेरिकन सभ्यता, 3. इस्लामी सभ्यता, 4.चीनी सभ्यता, 5. हिन्दू सभ्यता, 6. आर्थोडॉक्स क्रिश्चियन सभ्यता, 7. बौद्ध सभ्यता एवं 8. जापानी सभ्यता।[3]

हन्टिंगटन की यह पुस्तक दर्शाती तो यह है कि वस्तुतः हन्टिंगटन को अपनी क्रिश्चिएनिटी का आत्मगौरव अवश्य है, परन्तु उन्हें सभ्यताओं के विश्व-इतिहास की विशद जानकारी नहीं है। यहाँ तक कि स्वयं पश्चिमी यूरोप मंगोल सभ्यता एवं मुस्लिम सभ्यता के सम्पर्क में क्रमशः चौथी तथा 8वीं शताब्दी ई. से बड़े स्तर पर था तथा बौद्ध एवं हिन्दू सभ्यता से उसका शताब्दियों पुराना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था, यह तक उनको बिलकुल स्मरण नहीं है। तथापि हार्वर्ड एकेडमी फार इंटरनेशनल एंड एरिया स्टडीज के चेयरमैन तथा जॉन एम. ओलिन इन्स्टीच्यूट फॉर स्ट्रेटजिक स्टडीज के डॉयरेक्टर होने के नाते संयुक्त राज्य अमेरिका की भावी रणनीति पर उनके विचारों का पर्याप्त प्रभाव सम्भावित है अतः उनके विचार मननीय हैं। यहाँ हम हन्टिंगटन के ये विचार सोच - समझकर विस्तार से दे रहे हैं, जिससे यह पता चले कि आज की शक्तिशाली आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति- संयुक्त राज्य अमेरिका क्या कर रहा है, क्या देख रहा है, क्या योजना बना रहा है और क्या आकलन कर रहा है, किन चीजों में राजकोष का बड़ा हिस्सा लगा रहा है। श्री हन्टिंगटन के इन महत्त्वपूर्ण विचारों एवं पूर्वानुमानों को यहाँ रखने का एक विशेष प्रयोजन पाठकों को यह स्मरण दिलाना भी है कि भविष्य की आर्थिक स्थितियाँ वस्तुतः भविष्य की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों के आपसी संबंधों, मैत्री या टकराव की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रक्रियाओं तथा परिणामों पर निर्भर है। केवल आर्थिक नीतियों पर नहीं। भारतीय पाठकों को यह तथ्य जानना जरूरी है।

श्री हन्टिंगटन कहते हैं: "मानव अस्तित्व की अधिकांश अवधि में विभिन्न सभ्यताओं के मध्य सम्पर्क रुक-रुक कर होते रहे थे अथवा शूल्य के बराबर थे। लगभग 1500 ई. के आसपास आधुनिक युग का आरम्भ हुआ और वैश्विक राजनीति ने दो आयाम ग्रहण किये। 400 वर्षों से अधिक से पश्चिम के राष्ट्र राज्यों-ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, आस्ट्रिया, प्रशा, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं अन्य- ने पश्चिमी सभ्यता के भीतर ही एक आपसी बहुध्रुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था गठित की और आपस में एक-दूसरे से अंत:क्रिया की, प्रतिस्पर्धा की तथा एक-दूसरे से युद्ध लड़े। उसी समय, पश्चिमी राष्ट्रों ने अपना विस्तार भी किया तथा अन्य सभ्यताओं को जीता, उन्हें उपनिवेश बनाया अथवा उन्हें अपने निर्णायक प्रभाव में ले आये। शीतयुद्ध के दौरान वैश्विक राजनीति द्विध्रुवीय हो गई। विश्व तीन हिस्सों में बाँट दिया गया। अत्यंत सम्पन्न एवं लोकतांत्रिक समाजों का एक समूह संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में सोवियत संघ के नेतृत्ववाले अपेक्षाकृत गरीब कम्युनिस्ट समाजों के समूह के विरुद्ध वैचारिक, राजनैतिक एवं आर्थिक तथा कई बार सैनिक प्रतिस्पर्धा में व्यापक टकराव में प्रवृत्त रहे। इस टकराव का अधिकांश इन दोनों शिविरों से बाहर तीसरी दुनिया में घटित हुआ। यह तीसरी दुनिया ऐसे देशों से बनी थी जो गरीब थे और जहाँ राजनैतिक स्थायित्व की कमी थी, हाल ही में स्वाधीन हुए थे और स्वयं को तटस्थ या निर्गुट राष्ट्र कहते थे।

1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में कम्युनिस्ट विश्व ढह गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा शीतयुद्ध इतिहास की वस्तु हो गया। शीतयुद्ध के बाद की दुनिया में विश्व के लोगों की सर्वाधिक महत्तवूर्ण पहचान वैचारिक, राजनैतिक अथवा आर्थिक नहीं रही है अपितु सांस्कृतिक पहचान प्रमुख हो गयी है और सांस्कृतिक भेद ही मुख्य हो गया है। समाज और राष्ट्र उस मूलभूत प्रश्न का उत्तर पाने के प्रयास कर रहे हैं, जो कि मानवजाति के सम्मुख उपस्थित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर्वाधिक आधारभूत प्रश्न है: हम कौन हैं? और लोग इस प्रश्न का उत्तर उसी परम्परागत ढंग से प्राप्त कर रहे हैं जैसा कि मानवजाति सदा से प्राप्त करती रही है: उन चीजों के संदर्भ में जो कि उनके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। **लोग यानी समाज और राष्ट्र स्वयं को अपने पूर्वजों के संदर्भ में, अपने क्षेत्र, अपनी भाषा, अपने इतिहास, अपने मुल्यों, अपने रीतिरिवाजों और अपनी संस्थाओं के संदर्भ में परिभाषित कर रहे हैं।** वे स्वयं को सांस्कृतिक समूहों के रूप में पहचान रहे है: कबीलों, मानवजातीय समूहों, धार्मिक समुदायों और राष्ट्रों के रूप में तथा सर्वाधिक व्यापक स्तर पर सभ्यताओं के रूप में। लोग राजनीति का उपयोग केवल अपने स्वार्थो को आगे बढ़ाने के लिए नहीं कर रहे हैं। अपितु अपनी पहचान को परिभाषित करने के लिए भी कर रहे हैं। हम कौन हैं, यह हम तभी जान पाते हैं जब हम यह जानते हैं कि हम कौन नहीं हैं औ अकसर तो जब हम यह जानते हैं कि हम किसके विरुद्ध हैं।

अपनी शक्ति और अपने आत्मविश्वास की की वृद्धि के साथ, गैर-क्रिश्चियन, गैर-पश्चिमी समाजों में अपने सांस्कृतिक मूल्यों की आग्रहपूर्ण अभिव्यक्ति बढ़ रही है और वे पश्चिमी क्रिश्चिएनिटी द्वारा 'आरोपित' मूल्यों को अस्वीकार कर रहे हैं। हेनरी कीसिन्जर ने नोट किया है- '21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कम से कम 6 महाशक्तियाँ होंगी- संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, चीन, जापान, रूस और सम्भवत: भारत। इसके साथ ही मझोले आकारवाले और छोटे देशों का एक झुण्ड होगा।' कीसिन्जर द्वारा गिनायी गयी 6 महाशक्तियों में से 5 बिलकुल अलग सभ्यताओं से सम्बन्धित हैं। इसके साथ ही महत्वपूर्ण इस्लामी राज्य हैं जिनकी विशाल आबादी, रणनैतिक स्थिति तथा/ अथवा तेल संसाधन उन्हें विश्व मामलों में प्रभावी बनाते हैं। इस नए विश्व में स्थानीय राजनीति नृजातीय पहचान की राजनीति है। जबकि वैश्विक राजनीति सभ्यताओं की राजनीति है। महाशक्तियों के बीच होड़ का स्थान सभ्यताओं के बीच टकराव ने ले लिया है।

इस नये संसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण, व्यापक और खतरनाक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
टकराव सामाजिक वर्गों के बीच- धनी और गरीबों के बीच, अथवा आर्थिक रूप से परिभाषित समूहों के बीच नहीं होगा। बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयों के समाजों के बीच यह टकराव होगा। राज्यों और समूहों के बीच हिंसक टकराव के बढ़ने की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। दूसरे देश सभ्यता की दृष्टि से अपने 'बिरादर देश' या 'सजातीय देश' के समर्थन में एकजुट हो जाते हैं।

सभ्यताओं के बीच दार्शनिक धारणाएँ, अंतर्निहित मूल्य, सामाजिक सम्बन्ध, रीतिरिवाज और जीवन -दृष्टि के स्तर पर उल्लेखनीय अंतर होता है। संसारभर में रेलिजऩ (धर्मपंथ) का नया उत्कर्ष हो रहा है और उसके कारण सांस्कृतिक भेदों को बल मिल रहा है। संस्कृतियाँ बदल सकती हैं और एक युग से दूसरे युग में उनका राजनीति और अर्थनीति पर प्रभाव बदल सकता है। पर ये सब बदलाव संस्कृतियों के भीतर ही होते हैं। भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के मध्य आर्थिक और राजनैतिक विकास का जो भेद होता है, वह स्पष्ट रूप से उनकी अपनी-अपनी संस्कृतियों के स्रोत से जुड़ा होता है। इस्लामी संस्कृति ही मुस्लिम विश्व में लोकतंत्र की विफलता का प्रमुख कारण है। पूर्वी यूरोप के समाजों में कम्युनिज्म की समाप्ति के बाद जो विकास हुआ है, उसे उनकी सांस्कृतिक पहचानों ने ही आकार दिया है जो राष्ट्र पश्चिमी क्रिश्चिएनिटी विरासत के साथ हैं, वे आर्थिक विकास और लोकतांत्रिक राजनीति के क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं। जबकि ऑर्थोडॉक्स क्रिश्चियन देशों का भविष्य और उनका आर्थिक तथा राजनैतिक विकास अनिश्चित है। मुस्लिम देशों में जनतंत्र की संभावनाएँ बहुत ही धूमिल हैं।

पश्चिमी क्रिश्चिएनिटी सर्वाधिक शक्तिशाली सभ्यता है और आगामी वर्षों में बनी रहने वाली है। तब भी अन्य सभ्यताओं के संदर्भ में उसकी शक्ति का ह्रास हो रहा है। पश्चिमी क्रिश्चिएनिटी अपने हितों की रक्षा और अपने मूल्यों की अभिव्यक्ति का आग्रह करती है, तो गैर -पश्चिमी समाजों में से कुछ पश्चिम की नकल की कोशिश करते हैं और उसका साथी बनना चाहते हैं जबकि अन्य, कन्फ्यूशियन और इस्लामी समाज अपनी आर्थिक और राजनैतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शक्ति बढ़ाकर पश्चिम के विरुद्ध एक 'संतुलन' स्थापित करने का प्रयास करते हैं। शीतयुद्ध की समाप्ति संस्कृति की गैर -पश्चिमी सभ्यताओं और संस्कृतियों की शक्ति के साथ अंत:क्रियाएँ।

सारांश यह है कि शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद की दुनिया 7 या 8 बड़ी सभ्यताओं की दुनिया है। सांस्कृति अनुरूपताएँ और विभेद राष्ट्रराज्यों के स्वार्थों, सम्मिलनों और टकरावों को आकार देते हैं। विश्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देश भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के वाहक हैं। स्थानीय टकराव व्यापक युद्ध का रूप प्राय: वही लेते हैं जहाँ वे भिन्न-भिन्न सभ्यताओं के बीच टकराव होते हैं। राजनैतिक ओर आर्थिक विकास का सर्वाधिक प्रमुख पैटर्न एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता में भिन्न-भिन्न हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय एजेण्डा के प्रमुख मुद्दे सभ्यताओं के बीच के भेद पर आधारित हैं। बहुत दिनों तक पश्चिमी सभ्यता की प्रबलता रही है, परन्तु अब सत्ता संतुलन गैर-पश्चिमी सभ्यताओं की ओर झुक रहा है। विश्व राजनीति बहुध्रुवीय हो गई है और उसमें सभ्यताओं का वैविध्य है।''[4]

विश्वभर के संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की एकाधिकारवादी आकांक्षाएँ अंतत: बहुत महँगी सिद्ध होती हैं, यह प्रबुद्ध अमेरिकी जनमत भलीभाँति जान चुका है और प्रबुद्ध विश्व जनमत भी आधुनिक अर्थशात्रीय प्रयोजनों से संचाालित वैश्विक आर्थिक संसाधनों की लूट की होड़ के विरोध में है।

इस प्रकार एक भावी सम्भावना तो यह है, जिसका एक पूर्वानुमान प्रो.सेमुएल पी. हन्टिंगटन ने किया है। दूसरी भावी संभावना वह है जो विश्वविजय के आकांक्षी मुस्लिम उग्रवादी समूह घोषित कर रहे हैं कि 'ला गर्बिया, ला शर्तिया इस्लामिया इस्लामिंया (पूर्व से पश्चिम तक केवल इस्लाम ही इस्लाम छा जाय)। वस्तुत: इस्लाम के एकाधिपत्य की यह लालसा भी विश्व के संसाधनों का एक बड़ा अंश अपनी सेवा में नियोजित करने की लालसा ही है। ऐसी लालसाएँ आधुनिक अर्थशास्त्रीय लक्ष्यों के अंग हैं। जब तक आर्थिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समृद्धि की ऐसी समझ जारी रहेगी जो दूसरे समाजों और प्रकृति के संसाधनों की निर्मम लूट के जरिए ही समृद्धि सम्भव मानती है, तब तक इस प्रकार के युद्ध और हिंसक टकराव होते ही रहेंगे।

तीसरी भावी संभावना वह है जो कम्युनिस्टों की भविष्य सम्बन्धी उद्‌घोषणा है कि पूँजीवाद के प्रचंड अन्तर्विरोध गहरे होते जाएँगे, विश्वभर में वर्ग –संघर्ष तीव्रतर होता जायेगा, प्रतिक्रियावादियों का सफाया कर दिया जायेगा, समतामूलक समाज की स्थापना होगी, श्रम के शोषण का अंत होगा, हरएक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य भर काम करेगा और अपनी वास्तविक जरूरतों के लिए साधन पाएगा, लोगों के पास पर्याप्त अवकाश होगा। वे साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान आदि क्षेत्रों में उच्चतर सृजनशीलता में प्रवृत्त होंगे। यह सम्भावना वस्तुतः एक उदात्त भविष्योद्‌घोषणा है। परन्तु विश्व इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भविष्योद्‌घोषणावादी राजनीति सदा ही वर्तमान को हिंसा, मारकाट, लूटपाट और विनाश से भर देती है। भविष्य में कभी सब कुछ सुन्द और शान्त होगा या हो सकेगा, इसके लिए वर्तमान में लूट, छीना–झपटी, मारकाट और हिंसा उचित अथवा आवश्यक है, यह दृष्टि वस्तुतः एक मृगमरीचिका ही सिद्ध होती है। जबकि अहिंसक समृद्धि और अहिंसक जीवनशैली का बोध सदा ही इस बात पर बल देता है कि श्रेष्ठ साध्य के लिए साधन भी श्रेष्ठ ही होना चाहिए। महात्मा गांधी ने भी सदा इसी बात पर बल दिया।[5]

चौथी सम्भावना वह है, जिसके विषय में फ्रिट्‌जॉफ काप्रा, हेजेल हेंडरसन, रूपर्ट शेल्ड्रेक, जेम्स लवलॉक प्रभृति चिन्तक, यूरोपीय स्त्री –आन्दोलनों की प्रतिनिधि विचारक, स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी, स्व. डॉ. राममनोहर लोहिया, स्व. श्री जयप्रकाश नारायण, स्व. पं. दीनदयाल उपाध्याय जैसे भारतीय एवं अन्य प्राचीन सभ्यताओं के वाहक राजपुरुष तथा पर्यावरणवादियों, ग्रीन मूवमेंट आदि में जुटे सक्रिय समूहों के चिन्तकों द्वारा व्यक्त की जा रही है। इस प्रकार नई अर्थनीति भारतीयय संस्कृति एवं अन्य प्राचीन संस्कृतियों से पोषित होगी।

नॉर्मन मायर्स ने अपनी पुस्तक 'The Gaia Atlas of Future

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Worlds' के भाग 3 में 'Ideas and beliefs' शीर्षक अध्याय में New Economics में भविष्य की सम्भावना बतलाया है। उनका कहना है कि "अपनी अर्थव्यवस्था को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (G.N.P) के आधार पर परखने की हमारी आज की प्रतिष्ठित 'एप्रोच' निष्प्रभावी सिद्ध हो रही है। यह अर्थव्यवस्था उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का ही हिसाब रखती हैं। परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। क्योंकि यह व्यवस्था उन प्राकृतिक संसाधनों को हिसाब में शामिल ही नहीं करती जो कि वस्तुतः हमारी अर्थव्यवस्था की नींव और आधार हैं। भूमि, वनस्पति, जल, जलवायु आदि केपिटल स्टॉक्स के उपयोग अथवा दुरुपयोग का यह अर्थव्यवस्था हिसाब ही नहीं रखती।"

नार्मन मायर्स लिखते हैं- "जब हम ऐसे संसाधनों और सम्पदाओं का उपयोग करते हैं, जो मानवीय क्रियाशीलता से उत्पन्न होते हैं- जैसे भवन, उपकरण आदि तब हम अपने उस उपयोग को उन वस्तुओं के अवमूल्यन के रूप में देखते हैं और इस प्रकार उपयोग को बट्टे-खाते में डालकर हिसाब करते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश हम पर्यावरण को उत्पादक पूँजी की तरह नहीं देखते यद्यपि हम पर्यावरण का उपयोग उत्पादक पूँजी की ही तरह करते हैं। जब जंगलों की अंधाधुंध कटाई होती है, खेतों से लगातार इस प्रकार फसल ली जाती है कि उसकी ऊपरी उर्वर सतह नष्ट हो जाती है और जब नदियों और सरोवरों तथा सागर को मुफ्त के कूड़ेदान की तरह इस्तेमाल किया ज़ाता है, तब हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि अंकित करते हैं और अपने राष्ट्रीय भविष्य को उज्ज्वलतर मान लेते हैं। विडम्बना तो यह है कि पर्यावरण को पहुँचायी गयी क्षति को ठीक करने के लिए हम जो काम करते हैं उसे भी पहले की भाँति ही आर्थिक क्रियाशीलता मानकर उसे भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद में एक ओर खाँचे की तरह दर्शाते हैं। स्पष्ट है कि हमें राष्ट्रीय आय और समृद्धि के लेखे को दुरुस्त करना चाहिए और अपने अर्थशास्त्र के पर्यावरणीय आयाम को प्रतिबिम्बित करने वाली लेखा-विधि विकसित करना चाहिए।

संक्षेप में हमें एक ऐसी लेखा-पद्धति की आवश्यकता है जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारी आर्थिक क्रियाशीलता और संसाधनों के आधार को टिकाये रखने वाली क्रियाशीलता दोनों को ही भलीभाँति दर्शाये। निकट भविष्य में हम निश्चित ही यह आशा रखते है कि शासकीय प्रवक्ता राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की सम्पूर्ण छवि प्रस्तुत करते समय उसके पर्यावरणीय पक्ष को भी भलीभाँति प्रस्तुत करेंगे।

हम अपनी पर्यावरणीय पूँजी किस प्रकार खा रहे हैं(उसका किस प्रकार अवमूल्यन कर रहे हैं),इसका एक उदाहरण पश्चिम जर्मनी का 1980 ई. के दशक के मध्य का मामला है। उन दिनों वहाँ प्रदूषण की जो स्थिति थी उसके कारण 51 खरब प्रतिवर्ष की कीमत का बोझ अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था। जो कि उस समय के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 5 प्रतिशत था। इसी प्रकार विकासशील राष्ट्रों में बड़े पैमाने पर रेगिस्तानी विस्तार हो रहा है। जिससे कि कृषि क्षेत्र में कम से कम 32 खरब डॉलर प्रतिवर्ष की क्षति पहुँच रही है। जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ का रेगिस्तानी फैलाव के विरुद्ध चल रहा अभियान 6 खरब डॉलर प्रतिवर्ष से भी कम है।[6]

भविष्य में ग्रीन हाउस इफेक्ट के क्षेत्र में भी काफी काम अपेक्षित होगा। कम से कम इस प्रक्रिया को धीमा तो किया ही जा सकता है। इसके लिए प्रबल क्रियाशीलता की आवश्यकता होगी और साथ ही वैश्विक स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से ही यह काम हो सकेगा। लेकिन सबसे पहले आवश्यक यह होगा कि ऊर्जा की खपत उन देशों में घटायी जाय जहाँ अभी उसका बहुत अधिक उपयोग हो रहा है। इस दिशा में यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रयास भी चल रहे हैं।

खेती के आधुनिक तरीकों में बदलाब के विषय में भी व्यापक विचार-विमर्श चल रहा हे। जिससे कि ग्रीनहाउस गैसों का असंतुलन रोका जा सके। ऐसी फसलों को अधिक अपनाने पर भी जोर दिया जा रहा है जिनके लिए अधिक रासानिक उर्वरक आवश्यक नहीं हैं।

वनों की अंधाधुंध कटाई की समस्या से चिन्तित होकर व्यापक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पैमाने पर विश्वभर में सघन वृक्षीकरण की योजनाएँ चलायी जा रही हैं। जिससे कि कुछ वर्षों बाद विश्व में पर्याप्त वनक्षेत्र फिर से हो सकें। इस बात की ओर प्रबुद्ध विश्व जनमत पूरा ध्यान दे रहा है कि 21 वीं शताब्दी में पृथ्वी पर वनों के विस्तार की गति ठीक हो जाय, चरागह मैदान भी पर्याप्त हों और प्राणियों के जीवन के लिए भरपूर अवसर उपलब्ध हों।

अभी की स्थिति में आशंका तो यह है कि 21वीं शताब्दी के मध्य तक सम्भवतः विश्व में पार्कों की ओरी सुरक्षित वनों की बहुत कमी हो जायेगी। उपभोग की अधिकता इनको नष्ट कर देगी। पर्यावरणवादी इस विषय पर सजग हैं और वे लगातार यह माँग कर रहे हैं कि भूमि का उपयोग भविष्य की पर्यावरण स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाय, जिसका अर्थ है कि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य मानव प्रजातियों के लिए भी पर्याप्त स्थान पृथ्वी पर हो।[7]

प्रो. जेम्स लावलॉक का कहना है कि "मैं माइक्रोब्स तथा अन्य कम आकर्षक जीवनरूपों के पक्ष में बोलता हूँ क्योंकि उनके पक्ष में बोलनेवाला कोई नहीं हैं।"[8] यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में यह माँग जोरों से उठ रही है कि पृथ्वी की 3 करोड़ जीव प्रजातियों को भी इस भूमण्डल पर जीवित रहने का अधिकार अधिकृत एवं वैधानिक रूप से दिया जाय। क्योंकि इन सबके बिना मानवजीवन सुखी नहीं रह सकता। सचाई तो यह है कि चट्टानों, लैण्डस्केपों, इको-सिस्टम्स आदि के बिना मनुष्य का उद्यम सम्भव ही नहीं। इसीलिए प्राकृतिक संसाधनो का दुरुपयोग और अति उपयोग बन्द किया जाना चाहिए। प्रकृति के साथ अधिक प्रयोजनपूर्ण सम्बन्ध विकसित किया जाना चाहिए और पृथ्वी को अधिक सुरक्षित तथा उत्पादक बनाने के लिए इस प्रयोजनपूर्ण सम्बन्ध को वैधानिक गारण्टी के किसी उपाय के जरिए औपचारिक रूप दिया जाना चाहिए।[9]

विश्व के प्रबुद्ध क्षेत्रों में यह माँग भी जोर पकड़ रही है कि हमें सांस्कृतिक एवं जीव-प्रजाति के वंशों दोनों ही स्तरों पर वैविध्य पर बल देना चाहिए। इस दिशा में कई प्रयास भी हुए हैं। उत्तर -पूर्वी स्पेन में वहीं की एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राचीन भाषा- केटलॉन भाषा को अधिकृत मान्यता दी गयी है। वेल्स, बॉस्क और मावरी संस्कृतियाँ फिर से उभर रहीं हैं, उनका विलोप तो कभी हुआ ही नहीं था। परन्तु अब उनका नवोन्मेष हो रहा है। इसी प्रकार अमेरिका में वहाँ की स्वदेशी संस्कृतियों का भी नवोन्मेष हो रहा है।[10]

नार्मन मायर्स का कहना है कि हम जो बहुआयामी संकट झेल रहे हें उसके लिए हमें नवीकृत न होनेवाले संसाधनों के स्थान पर नवीनीकृत हो सकनेवाले संसाधनों पर तथा 'हार्ड टेक्नोलॉजी' के स्थान पर 'सॉफ्ट टेक्नोलॉजी' पर आधारित जीवनशैली विकसित करना चाहिए। लेकिन इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि हम अभी की 'मेकेनिस्टिक' जीवनशैली के स्थान पर अपनी सम्पूर्ण दृष्टि और व्यवहार में परिवर्तन लायें तथा अपने मूल्यों, जीवनशैलियों और दूसरे मनुष्यों तथा प्रकृति के प्रति अपनी अभिवृत्तियों में आमूलचूल परिवर्तन लायें। जहाँ तक ऊर्जा स्रोत की बात है, भविष्य का मुख्य ऊर्जा स्रोत तो और ऊर्जा ही होगी। क्योंकि वह असीमित है और प्रदूषण से मुक्त है। इस ऊर्जा रूप का अधिकतम उपयोग किया जाना आवश्यक है। वैसे ही मनुष्य के अतिरिक्त शेष प्रकृति सौर ऊर्जा का अत्यधिक उपयोग करती है। पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सौर ऊर्जा से ही करते हैं, सूर्य का विकिरण ही इसकी सामर्थ्य देता है। इस प्रक्रिया में निःसृत ऑक्सीजन ही जीवन के अन्य रूपों को पुष्ट करती है। सौर ऊर्जा वायुमंडल में ऐसे कणों की वृद्धि करती है जो जलीय चक्र को ऊर्जावान बनाते है।[11]

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में भी नये विचार तीव्रता एवं व्यापकता से उभरे हैं। अनुभव किया जा रहा है कि सबसे पहले तो स्वच्छ एवं सुन्दर परिवेश, स्वास्थ्यप्रद जलवायु और आनन्दवर्धक सांस्कृतिक परिवेश की रचना फिर से आवश्यक है। आधुनिक मनुष्य के अनेक रोग उसकी निरर्थक भागदौड़, अत्यधिक होड़ से उपजे तनाव, संसाधनों की लूट के वातावरण में उपजी कुंठाएँ और सिकुड़ते अवसरों की चिन्ता से उपजे अवसाद के परिणाम हैं। अब इस बात की चर्चा जोरों पर है कि आधुनिक चिकित्साशास्त्र मनुष्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की शारीरिक आवश्यकताओं और शारीरिक बीमारियों के बारे में तो विस्तार से ध्यान देता है परन्तु आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों के प्रति उतना सजग नहीं है। अत: अब आवश्यकता इन पक्षों की ओर ध्यान देने की समझी जा रही है। इसके लिए सभी स्तरों पर प्रयाय की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। सर्वप्रथम तो ऐसे भवन-शिल्प और ऐसे परिवेश के विषय में शोध हो रहे हैं जो मनुष्य को शान्त और संतुष्ट रखने में सहायक बनें। इसके साथ ही कृषि के क्षेत्र में ऐसे परिवर्तनों पर काम हो रहा है जिससे कि अधिकांशत: ताजा खाद्यान्न खाने का मिले और खाद्य प्रसंस्करण की आवश्यकता कम से कम पड़े। आहार की शैली को संतुलित बनाने के क्षेत्र में भी अनुसंधान हो रहे हैं। औषधि के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण पर भी बहुत बल दिया जा रहा है ताकि अधिकांश चिकित्सा स्थानीय वनस्पतियों एवं फलों तथा अन्य प्राकृतिक उपजों के आधार पर हो सके।[12]

आर्थिक क्षेत्र में भावी संभावना का एक मुख्य उभरता हुआ रूप अर्थशास्त्र के प्रति नयी समझ पर निर्भर है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद को ही समृद्धि का पैमाना माननेवाली अर्थशास्त्रीय कसौटियों को आज सब जगह बासी और गलत माना जा रहा है। क्योंकि इसमें उद्योगवाद की सामाजिक और पर्यावरणीय लागत का अनुमान और लेखा नहीं किया जाता। पृथ्वी और प्रकृति को मानव संसाधन माननेवाली दृष्टि का आज प्रबुद्ध विश्व जनमत द्वारा विरोध तेजी से उभर रहा है। इसके स्थान पर इस बात पर बल दिया जा रहा है कि पृथ्वी को एक चैतन्य, सजीव सत्ता माना जाय। जेम्स लवलॉक इसे ही जीवित, प्राणवान, चैतन्यमयी, गाया देवी, कहते हैं और उनका कहना है कि ये गाया देवी भी हमारा Frame of reference होना चाहिए। जब मानव जाति स्वयं को एक परिवार के रूप में अनुभव करेगी और साथ ही परिवार को पृथ्वी माता की एक जिम्मेदार और विवेकावान संतान के रूप में देखेगी, तभी वह अपने ज्ञान, अपने विश्वविद्यालयों और पाठशालाओं तथा अपने सम्बन्धों की पुनर्रचना कर सकेगी।

हेजेल हेंडरसन ने अपनी पुस्तक 'Paradigms in Prigress: Life

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Beyond Economics' में अध्याय 1 में ही अभी के अर्थशास्त्रियों और भविष्यवादियों केबीच के अन्तर को इस रूप मे स्पष्ट किया है कि अर्थशास्त्री जहाँ अतीत के तथ्य भण्डारों के आधार पर मुख्य रुझान देखकर भविष्यवाणी करते हैं, वहीं भविष्यवादी यह मानकर चलते हैं कि ये रुझान हमारी भावी नियति नहीं है। अर्थशास्त्री जहाँ आशावादी और निराशावादी भविष्यवाणियाँ करते रहते हैं तथा परिवर्तन को गैर संतुलन के रूप में देखते हैं, वहीं भविष्यवादी यह मानकर चलते हैं कि जटिल व्यवस्थाओं में सामान्य नामक कोई वस्तु नहीं होतीऔर आधारभूत परिवर्तन संभावित होते हैं। अर्थशास्त्री एकरैखिक विकास और मॉडलों के बारे में सोचते हैं जबकि भविष्यवादी यह मानकर चलते हैं कि विकास एकरैखिक नहीं होगा। अर्थशास्त्री निर्धारणवादी तथा विश्लेषणवादी होते हैं जबकि भविष्यवादी समग्रतावादी एवं संश्लेषवादी होते हैं। अर्थशास्त्री अल्पअवधिवाली चीजों पर फोकस करते हैं जबकि भविष्यवादी दीर्घकालिक लक्ष्यों पर फोकस करते हैं। अर्थशास्त्री गैर -मौद्रिक क्षेत्र को 'बाह्य' वस्तु मानते हैं जबकि भविष्य वादी सामाजिक तथ्यों, स्वैच्छिक उत्पादक क्रियाशीलताओं, पर्यावरण दशाओं, जीवनशैलियों आदि का पूरा लेखा -जोखा करते हैं। अर्थशास्त्री मात्रात्मक भविष्यवाणियाँ करते हैं जैसे कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद आदि का वार्षिक अथवा सावधिक अनुमान। जबकि भविष्यवादी गुणात्मक भविष्यवाणियाँ करते हैं और वे बहुस्तरीय स्रोतों से तथ्य संग्रहीत कर दीर्घकालिक वैश्विक संदर्भों में अपना भविष्य सम्बन्धी सम्बन्धी अनुमान व्यक्त करते हैं।[13]

विकास के नये संकेतकों के विषय में विश्वभर में चर्चा हो रही है और वर्ल्ड-वॉच इन्स्टीच्यूट ने टिकाऊ विकास की दृष्टि से पूँजी निवेश के लिए ये 6 क्षेत्र लगभग एक दशक पूर्व निर्धारित किये हैं-

1. खेतों की ऊपरी उर्वर सतह तथा फसली भूमि की रक्षा।
2. पृथ्वी पर सघन वनीकरण।
3. आबादी की दर को धीमा करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. ऊर्जा दक्षता को उन्नत बनाना।

5. नवीनीकृत हो सकने वाली ऊर्जा का विकास और

6. तीसरी दुनिया के ऋणों की माफी।

इस रिपोर्ट में वैश्विक सुरक्षा बजट के दो वैकल्पिक रूप भी उपस्थित किये गये हैं। जिसमें से एक ओर सैनिक सुरक्षा पर जारी व्यापक खर्च को जारी रखने की बात है तो दूसरी ओर टिकाऊ विकास के संदर्भ में वैश्विक सुरक्षा को परिभाषित करने की बात है। इस बात पर भी बल दिया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र में 'वैश्विक नागरिक' की यह जिम्मेदारी होगी कि वह राजनेताओं और व्यापारिक तथा अकादमिक क्षेत्रों के नेताओं पर इस बात का दबाव डाले कि वे अपनी प्राथमिकताएँ बदलें और आधुनिक अर्थशास्त्र के स्थान पर एक नैतिक विश्व की रचना को प्राथमिकता दें।[14]

भावी सम्भावनाओं की ओर संकेत करने वाले चिन्तकों एवं उनकी रचनाओं में से मुख्य हैं- डॉ. फ्रिट्जॉफ काप्रा (विशेषत: उनकी 'The Tuening Point',1981), बारबरा मार्क्स हब्बार्ड की The Evolutionary Journey'(1982),पीटर रसेल की The Global Brain'(1982),ज्याँ हुस्टन की The Possible Human (1982),हेजेल हेंडरसन की Paradigms in Prigress: Life Beyond Economics'(1991), नार्मन मायर्स की 'The Gaia Atlas of Future Worlds'(1990)जेम्स ग्लीक की 'Chaos' (1987),रूपर्ट शेल्ड्रक की 'A New Science of Life'(1983)आदि।

जैसा कि हेजेल हेंडरसन लिखती हैं: "अनेक परिपक्व औद्योगिक समाजों में वर्षों से सामाजिक इंडिकेटर्स को लेकर गम्भीर विचार -विमर्श चल रहा है। परन्तु बौद्धिक निहित स्वार्थों और नौकरशाही द्वारा इस प्रक्रिया के समक्ष लगातार प्रतिरोध उपस्थित किये जा रहे हैं। पर इतना तो निश्चित है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद ओर सकल घरेलू उत्पाद जैसे परम्परागत इंडिकेटर्स वस्तुत: ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में सैनिक प्रयोजनों से विकसित किये गये थे और प्रगति का उनका भौतिकवादी दृष्टिकोण विश्व मानवता को उपभोगवाद से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आगे नहीं ले जा सकता। इन अर्थशास्त्रीय इंडिकेटर्स द्वारा नैतिक विकास एवं टिकाऊ विकास सम्भव नहीं। राष्ट्रीय लेखा विवरणों में अच्छे और बुरे, 'वेल्थ' और 'इल्थ' के बीच विभेद करने का कोई विवेक ही नहीं है। अर्थशास्त्री तो धनकेन्द्रित क्रियाशीलताओं और 'डाटा' के क्षेत्र में ही पूरी तरह व्यस्त हैं। इसीलिए समृद्धि के मानवीय और नैतिक आधारों के मुद्दे को गैर -अर्थशात्री लोगों ने पहले उठाया। 'अनौपचारिक अर्थव्यवस्था' का क्षेत्र आधुनिक अर्थशात्र में अपेक्षित महत्व नहीं रखता है जबकि विश्व के सभी समाजों में लोग आपस में ऐसे बहुत से काम करते हैं जो औपचारिक अर्थव्यवस्था के दायरे के बाहर हैं। जैसे--साझा प्रयासों से अपने जीवन के लिए आवश्यक खेती की व्यवस्था, बीज का भण्डारण, सिंचाई की नहरों का निर्माण एवं प्रबंध, पुलों का निर्माण, पाठशालाओं का निर्माण, बच्चों और बूढ़ों तथा रोगियों की देखभाल, घरेलू प्रबंध, सामुदायिक सेवा के लिए स्वैच्छिक कार्य तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण सहयोगी कार्य। इनको औपचारिक अर्थशास्त्र के दायरे से प्राय: बाहर रखा जाता है। परन्तु ये क्रियाशीलताएँ सामाजिक जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश हैं। समृद्धि की अभी की अवधारणा इन सब मानवीय और नैतिक प्रयासों का कोई लेखा ही नहीं रखती। अत: समृद्धि के उसके आँकड़े और तथ्य वस्तुत: जितना बताते हैं उससे अधिक छिपाते हैं।[15]

वस्तुत: अर्थशास्त्र के अभी के नियमों के भीतर मानवीय लक्ष्यों और दृष्टियों के इन भावी रूपों की गणना सामान्यत: सम्भव ही नहीं है। परन्तु जितने बड़े स्तर पर इस क्षेत्र में नया चिन्तन उभर रहा है उससे ये सब निश्चय ही महत्त्वपूर्ण भावी सम्भावनाएँ हैं। इस विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि नया आर्थिक -चिंतन, नये दार्शनिक चिंतन, नये मनोवैज्ञानिक एवं जीववैज्ञानिक चिंतन, नये आध्यात्मिक एवं सांस्कृकि चिंतन तथा उनसे प्रेरित राजनैतिक लक्ष्यों एवं तदनुकूल रणनीतियों या कार्यनीतियों से अभिन्न रूप मे जुड़ा है। भावी सम्भावना का निर्धारण भावी सांस्कृतिक पुरुषार्थ एवं उत्कर्ष पर आश्रित है।

यह आश्चर्य की बात है कि प्राचीन ज्ञान-परम्परा और विद्या-परम्परा की धारावाहिकता जिस एकमात्र देश- भारतवर्ष में अविराम चल रही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
है और जहाँ आज भी आधुनिक सत्ताधीशों से अधिक आध्यात्मिक विभूतियों के प्रति आदर और श्रद्धा है, वहाँ किसी भी महान आध्यात्मिक विभूति ने न तो स्वयं अपरा विद्याओं के क्षेत्र में किसी विराट विद्या केन्द्र की स्थापना और प्रवर्तन की पहल को आवश्यक माना और न ही अपने शिष्यों या प्रशंसकों में से किसी राजनेता या प्रशासक या धनी को ऐसी पहल की प्रेरणा दी। यहाँ तक कि भारत विश्व का एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ राज्य भारत की मूल धारा और बहुसंख्यकों के धर्म को कोई भी वैधानिक सत्ता या मान्यता नहीं देता, इसके विपरीत अल्पसंख्यकों के मजहब और रेलिजन को अलग से वैधानिक सत्ता और मान्यता देता है। यह स्थिति विश्व में अभूतपूर्व है और यह स्थिति भारत में 15 अगस्त 1947 ईस्वी के बाद क्रमश: बनी है तथा छलपूर्वक बनी है। भारत के संविधान में इस बात का कोई स्थान नहीं था। यह तो श्री नेहरू के नेतृत्व में सोवियत संघ से प्रेरणा लेकर और सोवियत किस्म की नौकरशाही का विकास करते हुए पहले प्रशानिक कदमों से यह स्थिति लाई गई और फिर आपातकाल में स्वयं सम्प्रभु भारत राष्ट्र के साथ दो ऐसे विशेषण जोड़ दिए गए, जिनकी परिभाषाएँ नहीं की गई हैं और जो विश्व में प्रचलित अर्थों से नितान्त भिन्न रूप में शासकों तथा प्रशासकों के द्वारा प्रतिपादित की जाती हैं। इसके कारण संविधान की मूल भावना का बड़ी सीमा तक विलोप कर दिया गया है और इसे एक ऐसा राज्य बना दिया गया है, जो मूलभूत तत्वों के विषय में स्पष्ट नहीं है और इसीलिए जिसकी आड़ में मुख्यत: प्रशासक तथा उनके साथ कतिपय शासकीय राजपुरुष या राजनेता कुछ भी करने की छूट पाए हुए हैं। इसके कारण उन्होंने भारत में स्वदेशी विद्या केन्द्रों के विकास की कल्पना तक का पोषण नहीं होने दिया है और संयोगवश यहाँ की आध्यात्मिक विभूतियों को भी ऐसे किसी केन्द्र की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में भारत की अपनी ज्ञान-परम्परा और सभ्यता की परम्परा में सांस्कृतिक पुरुषार्थ और उत्कर्ष की प्रेरणा का परिवेश ही नहीं बन पाता। आगे तो सब कुछ महाकाल की इच्छा पर ही निर्भर है। काल प्रवाह ही प्रमुख और निर्णायक है।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. Samuel P. Huntington : The Clash of Civilizations and the Remaking of World Order, Chapter 2, pp. 50-51, Penguin, New Delhi, 1997
2. अथर्ववेद: 9/53/1, 4,7 एवं 10 तथा छान्दोग्योपनिषद : 2/13/1, महाभारत,आदि पर्व : 1/248-250, स्त्री पर्व: 2/241
3. Samuel P. Huntington: opp. cited, Chapter 1, pp. 26-27
4. Ibid, Chapter 1, pp. 21,28-29.
5. Bhiku Parekh: Gandhi, Chapter 3, pp. 47-48, Oxford University Press. New York, 1997.
6. Norman Myres: The Gaia Atlas of Future Worlds. Part 3, pp. 158-159, Robertson McCarta Limited, London, 1990.
7. Ibid, pp. 142-143.
8. Ibid p. 144.
9. Ibid.
10. Ibid, p. 161.
11. Ibid, pp. 170-171.
12. Michael Allaby : Inventing Tomorrow, Chapter 9, pp. 222-223, Abacus, London, 1977.
13. Hazel Henderson : Paradigms in Progress : Life Beyond Economics, Chapter 1, p.26, plate 1.3, Knowledge Systems, Inc., Indianapolis, IN 46231 (US A), 1991.
14. Ibid, Chapter 3.
15. Ibid, Chapter 6.

●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय-11

विकास की भावी दिशा

रेनेसां द्वारा यूरोप ने स्वयं को पॉलीन क्रिश्चिएनिटी के चर्चतंत्र की जकड़न से मुक्त किया। यद्यपि शताब्दियों में विकसित आनुवांशिक गुण-सूत्रों ने उसे अनेक ख़ीस्तीय मान्यताओं से अभी भी ग्रस रखा है, परन्तु मुक्ति की छटपटाहट है। यूरोप में आज पर्यावरण आंदोलन, ग्रीन मूवमेण्ट, विविध स्त्री आंदोलन आदि नयी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं, जो एक अहिंसक जीवन-पद्धति पर बल दे रही हैं। प्रो. जेम्स लवलॉक ने 'गाया' परिकल्पना प्रस्तुत की है जिसका सार यह है कि पृथ्वी का भौतिक पर्यावरण और उसके प्राणी सह-विकास में ही विकसित होते हैं और एक-दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमंडल का एक 'इकोसिस्टम' है जो जीवन्त है और एक तरह के 'Superorganism' की तरह काम करता है। पौराणिक ग्रीक देवी 'गाया' (भूदेवी) के नाम पर लवलॉक ने इस पद्धति को 'गाया' पद्धति नाम दिया है। इस पद्धति के अनुसार जीवन अपने पर्यावरण पर उससे कहीं अधिक निर्भर है जितना हम तर्कबुद्धि से समझते हैं। इसीलिए अगर हम जंगलों को उजाड़ते हैं या बड़ी संख्या में जीव प्रजातियों को नष्ट करते हैं तो 'गाया' का संतुलन विचलित होता है। जिससे कि वस्तुतः जीवन की प्रक्रिया की दरिद्र होती है और इस प्रक्रिया का प्रभाव अन्ततः मनुष्यों की आन्तरिक एवं बाह्य दरिद्रता में प्रतिफलित होता है। इसीलिए समृद्धि का सही मार्ग वही है जो 'गाया' की कार्यशैली में न्यूनतम हस्तक्षेप करे।[1] उल्लेखनीय है कि संस्कृति में पृथ्वी को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सकती है जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। इस प्रकार संरचनात्मक विकास के क्षेत्र में Morphic Resonance के इस सिद्धान्त के प्रसार के कारण भी समकालीन विश्व में अहिंसक आर्थिक समृद्धि की अभीप्सा रखनेवाली प्रवृत्तियाँ पुष्ट हो रही हैं।

भविष्य में विश्व में अहिंसक आर्थिक समृद्धि की संभावना साकार हो, इसके पक्ष में सक्रिय एक अन्य महत्वपूर्ण यूरोपीय आन्दोलन है- जर्मनी से उभरा ग्रीन मूवमेण्ट। वस्तुत: पर्यावरण का आन्दोलन तो 1960 के दशक से ही संयक्त राज्य अमेरिका में छोटे-छोटे समूहों के आन्दोलनों के रूप में आकार लेने लगा था। नदियों और बड़ी-बड़ी झीलों के प्रदूषण में तथा शहरों की हवा के जहलीरे होते जाने के तथ्यों ने पर्यावरण के प्रति ये संवेदनाएँ जगाईं। इस आन्दोलन में भी स्त्रियाँ ही अग्रणी थीं। धीरे-धीरे आन्दोलन जो पकड़ता गया। 1977 में वहाँ 'पृथ्वी दिवस' मनाया गया। मॉस मीडिया में इसका अच्छा प्रचार हुआ। धीरे-धीरे बात दुनिया भर में फैलती गयी और जर्मनी में तो ग्रीन मूवमेण्ट के नाम से अत्यंत शक्तिशाली पर्यावरण आन्दोलन उभरा जिसने राजनीति में भी प्रभावी हस्तक्षेप किये। आज तो विश्वभर में अनेक कन्सल्टिंग कम्पनियाँ पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रही हैं। अमेरिका में तो तीन चौथाई आबादी स्वयं को पर्यावरणवादी कहती है। वहाँ की अनेक बड़ी-बड़ी फर्में अपना पर्यावरण ऑडिट करवाती हैं और यूरोप में भी यह प्रवृत्ति फैल रही है। पर्यावरणवादियों की आधुनिक अर्थशास्त्रियों से तीखी झड़पें हो चुकी हैं और पिछले 30 वर्षों से पर्यावरणवादी समूह प्रगति, विकास, सम्पदा आदि की आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणाओं को यह कहकर चुनौती देती हैं कि ये अवधारणाएँ प्रकृति को क्षय-ग्रस्त कर रही हैं और भावी पीढ़ियों का भविष्य धूमिल कर रही है।[14]

1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण एवं विकास आयोग की रिपोर्ट -हमारा साझा भविष्य (Our Common Future)नाम से आयी जिसने टिकाऊ विकास (Sustainable Development)की बात की। तब से ये बहस जोर पकड़ती जा रही है।[15] फिलिप्पीन्स की ग्रीन फोरम ने एक श्वेत पत्र 1988 में तैयार किया जो आज विश्व में पर्यावरणवादियों के बीच गम्भीर चिन्तन एवं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के विषय में संकल्प जग रहा है। इस संकल्प से प्रेरित विभिन्न शक्तियाँ एवं प्रवृत्तियाँ सामने आ रही हैं।

'The Turning Point' का प्रकाशन 1982 में हुआ था। उसके जरिए फ्रिटजॉफ कॉप्रा ने अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाएँ प्रस्तुत की थीं। उसी समय फ्रिटजॉफ कॉप्रा ने भारत की भी 6 सप्ताह की यात्रा की थी। यहाँ वे मुम्बई विश्वविद्यालय तथा नयी दिल्ली में इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित कार्यक्रमों में भाग लेने आये थे। उन्हीं दिनों उनकी भेंट भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से हुई थी। जिसका विवरण उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित पुस्तक 'Uncommon Wisdom' के अंतिम अध्याय (अध्याय 8) में दिया है। जिसमें उन्होंने यह बताया है कि श्रीमती इंदिरा गांधी के सामने यह एक गम्भीर और जटिल समस्या थी कि वे किस प्रकार आधुनिक औद्योगिक संस्कृति का भारत में प्रसार करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की भी रक्षा करें। उन्होंने लिखा है कि श्रीमती इंदिरा गांधी ने उनसे कहा-

"भारत के अन्यंत निर्धन लोग भी एक विशिष्ट बुद्धिमत्ता से सम्पन्न होते हैं, उनमें हमारी आध्यात्मिक परम्परा से प्राप्त एक आन्तरिक बल होता है। मैं चाहूँगी कि हमारे लोगों की यह विशेषता बनी रहे, यह विशिष्ट बुद्धिमत्ता सुरक्षित रहे और साथ ही वे गरीबी से मुक्त हो सकें।"

कॉप्रा बताते हैं कि तब मैंने उन्हें बताया कि मैं जिन 'USof Technologies' की वकालत करता रहा हूँ, वे वस्तुतः परम्परागत मूल्यों और जीवन-शैलियों के साथ सर्वथा सुसंगत हैं। वे महात्मा गांधी द्वारा विशद्रता से प्रतिपादित विकेन्द्रीकृत एवं छोटे पैमाने के उद्योगों तथा ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों की नीति से सादृश्य रखते हैं और समूहों की आत्मनिर्भरता बढ़ानेवाले हैं। इसके बाद मैंने सौर ऊर्जा उत्पादनों का उल्लेख किया। इस पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुस्कुराहट के साथ कहा-

"परम्परागत उद्योगों एवं 'सॉफ्ट टेक्नॉलॉजीज' की जानकारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे है। मैं इन सबके बारे में बहुत समय से बोलती रही हूँ। फिर उनके चेहरे पर विषाद छा गया, वे क्षण भर रुकी, फिर बोलीं, यदि प्रारम्भ से करने की बात होती तो मैं देश का विकास बिलकुल अलग तरह से करती। पर मुझे तो यथार्थपरक रहना है। आधुनिक प्रौद्योगिकी का भारत में व्यापक फैलाव हो चुका है। उसे मैं फेंक तो नहीं सकती।''[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 1947 से 1980 तक भारत में आधुनिक उद्योगवाद की दिशा में जितनी तेजी से काम हो गया था, उसके संदर्भ में श्रीमती इंदिरा गांधी चाह कर भी एक अहिंसक संस्कृति के अनुरूप अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक समृद्धि के विकास के लिए पहल नहीं कर सकती थी तथापि वे इसके महत्व और इसकी आवश्यकता से भलीभाँति परिचित थीं। अत: यह भी स्पष्ट है कि अहिंसक आर्थिक समृद्धि के लिए संकल्पित विश्व की समकालीन शक्तियों एवं प्रवृत्तियों में भारतीय संस्कृति के वे संस्कार भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं जो श्रीमती इंदिरा गांधी में विकसित थे तथा जो निश्चय ही भारत के अधिकांश राजपुरुषों में आज भी संस्कार रूप में अवश्य होंगे। ऐसे ही संस्कार विश्व की अन्य प्राचीन सांस्कृतिक विभूतियों में भी अवश्य ही होंगे- चीन, केल्त, मिस्र, मस (मेक्सिको), पेरू, बाण्टू, घना, नाइजीरिया, कांगो, इथिओपिया, माले, मंगोलिया, मंचूरिया, तिब्बत, जापान, इंडोनेशिया, नेपाल, श्रीलंका, वियतनाम, म्यांमार, थाइलैंड, कोरिया आदि में। साथ ही, सम्पूर्ण यूरोप में खीस्तपंथ से पूर्व की पैगन संस्कृतियों के नवोन्मेष के लिए नयी-नयी पहल हो रही है। वे सभी संस्कृतियाँ बहुदेवपूजक, वैविध्यमूलक एवं बहुपंथवादी अत: अहिंसक जीवन-शैली वाली रही हैं। आज भी केल्त संस्कृति के प्राचीन संस्कार हमें स्कॉटलैण्ड आदि में दिखते हैं।

'गाया' अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि सम्पूर्ण भूमण्डल का समस्त जीवन परस्पर निर्भर और अन्योन्याश्रित है। हमारी पृथ्वी एक जीवन्त संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान का एक जैव अवयव हैं। यह पृथ्वी निरंतर अपने नये-नये विकास को सामने लाती रहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हेजेल हेन्डरसन का मानना है कि वर्तमान युग सौ युग है और यह वस्तुत: एक नये प्रकाश का युग भी है। हमारी नयी प्रौद्योगिकी 'गाया' की प्रतिभा से बहुत कुछ सीखेगी। सूर्य से प्राप्त फोटान कणों एवं तरंग कणिकाओं का नित्य प्रवाह हमारे लिए ज्ञान के नये प्रकाश का भी स्रोत हो सकता है, यदि हम उसके प्रति ग्रहणशीलता जागृत करने वाली जीवन-शैली अपनायें। यह नया युग पारस्परिक विकास का युग होगा- केवल आर्थिक अभिवृद्धि या आर्थिक विकास का नहीं। क्योंकि आर्थिक अभिवृद्धि की चालू अवधारणा तो अफ्रीका तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में भूख, कंगाली, बेरोजगारी और रेगिस्तानी विस्तार को ही जन्म दे रही है। उनका मानना है कि हमारे समुद्र, हमारा पर्यावरण, हमारे ecosystems हमारा साझा आकाश और भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था-सभी कुछ को पारस्परिक भावना से ही देखना है और तदनुरूप जीवन-शैली विकसित करनी है। इसके लिए प्रतिस्पर्धा के नियमों को तिलांजलि देकर सहकार और सहयोग के नियमों पर आधारित सामाजिक व्यवस्थाएँ बनानी होंगी। उसके लिए सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व अथवा ट्रस्टीशिप की धारणा को विकसित करना होगा।

हेजेल हेन्डरसन कहती हैं- "समय आ गया है जब उद्योगवाद एवं अर्थशास्त्र के दो यूरोपीय दार्शनिकों-कार्ल मार्क्स और एडम स्मिथ को भव्य तिलांजलि देकर मानवीय एवं टिकाऊ पारिस्थितिकी के अनुरूप विकास की एक नयी बहु-सांस्कृतिक दृष्टि के लिए अन्य उपादेय अनुशासनों का फिर से समाकलन करना चाहिए। व्यापकतर संक्रमण की वर्तमान स्थिति में प्राथमिकताओं को फिर से नये क्रम में व्यवस्थित करने की और मूल्यों पर आधारित एक नयी राजनीति की आवश्यकता है।"[5]

श्रीमती इंदिरा गांधी की जिन बातों की चर्चा ऊपर आयी है, उन्हें ध्यान में रखें तो यह नहीं कहा जा सकता कि नयी अहिंसक अर्थव्यवस्था अथवा अहिंसक आर्थिक समृद्धि की दिशा में सचमुच कितनी तेजी से और कितना काम हो पायेगा, परन्तु यह निश्चित है कि इस दिशा में कतिपय शक्तियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सक्रिय हो गयी है। यह आकस्मिक नहीं है कि आज के विभिन्न राजप्रमुखों, कॉरपोरेट एक्जीक्यूटिव अधिकारियों एवं उनके भाषण लेखकों ने इन मुहावरों का इस्तेमाल तो शुरु कर ही दिया है – The New Paradigm, The New World Order, Partnership, Networking, Organic, Bio-diversity, Plantary ecosystem इत्यादि।

दो अमेरिकी चिन्तकों वॉरेन जे. बेनिस और फिलिप इ. स्लेटर ने 1968 में ही यह बात कह दी थी कि आधुनिक कॉरपोरेशन्स तथा अन्य संस्थाएँ शीघ्र ही 'Unmanageable' हो जायेंगी। उनका कहना था कि पिरामिडी ढाँचेवाली ये संरचनाएँ कुछ वर्षों बाद लड़खड़ा कर ढह जायेगी और लोकतांत्रिक तथा विकेन्द्रीकृत संस्थाओं और संगठनों के नये रूपों को सामने लाना होगा।[6]

अहिंसक आर्थिक समृद्धि के लिए संकल्पित समकालीन वैश्विक प्रवृत्तियों की एक महत्वपूर्ण सूचक तो स्वयं अमेरिकी राष्ट्रपति के प्रशासन की ग्लोबल 2000 रिपोर्ट ही है, जो जुलाई 1980 में जारी की गयी थी। रिपोर्ट ने लक्ष्य किया था कि जनसंख्या लगातार बढ़ रही है, अति–उपभोगवादी राष्ट्रों एवं अल्प उपभोक्ता राष्ट्रों के बीच की खाई अधिकाधिक चौड़ी हो रही है, विश्व-खाद्यान्न-वितरण-व्यवस्था अपर्याप्त ही रहने के लक्ष्य हैं, अफ्रीका एवं एशिया में आगे भी करोड़ों लोग अकाल की मार से भुखमरी झेल रहे होंगे, विभिन्न क्षेत्रों में पानी की कमी की समस्या विकट होने वाली है, कृषि–भूमि एवं अन्य भूमि का अधिकाधिक क्षरण हो रहा है, विशाल उपजाऊ क्षेत्र मरुस्थल में बदल रहे हैं, 21वीं सदी के मध्य तक पृथ्वी के प्राणी–जगत एवं वनस्पति जगत की कुल प्रजातियों में से 20 प्रतिशत प्रजातियों के विलुप्त हो जाने का खतरा है, तेल-संकट बढ़नेवाला है। परम्परागत ईंधन की भी कमी हो रही है। संसार भर में खनिज उत्पादों का तीन चौथाई भाग विकसित देशों में रह रही विश्व की एक चौथाई आबादी द्वारा उपभोग किया जाता रहेगा। औद्योगिक प्रक्रिया एवं अश्मीभूत ईंधन के दहन से अनेक क्षेत्रों में अम्लीय वर्षा से फसलें बर्बाद होंगी तथा झीलों–सरोवरों की मछलियाँ बड़ी मात्रा में मर जायेंगी। पृथ्वी के वायुमंडल में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती चली जायेगी। एक ओर ग्लोबल वार्मिंग का खतरा है, दूसरी ओर हिमयुग की वापसी की भी आशंका है। इन परिवर्तनों में विश्व का खाद्य उत्पादन अचानक तेजी से घटेगा। रेडियोएक्टिव कचरे एवं भयावह हानिकर रसायनों की समस्या अनेक देशों में लोगों का स्वास्थ्य चौपट करती रहेगी। अत: भविष्य के लिए वैकल्पिक मार्गों की रचना अत्यावश्यक है।[7]

इस प्रकार वर्तमान स्वरूपवाली आर्थिक समृद्धि का कुल दौर तो लगभग 200 वर्षों तक ही विश्वव्यापी रहा। उद्योगवाद की विफलता सभी प्रबुद्ध क्षेत्र स्वीकार करने को विवश हैं। हेजेल हेन्डरसन ने इस स्थिति को इन सारगर्भी शब्दों में व्यक्त किया है- "इस प्रकार निश्चितता, व्यवस्था एवं संतुलन की खोज ने औद्योगिक समाजों को विकासात्मक सोपान से होते हुए बन्द गली तक पहुँचा दिया और अब 'एन्ट्रॉपी' के नियम उनके ऊपर लगे अभियोगों की मानो सुनवाई कर रहे हैं। परन्तु यदि वे अभी भी सामने विद्यमान बहुआयामी संकटों को एक संकेत और 'फीडबैक' के रूप में ले लें तथा इनसे सीखकर व्यवस्था की पुनर्रचना कर सकें तो टिकाऊ व्यवस्था में उनका रूपांतरण संभव होगा और विश्व-व्यवस्था के नये रूप में उनका एक संतुलन क्रमश: स्थापित हो जायेगा। यदि हम संरचना-विकास-परक मॉडल को प्रयोग में लायें तो हम देख सकते हैं कि पृथ्वी क सभी subsystems एक साथ ही संकट की स्थिति में पहुँचेंगे। इस संकेत को ग्रहण करने पर हम उस व्यवस्थित रूपांतरण को समझ सकते हैं जो घटित हो रहा है। संरचना-विकास-परक इस परिवर्तन की प्रक्रिया में पुरानी व्यवस्था के बंधन विलुप्त हो रहे हैं और आशा है कि कुछ नया उभर कर आयेगा। जैसे कि कोष में से तितली निकली है। प्रसव एवं जन्म एक पीड़ादायक प्रक्रिया है, जैसा कि स्त्रियाँ जानती ही हैं। एक नयी विश्व-व्यवस्था जन्म ले रही है। एक सच्चे अर्थों में तो एक नयी अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जैसे अस्तित्व में ही है। तीसरी दुनिया के देशों के पास आज वह शक्ति है कि वे यदि चाहें तो वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था को अवैध घोषित करार दें (जो कि वह है ही) और उत्तरी गोलार्द्ध के बैंकर्स को उनके झाँसे का माकूल जवाब देते हुए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं को एक साथ दीवालिया घोषित कर दें। इसके साथ ही तीसरी दुनिया के ये देश आपस में क्षेत्रीय व्यापार समझौते और परस्पर सहयोगी गुटों का निर्माण कर रहे हैं और अपने संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में काफी आगे जा चुके हैं। कच्चे तेल का नियंत्रण तो पहले से ही तीसरी दुनिया में जा चुका है। अनेक महत्वपूर्ण खनिज, जिनका आयात औद्योगिक देश करते हैं और जिन पर संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी आपूर्ति के लिए 80 से 100 प्रतिशत तक निर्भर हैं (कोलम्बियम, अभक्र की चादरें, स्ट्रान्टियम, मैगनीज, कोबाल्ट, क्रोमियम, एल्युमीनियम और प्लेटिनम) ब्राजील, थाईलैंड, नाइजीरिया, टर्की, जिम्बाब्बे, जमैका और सूरीनाम से अमेरिका पहुँचते हैं जबकि कतिपय अन्य खनिज रूस एवं दक्षिणी अफ्रीका से वहाँ पहुँचते हैं।''[8]

हेजेल हेन्डरसन कहती हैं कि यद्यपि मार्क्स के चित्त में तथाकथित सर्वहारा वर्ग (Proletariat) के 'Cause' के लिए अतिशय धर्मोत्साह (zeal) था तथापि इस धर्मोत्साह ने उन्हें पूरी तरह अंधा नहीं कर दिया था। मूल्य का श्रम-सिद्धांत प्रकृति और उसके निवेश के प्रति कोई संवेदना प्रदर्शित नहीं करता। तब भी 1844 में लिखी आर्थिक एवं दार्शनिक पाण्डुलिपियों में मार्क्स ने लिखा था कि ''कामगार मनुष्य प्रकृति के बिना कुछ भी रच नहीं सकता। प्रकृति के ऊपर ही उसका श्रम निर्भर है, वहीं से उसके श्रम की अभिव्यक्ति है और प्रकृति के ही साधनों से वह उत्पादन करता है।'' अतः यह तो स्पष्ट हे कि मार्क्स के मन में यह पक्ष था। उन्होंने यह भी लिखा थाकि ऐसी वस्तुएँ है, जिनकी बाजार या समाज में कोई कीमत नहीं है, तब भी उनका उपयोगिता मूल्य है। जैसे कि हवा, धरती, बाँगर जमीन, घास का मैदान आदि। यह स्पष्ट नहीं कि मार्क्स के इन पक्षों की मार्क्सवादियों ने पूरी तरह उपेक्षा इतने लम्बे समय तक क्यों की। सम्भवतः इसलिए कि उनके क्रांतिकारी इरादों और सामाजिक संगठन के काम में ये चीजें बाहरी परत या बाहरी परिधि की चीजें थीं।... बहरहाल, नयी सैद्धांतिक संरचना के प्रयास मार्क्स, कीन्स आदि सबके विचारों से परे जाते हैं। ऊष्मागतिकी के सिद्धांतों ने उत्पादन और वितरण के भौतिक पक्षों पर पुनर्विचार की प्रेरणा दी है, विशेषकर ऊष्मागतिकी के दूसरे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नियम-एन्ट्रॉपी के नियम ने। मुझे आशा है कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भविष्य की दिशाओं के निर्धारण में ऊष्मागतिकी के 'एप्रोच' को ध्यान में रखकर ही कार्य होगा। साथ ही, अन्य अनुशासनों से भी अर्थशास्त्र को सीखना होगा। सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्ष मूल्य व्यवस्था का निर्धारक तत्व होते हैं। जबकि अर्थशास्त्री इन्हें एक स्थितर तत्व मानकर सोचते रहे हैं। बेन्जामिन वार्ड ने अपनी पुस्तक 'What Went Wrong with Economics' में इस पर प्रकाश डाला है।[9]

हेजेल का कहना है कि हम पेट्रोलियम युग से सौर युग में प्रवेश कर रहे हैं। अश्मीभूत ईंधनों का पेट्रोलियम युग 1700 के बाद इंग्लैण्ड में शुरु हुआ और इस समय अपने शिखर पर है तथा 23वीं शताब्दी के आते-आते वह पूरी तरह सत्व-विहीन हो चुकेगा। अत: सामाजिक आर्थिक संक्रमण के इस दौर में अवधारणात्मक संक्रमण भी अवश्यम्भावी है। गैलिलियो, बेकन और डेकार्टे से प्रारम्भ तार्किक चिन्तन की परम्परा न्यूटन और लिबनिज से होते हुए अबके भौतिकवादी, प्रौद्योगिकीय निर्धारणवादी चिन्तन तक चली आ रही थी। पूँजीवाद, समाजवाद और कम्युनिज़्म आदि इन्हीं की उपज हैं। परन्तु अब वैचारिक अवधारणात्मक संक्रमण का समय सामने है। इसके साथ-साथ ही सांस्कृतिक संक्रमण भी घटित हो रहा है। जो लोग यह समझ रहे थे कि मानवीय प्रगति की पराकाष्ठा हो चुकी है, वे अब यह सर्वथा अभिनव एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन अपने सामने ही देख रहे हैं।[10]

आज इस यथार्थ को बहुत से लोग स्वीकार कर रहे हैं कि मनुष्य में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह भूमंडल का 'प्रबंधन' (Manage) कर सके। इस बोध ने प्रबुद्ध विचारकों के भीतर एक गहरी विनम्रता उत्पन्न की है। नये समाज संगठन, शासन के नये रूपों तथा विकेन्द्रीकृत ढाँचों और सहभागितामूलक लोकतांत्रिक क्रियाकलापों की आवश्यकता अब निर्विवाद रूप से मान्य है।

विश्व की अर्थव्यवस्था के वे क्षेत्र जिन्हें औपचारिक क्षेत्र नहीं माना जाता था, वस्तुत: अर्थव्यव्था में अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सभी संस्थाबद्ध आर्थिक क्षेत्र उनमें से ही निकलते हैं और उन्हीं पर टिके रहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब औद्योगिक राष्ट्र भी इस सच्चाई को जानने लगे हैं। हेजेल कहती हैं -

"उत्तरोत्तर उच्च स्वरों में प्रकृति से मिल रहे संकेतों की अनुगूँज आज प्रतिदिन प्रस्तुत की जा रही अनेकों रिपोर्टों तथा मॉस-मीडिया के कवरेज में सामने आ रही है और विभिन्न नागरिक आंदोलनों द्वारा भी वही स्वर चारों ओर गूँज रहा है। जिससे कि विश्व की body politic को सजग और सावधान होने की चेतावनियाँ लगातार मिल रही हैं वह प्रकृति एवं पर्यावरण में परिलक्षित खतरों की ओर ध्यान दें। इन अनुगूँजों के फलस्वरूप एक नयी राजनैतिक संवेदना एवं क्रियाशीलता तथा नयी अवधारणाएँ भी अधिकाधिक प्रभावी स्वर में सामने आने लगीं। इनके फलस्वरूप दैनिक जीवन में ऐसे कार्य सामने आ रहे हैं जो उद्योगवादी झक में डूबे हुए लोग असम्भव ही मानते थे। जैसे कि भूमध्य सागर की सफाई के बारे में उसके तटवर्ती क्षेत्र के 18 राष्ट्रों द्वारा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की एक व्यापक संधि पर हस्ताक्षर करना जिसमें 10 खरब डॉलर की लागत आयेगी और जिसका बड़ा हिस्सा भूमध्य सागर के प्रदूषण के लिए जिम्मेदार राष्ट्रों-फ्रांस, स्पेन एवं इटली द्वारा अदा किया जायेगा। सरकारें इन परिवर्तनों को लाने वाले नागरिक आंदोलनों की केन्द्रीय उत्प्रेरकों की भूमिका को मानने लगी हैं, जबकि अभी तक शक्तिशाली स्वार्थ-समूह अपने स्वार्थ की साधक नीतियों तक ही सिमटे रहते थे। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की दिसम्बर 1979 की सेंटर रिपोर्ट में नोट किया गया था कि इन गैर-सरकारी संगठनों क प्रयास विकास के टिकाऊ रूपों की दिशा में सफल रूपान्तरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। कतिपय कार्य जो सरकारें, निगम और संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियाँ नहीं कर पातीं, ये गैर-सरकारी संगठन सम्पन्न कर सकते हैं।

अब तो अधिकृत तौर पर भी ऊर्जा संकट का बहुत पहले 1969 में ही पूर्वानुमान कर सकने के लिए तथा विकल्पों के प्रोत्साहन, सौर ऊर्जा एवं टिकाऊ विकास की रणनीतियों के प्रोत्साहन तथा निःशस्त्रीकरण और शान्ति, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के मुद्दों को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय एजेण्डा का अंग बनाने का श्रेय गैर-सरकारी संगठनों और नागरिक आंदोलनों को दिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाने लगा है। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अपेक्षित विकल्प अभी के वर्चस्वी नियंत्रण केन्द्रों एवं छायी हुयी संस्कृति से आ ही कैसे सकते हैं ? व्यक्ति संस्थाओं की अपेक्षा तेजी से सीखते हैं और डायनासोर का दिमाग नये संदेश ग्रहण करने में कापी सुस्त होता है। अगर रास्ता पूँजीवाद और राजकीय पूँजीवाद (मार्क्सवाद) से हटकर कोई तीसरा होना है तो इस तीसरे रास्ते की रचना तीसरी दुनिया ही करेगी। उनके साथ विकसित देशों की अपेक्षाकृत अधीन रूप में जी रही आबादियाँ भी इस काम में योग देंगी : काले लोग, देसी लोग, नस्ली अल्पसंख्यक समूह और अर्थपिशाच के विस्तार से आतंकित वे सभी लोग- जिनमें संसार की स्त्रियाँ शताब्दियों से आतंकित जनों में से हैं। विकास का प्राचीनतम नियम फिर से लागू हो रहा है : सफलता ही विफलता सिद्ध होती है। या यह कहिए कि अनुकूलित समूहों और समाजों की अपेक्षा अनुकूलनशील समाजों को नये प्रवाह में अपेक्षाकृत शीघ्र दक्षता प्राप्त हो जाती है। नृतत्वशास्त्री इसे कहेंगे- कछुए द्वारा दौड़ में बाजी मारना। जो संस्कृतियाँ अतीत की दशाओं में सबसे बढ़िया अनुकूलित, अभ्यस्त एवं दक्ष थीं, वे अपेक्षाकृत कम दक्ष और अधिक लचीली संस्कृतियों से काफी पीछे रह जायेंगी क्योंकि नयी दशाओं के अनुकूल सर्वोत्तम अनुकूलन की क्षमता इन कम दक्ष और अधिक लचीली संस्कृतियों में होती है।

यदि हम यह पहचान सकें कि परिवर्तन और अनिश्चय सृष्टि के आधारभूत सिद्धांत हैं तो हम भविष्य का अभिनन्दन करेंगे। हममें से हरेक के भीतर जो जीवन-शक्ति (Life Forec) है, उसे हम तब सम्भव एवं सम्भाव्य पर 'फोकस' कर सकेंगे। कोई चाहे तो इसे भविष्य के प्रति श्रद्धा कह सकता है अथवा यह कह सकता है कि यह ज्ञान है कि इस भूमण्डल के प्रभारी हम नहीं हैं, इसकी जिम्मेदारी का गुरुत्तर बोझ हमारे कंधों पर नहीं है। यह भूमण्डल कोई ऐसा अंतरिक्षयान नहीं है, जिसका कि हम मानवगण 'प्रबंधन' अथवा 'संचालन' कर रहे हों, जिस अंतरिक्षयान का स्टीयरिंग हमारे हाथ में हो। वह इमेज अब बासी पड़ गयी और उस इमेज ने अपना जो काम करना था, कर दिया। उसने हमारे भीतर वाहनों, यातायात, गति और भौतिक शक्ति के प्रति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बहुत ही बचकाना सम्मोहन भर दिया था। वैज्ञानिक अनुसंधानों और लोकमानस में विद्यमान ज्ञान-सूत्रों-दोनों के भीतर से विकसित हो रही परिपक्व समझ, जो कि युगों पुरानी धार्मिक एवं पौराणिक परम्पराओं से भी पोषित है, यह है कि हम इस पृथ्वी के सचेत अंश हैं और यह पृथ्वी कोई यांत्रिक अंतरिक्षयान नहीं है, अपितु एक जीवन्त ग्रह है, एक सम्पूर्ण, प्रचुरता उड़ेलता हुआ, स्पंदित, जीवन्त जीव या अवयव-संस्थान (आर्गेनिज़्म), गाया, रहस्यमय और स्वत: स्वयं को संगठित करने में समर्थ पृथ्वी माता जो हम सबकी, सम्पूर्ण जीवन की पालक और पोषक है।''[11]

अहिंसक समृद्धि की अवधारणा के विकास में यूरोप के 'इको-फेमिनिस्ट' आंदोलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका है और भावी विश्व में अहिंसक आर्थिक समृद्धि के लिए सक्रिय प्रवृत्तियों में से 'इको-फेमिनिस्ट' आंदोलन एक है। 1970 के बाद से 'इको-फेमिनिस्ट' आंदोलन बढ़ता ही गया है और इसके बाद रचित समृद्ध साहित्य ने सामाजिक विश्लेषण के वैकल्पिक आधार प्रस्तुत किये हैं। ऐसी विचारकों में उल्लेखनीय हैं - ग्लोरिया स्टेनेम, एड्रिने रिच, मेरी डेली, लिंडा ई. ओल्ड्स, इवा किउल्स, एलिस बोल्डिंग आदि। चार्लीन स्प्रेतनाक की पुस्तक 'The Politics of women's Spirituality', मेरी डॅली की पुस्तक 'Pure Lust', लिंडा ई. ओल्ड्स की 'Fully Humane', इवा किउल्स की बहुचर्चित पुस्तक तथा एलिस बोल्डिंग की 'Women in the Twentieth Century' महत्वपूर्ण साहित्य हैं। इन पुस्तकों ने प्रेम, भय और स्वयं जीवन के अर्थों पर तथा स्त्री की विराट भूमिकाओं पर विशदता से विचार प्रस्तुत किये हैं और मानवीय संबंधों के नये क्षितिजों तथा नये आयामों को उद्घाटित अथवा साहस के साथ प्रस्तुत किया है।

क्रिश्चियन यूरोप में 12वीं शताब्दी 'सुसभ्य प्रणय पंथ' (Courtly Love Cult) के सीमित प्रसार से प्रेम की वैधता देने की पहली बार चेष्टा की गयी। वह विफल रही। 14वीं शती में रोमेंटिक प्रेम (Romantic Love) धारणा वहाँ फैली। परन्तु इधर प्रेम भी औद्योगिक सभ्यता में बहुत अस्थायी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आवे बनकर रह गया। तलाकों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि के जरिए वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा तो किसी सीमा तक की गयी परन्तु वहाँ रोमेंटिक प्रेम अब पुराने जमाने की वस्तु हो गया। अब 'Gay Couples', 'Lesbian Couples' और 'International Living Groups of Unrelated Individuals' का दौर है। जिस Monogamy का सिद्धान्त क्रिश्चियन चर्च ने बड़े परिश्रम एवं यत्न से रचा था, वह 1960 से ही हवा हो गया है। ऐसी स्थिति में स्त्री-आंदोलन यूरोप में प्रेम (Love) के सभी सम्भव पक्षों एवं आयामों पर गहराई से चिन्तन कर रहा है और एक विराट मानवीय प्रेम पर बल देने की शुभ प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं जो अहिंसक आर्थिक समृद्धि की सम्भावनाओं में भी योग देंगी।

हेजेल हेन्डरसन "Paradigms in Progress : Life Beyond Economics" के अध्याय 5 "Beyond the battle of the Sexes" में कहती हैं-

"आज के सामाजिक उथल-पुथल के दौर में 'प्रेम' से हमारा आशय क्या है, इसको पुनर्परिभाषित किया जाना आवश्यक और उचित होगा। क्योंकि हम पाते हैं कि दूसरे के प्रति संवेदनशीलता और दूसरे के ध्यान रखने तथा दूसरे की सार-सम्हाल की अभिव्यक्तियाँ आज नये आयाम एवं नये विस्तार के साथ प्रगट हो रही हैं। बच्चों और सयाने लोगों के पोषण के प्रति ऐसी संवेदनाएँ और ऐसी सार-सम्हाल की प्रवृत्तियाँ बड़े पैमाने पर सामने आ रही हैं। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि क्या 'प्रेम' केवल युग्मीय अर्थों वाला पद है और क्या केवल उसके अभिभावकत्व-परक यौन-परक अर्थ ही होते हैं? या क्या इसकी परिभाषा इतनी विशद हो सकती है कि नये, वैश्विक, परस्पर निर्भर, बहुसांस्कृतिक मानव परिवार में, सम्पूर्ण मानव परिवार एक-दूसरे के लिए संवेदनशील होने की योग्यता विकसित कर सके और एक-दूसरे की सार-सम्हाल को अपना सहज स्वभाव बना सके। अभी तो प्रेम का जो विशिष्ट युग्मीय अर्थ है, उसने उसे एक दुर्लभ वस्तु बना डाला है। ऐसी दुर्लभ वस्तु जिसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यदि ज्यादा उदारता से बाँटा गया तो वह 'पतली' या 'पनियल' हो जायेगी और सतही सम्बन्धों अथवा निष्ठा की कमी या स्वच्छंद एवं अविवेकी यौनाचार की ओर ले जायेगी।

ऐसे पूर्वानुमानों की पुनः परीक्षा का समय आ गया है। वस्तुतः यह प्रेम नहीं है जो कि दुर्लभ है। तथ्य तो यह है कि आधुनिक समाजों में अनेक लोग अपने प्रेम की अभिव्यक्ति देने के मामले में कुंठा से ग्रस्त हैं। इसका कारण है टीवी, कम्प्यूटर के केन्द्रों, अनाम वास्तुशिल्प आदि प्रौद्योगिक कारणों से उपजा अकेलेपन और परकीयता का भाव। पश्चिम में तो व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्धा के दौर ने प्रेम की अभिव्यक्ति को और अधिक कुंठित कर दिया। यह सत्य है कि हमारा समय मृत्यु के कारण सीमित है। परन्तु इसका यह अर्थ है कि हम अपने प्रेम का अपसंचय करें अथवा इसे केवल किसी एक विपरीत लिंगीय व्यक्ति को बाँटें अथवा अपने सगे कुटुम्ब तक इसे सीमित रखें। प्रेम को एक दुर्लभ वस्तु मानकर व्यवहार करने पर हमारे भीतर अत्यधिक चिन्ता-फिक्र, त्याग दिये जाने का भय और ईर्ष्या-द्वेष की दशा बनी रहती है।

मान लीजिए कि हम प्रेम के विषय में अपनी आधारभूत प्रतिज्ञा को बदलकर उसे एक प्रचुर और नैसर्गिक वस्तु की तरह देखें तथा यह मानें कि अपनी मनोवृत्ति बदलकर हम सबके प्रति प्रेममय हो सकते हैं। वैसी स्थिति में हम सेक्स-केन्द्रित तथा स्त्री-पुरुष के मध्य सीमित प्रजननात्मक अर्थ और 60-70 के दशक में उभरे सेक्स-केन्द्रित मनोरंजनात्मक अर्थ (उसके सम्पूर्ण अपरिपक्व उत्साह और निष्ठाशून्यता के साथ)-इन दोनों से ऊपर उठकर प्रेम के एक व्यापक स्वरूप की अनुभूति कर सकते हैं।

हम मनुष्यों को लिंग-विचार का बंदी नहीं बने रहना चाहिए और रोमोंटिक लव, सेक्स, भय और प्रतिस्पर्धा के असबाब के साथ प्रेम को बाँधे नहीं रखना चाहिए। हमें किन्हीं भी शर्तों से न बँधे हुए, **निश्छल और विशद प्रेम के गहरे अर्थ और पाठ सीखने चाहिए क्योंकि वस्तुतः प्रेम तो उसे ही कहा जा सकता है। प्रेम और सहयोगपूर्ण परोपकारी भावना से भरपूर**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवहार तथा प्रेम करने की अपनी क्षमताओं को हमें विशदतर बनाने का सजग-सचेत प्रयास करना चाहिए। क्योंकि परस्पर निर्भरता के इस युग में ऐसा प्रेमपूर्ण एवं परोपकारी व्यवहार अत्यधिक एवं निर्णायक महत्त्व रखता हैं।

आज व्यक्तिवादी लोग और होड़ की भावना व्यापक सामाजिक असफलता को जन्म दे रही है। समुदाय बनाने की क्षमता को जो कि उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि अभी की प्रतिस्पर्धा आदि की धारणाएँ हैं, पूरा महत्त्व देकर सामाजिक संतुलन स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। आज हम रूढ़ अर्थों में एक -दूसरे कों 'Own' करने की आशा नहीं रख सकते और न ही 'प्रेम' का कोई दावा दूसरों पर कर सकते हैं। ऐसा केवल एक प्रेमपूर्ण समुदाय में ही सम्भव है, जहाँ प्रेम की इस भावना का मुक्त रूप में परस्पर आदान-प्रदान करने का परिवेश एवं प्रवृत्ति हो। वस्तुतः दूसरों की सार-सम्हाल पहले से ही एक नये उद्योग के रूप में उभर चुकी प्रवृत्ति है। जगह-जगह 'डे-केयर सेण्टर' हैं, मेडिलक सर्विस के केन्द्र हैं और परामर्श केन्द्र हैं तथा घर पहुँचकर आपकी समस्याएँ सुलझाने में सहायता करने वाले 'Home Helpers' भी आज सुलभ हैं। ये सब मानो बिना किसी योजना के उभर आये हैं। लाखों-करोड़ों स्त्रियाँ जो पहले घरों में ये ही सेवाएँ मुफ्त में देती थीं, आज इन सेवाओं के बाजार में उतर आई हैं और उन्हें मान्यता भी मिल रही है और आमदनी भी हो रंही है। **सार-सम्हाल के इस काम को आर्थिक स्वरूप दे देने से उस उत्पादकता को मान्यता मिल गयी है जो पहले किसी गिनती में ही नहीं थी। जबकि औपचारिक, अधिकृत, धन के आधिपत्य वाले, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में माप करने वाले सेक्टर को इस उत्पादकता से बहुत सहायता मिल रही थी, परन्तु इसे कूता नहीं जा रहा था। यह सेक्टर यों ही यह रियायत पा रहा था।**

आवयकता इस बात की है कि अर्थशास्त्रियों ने अब तक सहयोग और परोपकार की जिस प्रवृत्ति की अनदेखी की है, उसे मान्यता दी जाय। अर्थशास्त्रियों ने यह उपेक्षा इसलिए की है क्योंकि उन्होंने जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अर्थशास्त्र के मॉडल विकसित किये थे उसमें परोपकार और सहयोग की प्रवृत्ति अदृश्य थी। वस्तुत: आर्थिक सिद्धान्त परोपकार को 'irrational' मानते हैं। समाजशास्त्रियों ने ऐसी उत्पादकता का समावेश अपने विश्लेषणों में किया था, जिस उत्पादकता का दाम नहीं दिया जाता। औद्योगिक समाजों में ऐसे 'अनपेड' उत्पादक कार्य कुल उत्पादक कार्य का 50 प्रतिशत या उससे भी अधिक है। जबकि परम्परागत समाजों में इनकी मात्रा और भी अधिक है। **सार-सम्हाल के कामों का दाम नहीं चुकाया जाता, परन्तु परम्परागत समाजों में रीति-रिवाजों और धार्मिक नियमों में उसका पूरा महत्त्व होता है और उसका हिसाब रखा जाता है। तभी परोपकार की हमारी सामर्थ्य का प्रसार सम्भव होता है और उसकी गणना या मापन भी सम्भव होता है। इसलिए समाज में उन लोगों को समुचित ऊँचा स्थान दिया जाना आवश्यक है तथा मान्यता और प्रतिष्ठा दी जानी भी आवश्यक है जो कि सार-सम्हाल के काम में लगे रहते हैं।**

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस प्रकार प्रेम को कृत्रिम रूप से दुर्लभ वस्तु बना डाला गया था- हमारे सामाजिक एवं आर्थिक प्रबंधनों या व्यवस्थाओं द्वारा। यदि यह भावना नये रूप में उभर सके कि प्रेम की प्रचुरता हर व्यक्ति के भीतर है तो यह मानवीय विकास को पोषित करेगी और हमें उस दिशा में ले जायेगी, जहाँ सेक्स के झगड़े नहीं होंगे। वस्तुत: रचनात्मकता, प्रेमपूर्ण सम्बन्ध के अधिक व्यापक दायरों में रहने से हमारे जीवन का भी विस्तार होगा और तब मृत्यु हमारे लिए कम भयदायक होगी। हम अन्ततः विकास की ऐसी दशा में तो पहुँच ही चुके हैं जहाँ परोपकार व्यावहारिक स्वरूप ले चुका है।"[12]

अहिंसक जीवन -शैली और अहिंसक संस्कृति की पक्षधर शक्तियों एवं प्रवृत्तियों में एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिन्तक हैं वैज्ञानिक रुपर्ट शेल्ड्रेक। इन्होंने अपनी पुस्तक 'A New Science of Life : The Hypothesis of Formative Causation'[13] में मार्फिक रेजोनेन्स (Morphic Resonance) की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन करते हुए प्रक्रिया द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं। जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कि यदि एक चूहा किसी एक नयी युक्ति को एक बार किसी जगह सीखता है तो अन्य चूहे उस युक्ति को अन्य स्थानों पर अधिक आसानी से सीख लेते हैं। इसी प्रकार उन्होंने यह तथ्य भी प्रस्तुत किया है कि अनेक प्राणी और पौधे ऐसे हैं जो क्षतिग्रस्त होने के बाद बड़ी तेजी से उसकी भरपाई करते हैं। अपनी इस पुस्तक में रूपर्ट शेल्ड्रेक ने बताया है कि Morphogenesis' (संरचना विकास) की तीन 'थिअरीज' हैं- (1)विवरणात्मक एवं प्रायोगिक अनुसंधान जो मेकेनिज्म सिद्धान्त का मुख्य आधार है, (2)Vitalism तथा (3)Organicism।

मेकेनिज्म के सिद्धान्त में कई कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह है कि जिस डी. एन.ए को और विशेष प्रोटिनों के संश्लेषण को वंशानुगत लक्षणों एवं विशेषताओं का आधार बताया जाता है, वे भिन्न-भिन्न जीव-प्रजाजियों में कई बार एक सदृश पाये जाते हैं। जैसे कि मनुष्य और चिम्पान्जी के प्रोटीनों में बहुत अधिक सादृश्य है और उनमें अन्तर बहुत थोड़ा है। डी.एन.ए. का क्रम दोनों ही जीव-प्रजातियों में लगभग 99 प्रतिशत सादृश्य रखता है। जबकि दोनों जीव-प्रजातियों में वास्तविक भेद बहुत अधिक है। दूसरा यह कि एक ही जैव अवयव में भिन्न-भिन्न अंगों में भिन्न पैटर्न के विकास होते हैं जबकि उन अंगों में डी.एन.ए.वही रहे आते हैं। जैसे कि मनुष्य की टाँग और बाँह के डी.एन.ए. और प्रोटीन्स एक ही होते हैं जबकि दोनों अंगों का विकास भिन्न रूप ग्रहण करता है। फिर तीसरी समस्या यह है कि डी.एन.ए. में स्थित सूचनाएँ अपना प्रभाव सचमुच किस प्रकार डालती हैं, यह बहुत स्पष्ट अभी तक नहीं हो पाया है।

2. Vitalism- वाइटलिज्म का सिद्धान्त यह मानता है कि जीवन के स्वरूप को इस प्रकार व्यवस्थाओं के भौतिक नियमों के अध्ययन से नहीं समझा जा सकता क्योंकि कारणता का एक और घटक जैव अवयव में विद्यमान होता है। यह माना जाता है कि एक सजीव सत्ता को केवल उसके अंगों के विशद अध्ययन के आधार पर पूरी तरह नहीं समझा जा सकता क्योंकि समग्र जैव सत्ता स्वयं में भी एक विशिष्ट समग्र की तरह काम करती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3. Organicism-यह सिद्धान्त संरचना विकासात्मक क्षेत्रों (morphogenetic fields) की बात करता है। morphogenetic fields भौतिकशास्त्र में वर्णित गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों और विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रों से सादृश्य रखते हैं। जैसा कि सर्वविदित है, गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र एवं विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र वस्तुत: दैशिक संरचनाएँ हैं जो अदृश्य हैं, अस्पृश्य हैं, अश्राव्य हैं, स्वादरहित हैं एवं गंधरहित हैं। वे केवल अपने गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी एवं विधुत-चुम्बकीय प्रभावों द्वारा ही पहचाने जा सकते हैं। ये परिकल्पनात्मक क्षेत्र रिक्त दिक्-विस्तार के प्रत्याख्यान की अथवा उसकी संरचना की भी क्षमता रखते हैं। एक अर्थ में वे अपदार्थ हैं जबकि एक दूसरे अर्थ में वे पदार्थ का एक पक्ष हैं क्योंकि उन्हें पदार्थ सम्बन्धी पद्धतियों के प्रभाव के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। इसी प्रकार संरचना विकासात्मक क्षेत्र (morphogenetic fields) दैशिक संरचनाएँ हैं जो केवल अपने विकास संरचनात्मक प्रभाव के द्वारा ही पहचानी जा सकती हैं। इस अर्थ में ये सम्भाव्य संरचनाएँ ही हैं।

यह प्रश्न उठाते हुए कि विकास संरचनात्मक क्षेत्र के किसी विशिष्ट रूप का निर्धारण किस प्रकार होता है, रूपर्ट शेल्ड्रेक ने कहा है कि एक संभावित उत्तर तो यह हो सकता है कि **ये विकास संरचनात्मक क्षेत्र सनातन हैं। भूमण्डल के प्रगट होने के पूर्व भी संभवत: समस्त रसायनों, समस्त प्राणियों, समस्त पौधों और समस्त मणिभीय संरचनाओं के विकास सरंचनात्मक क्षेत्र (morphogenetic fields) अनभिव्यक्त दशा में विद्यमान रहते हैं।** ये क्षेत्र या तो अतीत में कभी पृथ्वी पर रहे होंगे अथवा भविष्य में कभी व्यक्त होनेवाले होंगे। परन्तु यह उत्तर तो प्लेटानिक या अरस्तूवादी उत्तर हो गया। शेल्ड्रेक कहते हैं कि देसरा संभावित उत्तर यह है कि रासायनिक एवं जैविक रूप इसलिए नहीं दुहराये जाते कि वे अपरिवर्तनीय नियमों अथवा सनातन रूपों द्वारा निर्धारित होते हैं बल्कि इसलिए दुहराये जाते हैं क्योंकि वे पूर्ववर्ती सदृश रूपों के causal influence से निर्धारित होते हैं। ऐसा प्रभाव दिक्-काल के विस्तार में एक ऐसी क्रिया की अपेक्षा करेगा जो अन्य किसी भी ज्ञात भौतिक क्रिया के सदृश नहीं होगी। किसी जैव अवयव द्वारा लिया गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विशिष्ट रूप उसकी प्रथम अभिव्यक्ति के पूर्व ही भौतिक रूप से निर्धारित नहीं होगा, तब भी वह पूर्ववर्ती रूप का दुहराव करेगा क्योंकि प्रथम जैव अवयव या पद्धति का रूप लें। इसे ही मार्फिक रेजोनेन्स (Morphic Resonance) का सिद्धान्त कहा गया हैं। शेल्ड्रेक का कहना है कि Morphic Resonance की प्रक्रिया का विद्यमान अवधारणात्मक प्रत्ययों की पदावली में व्यक्त नहीं किया जा सकता। Morphic Resonance के संरचनात्मक विकास क्षेत्र न तो द्रव्य हैं और न ही ऊर्जा। इसीलिए वे ज्ञात भौतिक नियमों से व्याख्यायित नहीं हो पाते और इसीलिए देश या काल का अन्तराल उनकी निरंतरता को प्रभावित नहीं करता। वे पूर्व रूप के एक घंटे बाद भी उतने ही प्रभावी हो सकते हैं जितने एक शताब्दी बाद और 10,000 मील की दूरी पर भी उतने ही प्रभावी हो सकते हैं जितनी 10 मीटर की दूरी पर।

Morphic Resonance के इस सिद्धान्त ने अभी की राजनैतिक व्यवस्थाओं एवं आर्थिक व्यवस्थाओं के आधार को ही हिलाकर रख दिया है। दूसरी बात यह है कि इस सिद्धान्त ने मनुष्यों के भीतर विशेषकर प्रबुद्ध नीतिनिर्धारकों और व्यवस्था- संचालकों के भीतर एक अनिश्चय और रहस्यभावना तथा आन्तरिक कोमलता और विनयशीलता के भाव को जगा दिया है या जगा रहा है। ऐसी स्थिति में अभी की व्यवस्थाओं द्वारा प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ जो कठोरता एवं क्रूरता बरती जा रही है, उसकी भविष्य में होने वाली संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं के व्यापाक होने की संभावना से एक बेचैनी उभरी है। ये संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ मनुष्यों के स्तर पर ही नहीं होंगी अपितु प्राणियों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं प्रकृति के अन्य अवयवों के स्तर पर भी होंगे।

इसका प्रभाव बौद्धिक क्षेत्र में यह पड़ रहा है कि भविष्य में एक अधिक सौम्य और सुसंस्कृत व्यवस्था बनायी जाय जिसमें विकास के नाम पर अभी जैसी कठोरता और बर्बरता, प्रकृति का निर्मम विनाश और दोहन तथा मानवेतर प्राणियों एवं वृक्ष -वनस्पतियों के प्रति निष्ठुरता नहीं रहे। क्योंकि इन सभी जैव संरचनाओं के भीतर ऐसी कठोरता और क्रूरता की स्मृति सुरक्षित रह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सकती है जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। इस प्रकार संरचनात्मक विकास के क्षेत्र में Morphic Resonance के इस सिद्धान्त के प्रसार के कारण भी समकालीन विश्व में अहिंसक आर्थिक समृद्धि की अभीप्सा रखनेवाली प्रवृत्तियाँ पुष्ट हो रही हैं।

भविष्य में विश्व में अहिंसक आर्थिक समृद्धि की संभावना साकार हो, इसके पक्ष में सक्रिय एक अन्य महत्वपूर्ण यूरोपीय आन्दोलन है- जर्मनी से उभरा ग्रीन मूवमेण्ट। वस्तुत: पर्यावरण का आन्दोलन तो 1960 के दशक से ही संयक्त राज्य अमेरिका में छोटे-छोटे समूहों के आन्दोलनों के रूप में आकार लेने लगा था। नदियों और बड़ी-बड़ी झीलों के प्रदूषण में तथा शहरों की हवा के जहलीरे होते जाने के तथ्यों ने पर्यावरण के प्रति ये संवेदनाएँ जगाईं। इस आन्दोलन में भी स्त्रियाँ ही अग्रणी थीं। धीरे-धीरे आन्दोलन जो पकड़ता गया। 1977 में वहाँ 'पृथ्वी दिवस' मनाया गया। मॉस मीडिया में इसका अच्छा प्रचार हुआ। धीरे-धीरे बात दुनिया भर में फैलती गयी और जर्मनी में तो ग्रीन मूवमेण्ट के नाम से अत्यंत शक्तिशाली पर्यावरण आन्दोलन उभरा जिसने राजनीति में भी प्रभावी हस्तक्षेप किये। आज तो विश्वभर में अनेक कन्सल्टिंग कम्पनियाँ पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रही हैं। अमेरिका में तो तीन चौथाई आबादी स्वयं को पर्यावरणवादी कहती है। वहाँ की अनेक बड़ी-बड़ी फर्में अपना पर्यावरण ऑडिट करवाती हैं और यूरोप में भी यह प्रवृत्ति फैल रही है। पर्यावरणवादियों की आधुनिक अर्थशास्त्रियों से तीखी झड़पें हो चुकी हैं और पिछले 30 वर्षों से पर्यावरणवादी समूह प्रगति, विकास, सम्पदा आदि की आधुनिक अर्थशास्त्र की अवधारणाओं को यह कहकर चुनौती देती हैं कि ये अवधारणाएँ प्रकृति को क्षय-ग्रस्त कर रही हैं और भावी पीढ़ियों का भविष्य धूमिल कर रही है।[14]

1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण एवं विकास आयोग की रिपोर्ट -हमारा साझा भविष्य (Our Common Future) नाम से आयी जिसने टिकाऊ विकास (Sustainable Development) की बात की। तब से ये बहस जोर पकड़ती जा रही है।[15] फिलिप्पीन्स की ग्रीन फोरम ने एक श्वेत पत्र 1988 में तैयार किया जो आज विश्व में पर्यावरणवादियों के बीच गम्भीर चिन्तन एवं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विमर्श का विषय है। यह श्वेत पत्र आधुनिक उद्योगवादी अर्थशास्त्रीय विकास के प्रतिमानों की गम्भीर मीमांसा करता है उसके दोषों और विरोधाभासों को तर्कपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण ढंग से उद्घाटित करता है। पर्यावरण के क्षय को किस प्रकार न केवल रोका जाय अपितु उसकी क्षतिपूर्ति की जाय, इसके विषय में यह श्वेत पत्र विस्तार से प्रकाश डालता है। इसने प्रदूषण, अपशेष, संसाधनों के अत्यधिक दोहन आदि पर भारी कराधान के भी सुझाव दिये हैं। साथ ही कारों एवं विविध घरेलू उपकरणों को ऊर्जा की दृष्टि से कम हानिकर एवं अधिक सक्षम तथा ऊर्जा की बचत करने वाला बनाने के लिए बहुत सारे सुझाव दिये गये हैं। इस प्रक्रिया को बाध्यकारी बनाने की सिफारिश की गयी है तथा एक प्रामाणिक ऊर्जा नीति तैयार होने के आधार प्रस्तुत किये गये हैं।

व्यक्तिगत व्यवहार, जीवन -शैली एवं मूल्य के स्तर पर, स्थानीय प्रशासन के स्तर पर, बड़े निगमों एवं व्यापारिक कम्पनियों के स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं को 'ग्रीन' बनाने के लिए व्यापाक सुझाव विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय फोरमों में सामने आ रहे हैं। इनके परिणामस्वरूप न्यायालय भी उल्लेखनीय विधिक आदेश जारी कर रहे हैं। उदाहरण के लिए स्वयं भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने ध्वनि प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण रोकने सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण आदेश दिये। इसी प्रकार सामिष द्रव्यों से बने उपभोग पदार्थों पर लाल चिन्ह तथा निरामिष द्रव्यों से बने उपभोग पदार्थों पर हरा चिन्ह अंकित करना बाध्यकारी बनाया जाना सर्वोच्च न्यायालय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय है। यह प्रक्रिया आगे बढ़ रही है और स्पष्ट है कि विश्वव्यापी ग्रीन मूवमेण्ट का भविष्य में एक अहिंसक आर्थिक समृद्धि के प्रति निष्ठावान अर्थव्यवस्था के उभार में विशिष्ट योगदान होगा। संक्षेप में ये ही हैं अहिंसक आर्थिक समृद्धि के लिए संकल्पित विश्व की समकालीन शक्तियाँ एवं प्रवृत्तियाँ। विकास की भावी दिशा के सूत्र इनसे ही निकलेंगे।

●●●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ

1. Norman Myres : The Gaia of Future Worlds, pp. 12-13, Robertson Mccarta Limited, London (1990).

2. Ibid, pp. 50-57.

3. See, (a) Fritzof Capra: The Turning Point, Simon and Schuster, New York (1982).

(b) Gregory Bateson: Steps to an Ecology of Mind, Ballantine, New York (1972).

(c) Hazel Hendorson : Creating Alternative Futures, Putnam, New York (1978).

(d) Hazel Hendorson : The Politics of the Solar Age, Anchor, New York (1981).

(e) Thomas S. Kuhn : The Structure of Scientific Revolutions, University of Chicago, Chicago (1970).

(f) Jerom Clayton Glenn : Future Mind: Artificial Intelligence, Merging the Mystical and the Technological in the 21st Century, Acropolic Books, Washington DC. (1989).

(g) Anna F. Lemkov : The Wholeness Principle, Quest Books, London (1990).

(h) John Button (ed.) : The Green Fuse, Quartet Books, London (1990).

(i) Helena Norberg Hodge : Ancient Futures, Sierra Books, Sanfrancisco (1992).

Q) Alvin Toffler : The Third Wave, William Morrow, New York (1980).

(k) James Robertson: The Sane Alternative, River Basin Press, Minisotta, U.S.

4. Fritzof Capra : Uncommon Wisdom, Chapter 8, p. 316, Bantam Vew

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Age Books, New York (1989).

5. Hazel Henderson : The Politics of the Solar Age : Alternatives to Economics, Introduction, p.xxii, Knowledge Systems, Inc., Indiana (1998).

6. Hazel Henderson: Paradigms in Progress, Introduction, p.6, Knowledge Systems, Inc., Indianapolis (1991).

7. Hazel Henderson: The Politics of the Solar Age, op. Cit, Epilogue, pp. 406-410.

8. Ibid, p. 409.

9. Ibid, pp. 216-226.

10. Ibid, Introduction.

11. Ibid, pp. 409-411.

12. Ibid, pp. 144-145.

13. Rupert Sheldrake: A New Science of Life, pp. 39-56, Paladin Grafton Books, London (1987).

14. See, (i) John Button (ed.) : The Green Fuse, Quartet Books, London (1990)

(ii) Charlene Spretnek and Fritzof Capra: Green Politics, E.P.Dutton, New York, 1984

15. Our Common Future : World Commission on Environment and Development, Oxford Uni. Press, New York and London (1990),

Also see, State of the World Reports (Published annually since 1985), World Watch Institute, Washington.

●

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धर्मपाल शोधपीठ के उद्‌देश्य

- आजादी के पूर्व तथा आजादी के बाद के भारत की संस्कृति, परम्पराओं जीवन पद्धतियों का संरक्षण संवर्द्धन।
- स्वाधीनता संग्राम, स्वाधीनता संग्राम के आदर्शों तथा स्वराज के जीवन एवं बहुआयामी इतिहास का अध्ययन अनुशीलन।
- शोध, प्रशिक्षण, व्याख्यानों, गोष्ठियों, सेमिनार तथा विविध कार्यक्रमों का आयोजन।
- दुर्लभ, प्रामाणिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं-पुस्तकों का संग्रह प्रकाशन।
- ऑडियो-वीडियो कार्यक्रमों तथा वेबसाइट का निर्माण, प्रवर्तन, संचालन।
- समस्त शोध एवं प्रशिक्षणों के लिए यत्न करना।

धर्मपाल शोधपीठ

बी-12, आकृति गार्डन,
नेहरू नगर, भोपाल-462003
दूरभाष- 0755-4283620, मोबाइल : 9425602596

E-mail : dharampalshodhpeeth@gmail.com
prof.rameshwar@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रो. कुसुमलता केडिया

ख्यातिप्राप्त समाजवैज्ञानिक एवं विकास-अर्थशास्त्री। पूर्व सदस्य, कार्यकारिणी परिषद्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। पूर्व सदस्य भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला। पूर्व वरिष्ठ फेलो, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली। महात्मा गांधी नेशनल फेलो, भारतीय समाजविज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली। अखिल भारतीय डॉ. हेडगेवार, प्रज्ञा सम्मान (कोलकाता, 2006 ई.)। अर्थशास्त्र, इतिहास, गांधी चिंतन एवं स्त्री विमर्श पर अनेक चर्चित पुस्तकें प्रकाशित जिनमें प्रमुख हैं- 1. स्त्रीत्व : धारणाएँ एवं यथार्थ, 2. विश्व सभ्यता : भारतीय दृष्टि, 3.गांधी जी और ईसाइयत, 4. समृद्धि अहिंसक भी हो सकती है। 5. भारत : हजारों वर्षों की पराधीनता : एक औपनिवेशिक भ्रमजाल (पाँचों प्रो. मिश्र के साथ), 6. रूट्स ऑव अंडरडेवलपमेंट, 7. डेट ट्रैप ऑर डेथ ट्रैप, 8. जेनेटिक एजम्पशन्स ऑफ डेवलपमेंट थिअरीज। विकास अर्थशास्त्र, गांधी दर्शन और अंतर्राष्ट्रीय राजनय की विशेषज्ञ।

सम्प्रति : कार्यकारी निदेशक, गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी।

मोबाइल : 09235619406, 09236106818

ई-मेल : profkusumlatakedia@gmail.com,
gandhividya.sansthan@gmail.com
website : www.gandhianinstitute.com
website : www.hinduindia.org

धर्मपाल शोधपीठ

ISBN 978-81-8097-215-7

9 788180 972157

₹ 350.00

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant